JIGYASA

As the name reflects itself Jigyasa is a Research Journal focused on gathering knowledge on the different issues of Arts, Linguistics and Social Sciences. It is a journal which generates appetite for knowledge amongst the social scientists, educationists, linguists, policy makers and the politicians and at the same time it also evolves the solutions. Our international and national experts of the subjects will be regularly guiding the society with their thought provoking papers and articles.

Centuries of human thought have pored over, why is there evil when there's also God. Why does God kill innocent children in an atrocious crime that they haven't had the slightest idea about? Above all, why does God scare us with his wrath.... and many more questions about our thoughts and society.

Our effort is to gather the knowledge from all nooks and corners of the society and at the same time to disseminate the same back to the society for its benefit. Let the knowledge be not the slave of a hard cover bound book or a journal. Let's come out with new ideas and theories to improve our society and the political system. We welcome all of you with this edition of our Journal and thank those who have contributed.

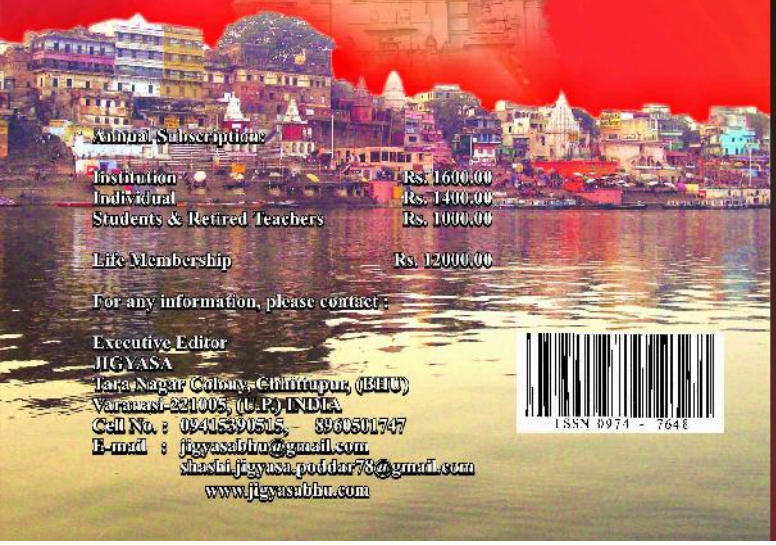

Annual Subscription:

Institution	Rs. 1600.00
Individual	Rs. 1400.00
Students & Retired Teachers	Rs. 1000.00
Life Membership	Rs. 12000.00

For any information, please contact :

Executive Editor
JIGYASA
Tara Nagar Colony, Chhittupur, (BHU)
Varanasi-221005, (U.P.) INDIA
Cell No. : 09415390515, 8960501747
E-mail : jigyasabhu@gmail.com
shashi.jigyasa.poddar78@gmail.com
www.jigyasabhu.com

ISSN 0974 - 7648

JIGYASA Vol. 14 No. VI June, 2021

UGC Approved Journal No - 40957
ISSN 0974 - 7648

JIGYASA

An Interdisciplinary Peer Reviewed Refereed Research Journal

जिज्ञासा

Chief Editor :
Indukant Dixit

Executive Editor :
Shashi Bhushan Poddar

Editor :
Reeta Yadav

(IIJIF) Impact Factor- 5.172

Regd. No. : 1687-2006-2007 **ISSN 0974 - 7648**

J I G Y A S A

AN INTERDISCIPLINARY PEER REVIEWED
REFEREED RESEARCH JOURNAL

Chief Editor : ***Indukant Dixit***

Executive Editor : ***Shashi Bhushan Poddar***

Editor
Reeta Yadav

Volume 14 **June 2021** **No. VI**

Published by
PODDAR FOUNDATION
Taranagar Colony
Chhittupur, BHU, Varanasi
www.jigyasabhu.blogspot.com
www.jigyasabhu.com
E-mail : jigyasabhu@gmail.com
Mob. 9415390515, 0542 2366370

JIGYASA, ISSN 0974-7648, Vol. 14, No. VI, June 2021

Contents

- **जनपद जौनपुर में अध्ययनरत शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य का अध्ययन** **1-4**
  डॉ. प्रमोद कुमार पाण्डेय, असि. प्रो. (बी.एड.), नागरिक स्नातकोत्तर, महाविद्यालय जंघई, जौनपुर
- **राही मासूम रजा कृत आधा गांव : एक विश्लेषण** **5-11**
  डॉ. राम कृष्ण, एसो० प्रोफे०, हिन्दी विभाग पं० दीनदयल उपाध्याय राजकीय बालिका महाविद्यालय सेवापुरी वाराणसी (उ० प्र०)
- **अलाउदीन खिलजी का 'दक्षिण भारतीय नीति' - ऐतिहासिक विश्लेषण** **12-17**
  प्रियंका कुमारी, शोधार्थी, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा
- **''सामाजिक सुधार आंदोलन में दलित साहित्य की भूमिका''** **18-22**
  डॉ. महेन्द्र कुमार सार्वा, सहायक प्राध्यापक इतिहास शास. दू. ब. महिला स्नातको. महाविद्यालय रायपुर छ. ग.
- **बिहार में सुशासन का ढांचा और दलित-महादलित विमर्श** **23-32**
  डॉ. आलोक वर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान विभाग राजेन्द्र कॉलेज, जयप्रकाश विश्वविद्यालय छपरा
- **''भारतीय गाँवों में राजनैतिक दलों का बढ़ता प्रभाव''** **33-40**
  डॉ. श्यामदेव पासवान, एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, जगजीवन कॉलेज, गया (बिहार)
- **'' एकांकी परिवार में वृद्धजनों की समस्याएँ '' (एक वैज्ञानिक अध्ययन)** **41-45**
  अर्चना सरस्वती, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, गृह विज्ञान विभाग, महिला महाविद्यालय, दाउदनगर, औरंगाबाद (बिहार)
- **शिक्षा का अधिकार कैसे हो साकार** **46-50**
  अमित कुमार पाण्डेय, शोधछात्र (शिक्षा शास्त्र), एम एल के पो जो कालेज, बलरामपुर- उत्तर प्रदेश
  डॉ राघवेंन्द्र सिंह, एसो प्राफेसर विभागाध्यक्ष - बीएड विभाग, एम एल के पी जी कालेज, बलरामपुर - उत्तर प्रदेश

- **अन्य शब्द-वर्गों का हिंदी मानववाची नामपद के रूप में प्रयोग** **51-56**
  अभिजीत प्रसाद, पीएच.डी. शोधार्थी, भाषाविज्ञान एवं भाषा प्रौद्योगीकी विभाग, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा (महाराष्ट्र)
- **योग द्वारा बृद्धावस्था में स्वास्थ्य जागरूकता** **57-63**
  डॉ. संजय कुमार, शारीरिक शिक्षा विभाग, श्री महंथ रामाश्रय दास स्ना. महाविद्यालय भुड़कुड़ा, गाजीपुर
- **कालिदास के काव्यों में शैव दर्शन** **64-69**
  डॉ. प्रभा यादव, स.अ. जैतपुरा गाजीपुर
- **दीनदयाल उपाध्याय और अन्तयोदय योजना** **70-74**
  रमेश राम पटेल, शोधार्थी, एम. फिल., दिल्ली विश्वविद्यालय
- **उपग्रह चैनलों के कार्यक्रमों के प्रति शहरी तथा ग्रामीण नागरिकों के दृष्टिकोणों का तुलनात्मक अध्ययन** **75-79**
  डॉ. श्याम बहादुर सिंह, विभागाध्यक्ष (बी.एड.), एल.बी.एस. महा., गोण्डा
  विवेक कुमार सिंह, शोधकर्ता, जे.एल.एन. मेमो.पी.जी. कालेज, बाराबंकी (उ.प्र.)
- **हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में शिल्प विधान** **80-84**
  डॉ. श्यामजी सोनकर, एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी), राजकीय महाविद्यालय, सैदाबाद, प्रयागराज
- **फिल्म संगीत में प्रयुक्त लोकगीतों एवं धुनों पर आधारित रचनायें : वर्तमान परिप्रेक्ष्य में** **85-90**
  श्यामा कुमारी, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- **भारत में वृद्धावस्था की चुनौतियाँ तथा समाधान** **91-96**
  डॉ. कौलेश्वर, एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय पथरदेवा, देवरिया, यू. पी
  डॉ. संतन कुमार राम, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, भूगोल, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर, यू. पी.
- **स्त्री-पुरूष संबंधों का बदलता स्वरूप** **97-100**
  मो. इखलाक खान, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर

JIGYASA, ISSN 0974-7648, Vol. 14, No. VI, June 2021

- **महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण में वार्णित प्राकृतिक पर्यावरण : एक अवलोकन** **101-107**
  राकेश कुमार, शोध छात्र, सहकारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मिहरावाँ, जौनपुर (समबद्ध पूर्वाचल विश्वविद्यालय जौनपुर)
  डॉ. श्याम नारायण सिंह, शोध निर्देशक, सहकारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मिहरावाँ, जौनपुर (समबद्ध पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर)
- **धर्म, साम्प्रदायिकता और भारतीय राजनीति** **108-111**
  डॉ. अनुपम शाही, एसोसिएट प्रोफेसर, हरिश्चन्द्र स्ना. महाविद्यालय, वाराणसी
- **वैदिक चिकित्सा एवं पर्यावरण** **112-120**
  डॉ. ज्योति सिंह, प्रवक्ता (जी.जी.आई.सी.), आनन्द नगर (महाराजगंज) उत्तर प्रदेश, भारत
- **विकास एवं पर्यावरणवाद : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन** **121-128**
  अनामिका कुमारी, शोध छात्रा (समाजशास्त्र), पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना ।
- **साहसिक यात्रा वृत्तान्त 'आजादी मेरा ब्रांड'** **129-132**
  डॉ. दयानिधि सिंह यादव, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, सकलडीहा पी० जी० कालेज, सकलडीहा, चन्दौली
- **वाराणसी के ओलम्पिक खिलाडियों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व** **133-138**
  रमेश कुमार सोनकर, शारीरिक शिक्षा विभाग, शिक्षा संकाय, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी - 221005
- **प्रयोगवाद में प्रयोगशीलता** **139-143**
  डॉ. स्नेह लता गुप्ता, हिन्दी विभागाध्यक्षा, गिन्नी देवी मोदी गर्ल्स पी. जी. कॉलेज, मोदीनगर
- **तत्त्वसमाससूत्र के टीकाओं में प्रकृति तत्त्व का विवेचन** **144-146**
  सदाशिव तिवारी, शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग महात्मा गांधी काशीविद्यापीठ वाराणसी

- **प्राचीन भारत में कृषि एवं प्राद्यौगिकी का विकास - एक ऐतिहासिक अध्ययन** **147-154**
  रिंकू कुमारी, शोध छात्रा, प्रा. भा. इ. एवं पु. विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना
  प्रो. (डॉ.) बदर आरा, पर्यवेक्षक-विभागाध्यक्ष,प्रा. भा. इ. एवं पु. विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

- **प्राचीन भारत के प्रमुख शिक्षण केन्द्र : एक अध्ययन** **155-161**
  सुनील कुमार, शोधार्थी, प्रा. भा. इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना
  प्रो. (डॉ.) नवीन कुमार, शोध पर्यवेक्षक, प्रा. भा. इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

- **भारतीय दर्शन में योग विचार की प्रासंगिकता** **162-166**
  रजनी गोस्वामी, शोधार्थी, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग

- **स्त्री अस्मिता और मृदुला गर्ग** **167-171**
  अनुपमा व्यास, (शोध-छात्रा-हिंदी), महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, (हिंदी विभाग) के सम्बद्ध लालता सिंह राजकीय महिला महाविद्यालय अदलहालट मिर्जापुर

- **महाकवि कालिदास कृत मेघदूत में अर्थान्तरन्यास प्रयोग** **172-179**
  डॉ. वन्दना पाण्डेय, एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत), सर्वोदय पी. जी. कॉलेज, घोसी, मऊ

- **जनपद मैनुपरी : एकीकृत ग्राम्य विकास योजना एवं ग्रामीण विकास** **180-190**
  डॉ. (श्रीमती) मधु यादव, एसोसियेट प्राफेसर भूगोल विभाग, आदर्श कृष्ण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोजाबाद)

- **धर्म क्या है, धर्म के विभिन्न स्वरूप** **191-196**
  डॉ. योगेन्द्र कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर ज्योतिष, महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय मध्य-प्रदेश।

- **जम्मु-कश्मीर में गोजरी संगीत को ऊंचाई पर ले जाती महिला गायिकाएं** **197-202**
  हिमानी गुप्ता, छात्रा, एम. ए. म्युजिक, युनिवर्सिटी ऑफ जम्मू, जम्मू-कश्मीर

- **नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के निहतार्थ एवं अनुसंधान का विकास** **203-207**
  डॉ. सुषमा चौरसिया, एसोसिएट प्रोफेसर, कन्या महाविद्यालय, आर्य समाज, भूड़, बरेली
- **विचित्र भवों द्वारा रसों की पहचान** **208-211**
  अनीता शर्मा, छात्रा, एम. ए. म्युजिक, युनिवर्सिटी ऑफ जम्मू, जम्मू-कश्मीर
- **प्रौढ़ शिक्षा और जावन जीने का नया आयाम** **212-214**
  डॉली कुमारी, शोध छात्रा, दर्शनशास्त्र विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना
- **नई शिक्षा नीति 2020 के तहत् 21वीं सदी में विद्यालयी शिक्षा** **215-219**
  डॉ. शुभलेश कुमारी, एसोसिएट प्रोफेसर (बी.एड. विभाग), श्रीमती बी.डी. जैन गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, आगरा छावनी, आगरा।
- **स्वास्थ्य जनजागरण अभियान में हिन्दी भाषा की भूमिका** **220-224**
  उदय प्रताप सिंह, वरिष्ठ सहायक एवं सदस्य सचिव, राजभाषा प्रकोष्ठ, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- **''बी. एड. स्तर के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के प्रशिक्षुओं की शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं स्मृति का अध्ययन''** **225-229**
  किरन सिंह, शोधकर्त्री-, हंडिया पी.जी. कालेज हंडिया प्रयागराज
- **रामायण में राज्य एवं लोक-कल्याण** **230-238**
  राज कमल दीक्षित, प्राचार्य, सेठ फूल चन्द बागला (पी.जी.) कालेज, हाथरस
- **जैन दर्शन एवं सहिष्णुता : एक विमर्श** **239-245**
  रेशमी कुमारी, शोधार्थी, दर्शनशास्त्र विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना
- **लोकतंत्रीय समाज के विद्यालयो में शिक्षक का स्थान व उसकी शिक्षण दक्षता** **246-252**
  डॉ. कमला सिंह यादव, प्राचार्य, शिवम् कालेज ऑफ हायर स्टडीज, फुलवरिया, बैकठपुर, पटना (बिहार)

जनपद जौनपुर में अध्ययनरत शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य का अध्ययन

डा. प्रमोद कुमार पाण्डेय *

यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम पाश्चात्य भौतिकवाद का अंधानुकरण कर रहे हैं जिसमें ना तो कोई मानक है और ना ही जीवन के प्रति दृष्टिकोण ही है, जिससे सम्पूर्ण मानवता के साथ–साथ स्वयं कल्याण एवं शांति मिल सके। आज हमारी स्थिति यह है कि हम अपनी सांस्कृतिक विरासत और उसकी आध्यात्मिक महत्ता को भूलते जा रहे हैं इसलिए यह आवश्यक है कि हम नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का न केवल संरक्षण करें बल्कि विश्व में उसका प्रचार और प्रसार करें।

प्रत्येक व्यक्ति का अपना जीवन दर्शन होता है। मूल्य में भी वरीयता के क्रम पाये जाते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि वे कौन से मूल्य हैं जो व्यक्ति को एक दिशा दे सके, उसकी प्रगति कर सकें जो समाज के अनुकूल हो। प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री राधा कृष्णन के अनुसार हमारे जीवन में नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का अभाव है, इस अभाव को धार्मिक नैतिक शिक्षा द्वारा दूर किया जा सकता है। अतः सभी शिक्षा शास्त्रियों की यह धारणा है कि आध्यात्मिक एवं नैतिक शिक्षा के द्वारा व्यक्तियों में उचित मूल्यों का समावेश करना आवश्यक है। शोधकर्ता ने इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर भविष्य के शिक्षक बन रहे छात्र/छात्राओं का अध्ययन किया है।

प्रस्तावनाः– नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की संकल्पना सभ्य समाज के परम तत्व के रूप में की गई है जो मनुष्य को पशु से भिन्न प्रदर्शित करता है। समाज तथा राष्ट्र की समस्त संरचना, उसका भव्य भवन नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की आधारशिला पर अवस्थित है। जन कल्याणकारी राष्ट्र के विकास के लिए नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की आधारशिला अत्यंत आवश्यक है। कोई भी सामाजिक संगठन जो नैतिकता और आध्यात्मिकता के आधार पर निर्मित नहीं है वह कालांतर में सरलता से से बिखर जाएगी, अतः कोई भी सभ्यता जो नैतिकता एवं आध्यात्मिकता के शाश्वत मूल्यों पर आधारित नहीं है अधिक काल तक जीवित नही रह सकती है।

यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम पाश्चात्य भौतिकवाद का अंधानुकरण कर रहे है जिसमें न तो कोई मानक है नहीं जीवन के प्रति वह दृष्टिकोण ही है, जिससे संपूर्ण मानवता के साथ–साथ स्वयं कल्याण एवं शांति मिल सके। आज हमारी स्थिति यह है कि हम अपनी सांस्कृतिक विरासत और उसकी आध्यात्मिक महत्ता को भूलते जा रहे हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि हम

* असि० प्रो०(बी०एड०), नागरिक स्नातकोत्तर, महाविद्यालय जंघई, जौनपुर

नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का न केवल संरक्षण करें बल्कि विश्व में उसका प्रचार एवं प्रसार करें।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्वः– प्रत्येक व्यक्ति का अपना जीवन दर्शन होता है। मूल्य में भी वरीयता का क्रम पाया जाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि वह कौन से मूल्य है जो व्यक्ति को एक दिशा दे सकें, उसकी प्रगति कर सकें तथा जो समाज के अनुकूल हो प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री राधाकृष्णन के अनुसार हमारे जीवन में नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का अभाव है इस अभाव को धार्मिक नैतिक शिक्षा द्वारा ही दूर किया जा सकता है। अतः सभी शिक्षा शास्त्रीयों की यह धारणा की धार्मिक नैतिक शिक्षा के द्वारा व्यक्तियों में उचित मूल्यों का समावेश करना आवश्यक है। शोधकर्ता ने इन्हीं सभी बातों को ध्यान रखा है शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों का अध्ययन किया है।

अध्ययन का शीर्षकः– जनपद जौनपुर में अध्ययनरत शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य का अध्ययनः–

अध्ययन का उद्देश्यः– इस अनुसंधान का मुख्य उद्देश्य जनपद जौनपुर के सरकारी महाविद्यालयों के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का पता लगाना है। विशिष्ट रूप से इन उद्देष्यों को इस रूप में व्यक्त किया जा सकता है–

1.शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के नैतिक मूल्यों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करना।

2. शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों, के आध्यात्मिक मूल्यों का विश्लेषण एवं मूल्याकंन करना।

3. शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों, छात्र–छात्रा के नैतिक मूल्य का तुलना करना।

4. शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों, के आध्यात्मिक मूल्य का तुलना करना।

परिकल्पनाः–1.शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के छात्र एवं छात्राओं के नैतिक मूल्य में कोई सार्थक अन्तर नही है।

2. शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के आध्यात्मिक मूल्य में कोई सार्थक अन्तर नही है।

तकनीकि पदों की परिभाषायेः

1. **नैतिक मूल्य–** नैतिक मूल्य मानव के आचरण है जो हमे अच्छा बुरा,उचित अनुचित,सही गलत के बीच अन्तर को स्पष्ट करते है।
2. **आध्यात्मिक मूल्य–**आध्यात्मिक मूल्य मानव के वांछनीय विश्वायों को परिलक्षित करते है जो वह अदृश्य,अमूर्त सत्ता के प्रति प्रदर्शित करता है किन्तु जो तार्किक विश्लेषण से परे है।
3. **शिक्षक प्रशिक्षणार्थी**–शिक्षक प्रशिक्षणार्थी से तात्पर्य उन छात्रों से है जो बी0एड0 पाठ्यक्रम में अध्ययनरत है।

उपकरणः नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्य के निर्धारण के लिए डा0 साहब सिंह तथा डॉ(श्रीमती) मंजू सिंह द्वारा निर्मित मानकीकृत नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य का परीक्षण का प्रयोग किया। यह परीक्षण शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों पर प्रशासित किया जाएगा। इसके लिए जौनपुर जनपद के विभिन्न विद्यालयों से 100 छात्र–छात्राओं को यादृच्छिक विधि से चयन किया

जाएगा। प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण कर मध्यमान तथा मानक विचलन ज्ञात किया जाएगा। तुलनात्मक अध्ययन से प्रतिशत का प्रयोग तथा इनके बीच सार्थकता ज्ञात करने के लिए टी टेस्ट का प्रयोग किया जाएगा। प्राप्त प्रदत्तों को सांख्यिकी विश्लेषणोपरांत नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य निम्न तालिका में प्रस्तुत किया जा रहा है।

तालिका नं0 1 नैतिकता के आधार पर बी0एड0 छात्र छात्राओं का तुलनात्मक विष्लेषण–

	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी मूल्य	सार्थकता स्तर
छात्र	छ$_1$ 100	74	6.76	0.78	सार्थक नही
छात्रायें	छ$_2$ 100	75	4.59		

छात्र एवं छात्राओं के नैतिक मूल्यों पर प्राप्त आकड़ों के मध्यमान में सार्थक अन्तर नही है। दोनो के मध्यमान को देखने से भी स्पष्ट होता है कि छात्र एवं छात्राओं में नैतिकता समान रूप से समाहित है।

तालिका नं0 2 आध्यात्मिकता के आधार पर बी0एड0 छात्र छात्राओं का तुलनात्मक विष्लेषण–

	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी मूल्य	सार्थकता स्तर
छात्र	100	73	6.44	0.65	सार्थक नही
छात्रायें	100	74	6.33		

सारणी के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि छात्र एवं छात्राओं के आध्यात्मिकता में भी सार्थक अन्तर नही है। अर्थात बी0एड0 में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राएं समान आध्यात्मिक मूल्य से परिलक्षित है।

निष्कर्ष:

1. बी.0एड0 छात्र –छात्राओं के नैतिक मूल्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि बी0एड0 छात्र एवं छात्राएं समान नैतिक मूल्य से परिलक्षित है क्योंकि कोई सार्थक अन्तर नंही है।
2. बी.0एड0 छात्र –छात्राओं के आध्यात्मिक मूल्यों के विष्लेषण से स्पष्ट है कि बी0एड0 छात्र एवं छात्राएं समान नैतिक मूल्य से परिलक्षित है क्योंकि कोई सार्थक अन्तर नंही है।

शैक्षिक निहितार्थ–

1. नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को विश्ववन्धुत्व की भावना के विकास हेतु उचित कार्यक्रम तैयार किये जाए।

2. शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम याजना व प्रक्रिया का निर्माण करते समय महापुरूषों की जीवनियों व उपदेशों को स्थान दिया जाय।
3. भावी अध्यापकों के सतत मूल्यांकन के समय नैतिक एंव आध्यात्मिक मूल्यों को ध्यान में रखा जाय।

आगामी अध्ययन हेतु सुझाव–

1. वर्तमान शोध अध्ययन को विभिन्न प्रकार के न्यादर्शो पर पूरा किया जा सकता है।
2. स्नातक स्तर,माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य भी ज्ञात किया जा सकता है।
3. विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण से सम्बन्धित छात्र एवं छात्राओं पर अध्ययन किये जा सकते है।

सन्दर्भ

1. कपिल,एच0के0 अनुसंधान विधियाँ,एच0पी0 भार्गव बुक हाऊस आगरा 1999 पृ0 32
2. पाण्डेय,डा0 रामशकल,शिक्षा के दार्शनिक तथा सामजशास्त्रीय आधार, साहित्य भवन प्रकाशन,आगरा,1999 पृ0 44
3. गुप्ता,डा0एस0पी0,आधुनिक मापन एवं मूल्याकंन,साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा 2001 पृ0 59.

***

राही मासूम रजा कृत आधा गांव : एक विश्लेषण

डॉ. राम कृष्ण *

ग्रामीण जीवन का अध्ययन आज की युगीन आवश्यकता है। आंचलिक कहानियाँ और उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है। ''आंचलिक उपन्यास एक सीमित अंचल या क्षेत्र विशेष के सर्वांगीण जीवन को जिसमें वहाँ के साधारण–असाधारण विवरण, परिचित–अपरिचित भूमियों का उद्‌घाटन अच्छी–बुरी छवियों का अंकन आदि निहित होता है। वस्तुन्मुखी दृष्टि से रूपायित करता है तथा इसमें रचनाशीलता का नया आग्रह एवं लोकधर्मी भाषा बोलियों–उपबोलियों की भी विविध भंगिमायें निहित होती हैं।''[1] अतः आंचलिक उपन्यास साहित्य के लिए मूल्यवान देन हैं। समीक्षकों ने 'आधा गाँव' को श्रेष्ठ आंचलिक उपन्यासों में एक माना है।

डॉ0 राही मासूम रज़ा ने अपनी इस रचना में अपने रचनात्मक संघर्ष, अतीत की घटनाओं और जीवन के यथार्थ को नया अर्थ देकर चित्रांकित किया है। अपने हक के लिए लड़ता भूमिहीन सर्वहारा वर्ग, जमींदारी के टूटते ही गाँव में सिर उठा कर रोटी की बेहतरी हेतु महानगरीय जीवन–यापन के लिए बाध्य होता है। आंचलिक गंध को समेटे शीया मुसलमानों के जीवनाधारित इस उपन्यास में राही ने अनास्था, कुठा, संत्रास, अजनवीपन, मूल्यहीनता, परम्परा खंडन भग्नाशा, भद्‌दगी, तनाव व टूटन आदि किस तरह गंगौली में पनपते हैं उनका बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। प्रादेशिक रुप एवं आभा के कुशल चितेरों रेणु, शैलेश मटियानी, नागार्जुन, शिवप्रसाद सिंह, रामदरस मिश्र, देवेन्द्र सत्यार्थी, रांगेय राघव, विवेकी राय आदि के रचनाक्रम में योग देते हुए अपने ही गाँव गंगौली के रचनात्मक आलेख में सघन आंचलिकता का प्रयोग राही मासूम रजा ने किया है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण राही दुनिया के बड़े कथाकारों में से एक हो गये। आलोच्य उपन्यास के कथानक में उन्होंने पूरे गाँव को न लेकर आधा गाँव को ही कथा का विषय बनाया है, जहाँ शीया जमींदारों के रोमांस, मजलिस, मर्सिया, माजिया और सेहरा के संदर्भों में आस्था, भाषा, कला–रुचि, रुढ़ियों, संस्कृति–बोध, गीत–नृत्य आदि भी तरल राग–बोध के स्तर पर कथाकार के माध्यम से उजागर होती चली है।

इस उपन्यास में मुसलमानों की टूटती हुई स्थिति, उनकी पीड़ा, भय, आशंका और पाकिस्तान बन जाने के बाद उनकी मनः स्थिति का तथा साथ ही जमींदारी टूटने के बाद जमींदारों और नीची जातियों की स्थिति में

---

* एसो० प्रोफे०, हिन्दी विभाग पं० दीनदयल उपाध्याय राजकीय बालिका महाविद्यालय सेवापुरी वाराणसी (उ० प्र०)

होने वाले परिवर्तन का विशिष्ट चित्रण हुआ है। ''यह जिन्दगी लेखक की भोगी हुई है। अतः इसका 'डीटेल' बड़ा ही स्वाभाविक और विश्वसनीय है।''[2] जमींदारों के पैरों तले वाली धरती के खिसक जाने की घबराहट, सदियों से शोषित वर्ग का आक्रोश, रिश्वतखोर पुलिस प्रशासन, अंधी न्याय व्यवस्था, तत्कालीन जनविरोधी कांग्रेस सरकार, पाकिस्तान का यथार्थ, अराजकता का चित्रण करते और नैतिक मूल्यों के टूटने का एहसास दिलाते राही की आँखें विभिन्न मानवीय कोणों से संवेदना की गहराई तक उतरती इस कृति में दृष्टिगत होती है।

अपने इस उपन्यास के कथानक का आधार 'आधा गाँव' को ही क्यों बनाया, इस बारे में स्वयं राही ने लिखा है, ''इस वक्त इस आधा गाँव की कहानी बड़े नाजुक मोड़ पर है। मैं जानता था कि इस कहानी में यह मोड़ आयेगा, इसलिए मैंने पूरे गाँव को नहीं, बल्कि केवल गाँव के टुकड़े को चुना, जिसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ। कथाकार के लिए यह जरूरी है कि वह उन लोगों को अच्छी तरह जानता हो जिनकी वह कहानी सुना रहा है। मैं इन तमाम लोगों को जानता हूँ।'[3] गंगौली गाँव के उत्तर और दक्षिण पट्टी के छोटे बड़े जमींदार शिया मुसलमानों की जीवन पद्धति का, मोहर्रम के प्रतीकात्मक मूलाधार को ग्रहण करते हुए, कथाकार ने चित्रण किया है। इन्हीं परिवारों के बीच राही का भी बचपन बीता था, इसलिए भी राही इन्हें भरपूर जानते थे, इनसे उन्हें प्रेम भी था और यही कारण है कि कथाकार ने स्वयं सपरिवार इस कहानी में उपस्थित होकर अपने बचपन से इस कथा का आरम्भ किया है। कहानी किसी निश्चित नायक या नायिका के इर्द–गिर्द न घूमकर समय–सरिता में स्वाभाविक रूप से बहते हुए 'समय की कथा' बन गयी है। लेखक के मन में गाँव के प्रति अनुरक्ति, सहानुभूति और आत्मीयता है जिसे उसने भूमिका में स्पष्ट भी कर दिया है'– मैं तो गंगौली का ही हूँ। मैं गंगौली को ही जानता हूँ।'[4]

वास्तव में 'आधा गांव' उपन्यास नायक विहीन है। कारण यह है कि डॉ0 राही ने किसी भी पात्र को कथानक से अधिक महत्व नहीं दिया है। कुल छः खण्डों में(जिसमें एक खण्ड भूमिका का है) लिखे गये इस कहानी का वास्तविक नायक 'समय' है। ''वास्तव में इस उपन्यास की केन्द्रीय वस्तु है, समय की गति। समय ही 'आधा गाँव' का नायक है और उसी की गतिविधि से इस उपन्यास का तानाबाना बुना गया है।''[5] इस संबंध में राही स्वयं कहते हैं कि ' यह गंगौली में गुजरने वाले समय की कहानी है।' फिर भी कुछ पात्र जैसे सैफुनिया, सईदा, सल्लो, सितारा, गुलबहरी नईमा बानो आदि स्त्री पात्रों और फुन्नन मियाँ, मिगदाद, फुस्सू, कम्मों तथा हकीम चा आदि जैसे पुरुष भुलाये नहीं जा सकते और कथा–संगठन भी इन्हीं के आधार पर हुआ है। जमींदारी के जमाने में होने वाले उत्सवों की पतनोन्मुख और जमींदारी उन्मूलन के बाद मोहर्रम उत्सव की पतनोन्मुख

प्रक्रिया का चित्रण करते हुए कथाकार ने यहाँ शीया घरानों में होने वाले उत्सवों और फिर समय के साथ आने वाली समस्याओं, पाकिस्तान बनाने के पीछे छिपे अवसरवादी लोगों एवं स्वतंत्रता की सही पहचान कराने और भ्रष्टाचार को उजागर करने का प्रयास यहाँ राही ने किया है।

उपन्यास की कथा आंचलिक होते हुए भी भारतवर्ष के बंटवारे के समय की कथा को केन्द्र में लेकर चली है। यह उपन्यास भारत के राजनीतिक इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना और उससे उत्पन्न त्रासद परिणामों को लेकर लिखा गया है, जिसके कारण कोई विशिष्ट चरित्र उसमें नहीं उभर पाया है जिसके परितः 'आधा गांव' धूमता दिखाई दे सके।''[6] इस उपन्यास में लेखक के राजनीतिक दृष्टिकोण का भी परिचय प्राप्त होता है। वे इसमें सीमित क्षेत्र की घटना, भाषा और बोलचाल से संबंधित चित्रण करते हुए भी एक विलक्षण सांकेतिकता के द्वारा सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन को ध्वनित और व्यंजित करते चलते हैं।

राही को अपने गाँव गंगौली से विशेष लगाव है इसलिए वे पाकिस्तान का समर्थन कर भी कैसे सकते थे। देश का प्रतिनिधि गाँव गंगौली को बनाकर जनमानस की सोच में, स्वतंत्रता पूर्व व बाद की स्थिति को, राही ने बड़ी निष्पक्षता के साथ उकेरा है। डॉक्टर विवेकी राय ने इस संबंध में लिखा कि, ''सन् 1947 के बाद इस देश के आगे लूट–पाट, हत्या, बर्बरता, हिंसा, घृणा और अमानवीयता से जुड़े जो नये जीवन मूल्य बंटवारे के साथ उभरे, उनकी सही स्थितियों को कहने की यशपाल, कर्तार सिंह दुग्गल और भीष्म साहनी आदि से सही जगह पर खड़े होकर राही मासूम रजा कुछ कह पाते हैं। भारत के बंटवारे के प्रश्न पर उत्तर देना साहस की बात है और अपनी संस्कृति के भीतर से नवोदित पाकिस्तान परस्ती की वास्तविकता को खोलना तो साहस के साथ जोखिम का काम भी है। जिस सीमा तक यह साहस सही में दृष्टिगोचर होता है वह कम नहीं है। अपनी जमीन की राष्ट्रीय पीड़ा का यह साक्षात्कार जितना प्रखर, तेज और ताजा है उतना ही क्रान्तिकारी भी है।''[7] नफरत की हवा में उड़ते शैलाब की पकड़ एक जगह विकट अंतर्दाह के रूप में राही ने व्यक्त किया है, ''गंगौली में गंगौली बालों की संख्या कम होती जा रही है और सुन्नियों, शियों और हिन्दुओं की संख्या बढ़ती जा रही हैं''।

'अलग–अलग वैतरणी' की तरह 'आधा गाँव' का लेखक भी हिन्दू–मुस्लिम एकता मिटने के दर्द को बड़ी हसरत और दर्द के साथ देखता है, आधा गाँव में साम्प्रदायिक और अवसरवादी ताकतों को सरेआम नंगा किया गया है जो मेल–जोल और सुख–चैन से रह रहे हिन्दू–मुसलमानों में वैमनस्यता के बीज बोने से बाज नहीं आते हैं। उपन्यासकार ने हिन्दू और मुसलमानों के उन उग्रवादी तत्वों की अच्छी खबर ली है जो दोनों सम्प्रदायों में तनाव बनाये रखने में सक्रिय भूमिका

निभाते हैं। इस सम्बन्ध में विशेषकर अलीगढ़ के शिक्षित समाज की चर्चा की जा सकती है। कथाकर ने यहाँ ग्रामीण मुसलमानों की धार्मिकता को मोहर्रम के माध्यम से रेखांकित किया है। जमींदारी के रहते मोहर्रम की जो शान थी उसको मनाने का जो उत्साह था, वह जमींदारी उन्मूलन के बाद नहीं रहा।[8]

मार्क्सवादी सोच की सांकेतिकता राही के धार्मिक सोच में दिखता है और इसीलिए वह यहाँ यह संकेत भी दे रहे हैं कि धर्ममूल नहीं है, मूल है धार्मिक आचरण करने वालों की आर्थिक स्थिति। मोहर्रम जहाँ जमींदारों के लिए अपना बड़प्पन दिखाने और दूसरों को छोटा सिद्ध करने का साधन है, वहीं सामान्य जन के लिए हिन्दू–मुसलमान के भेद–भाव के बिना वह सच्ची भावना की साधना है। उत्तरपट्टी और दक्षिणपट्टी के शिया जमींदारों के बीच की प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्या की अभिव्यक्ति के माध्यम मोहर्रम के अवसर पर निकाले जाने वाले ताजिए बनते हैं। अपने–अपने ताजिए की कीमत इनके निकालने वालों की हैसियत को व्यक्त करती है। इन ताजिए की महत्ता बनाए रखने के लिए गंगौली के शिया जमींदार झूठे केसों में फंसाकर सामान्य व्यक्तियों की बलि भी चढ़ा सकते हैं। मोहर्रम के अवसर पर नौहा पढ़ने, बेहोश होने, रोने–पीटने में रस्म अदयगी मात्र दीखता है। इसी बीच दुनियादारी की बात भी करना (जैसे मोहम्मद हुसैन–रजिया की शादी) वे नहीं भूलते। लेकिन ऐसे लोगों को भी इसमें देखा जा सकता है जिसमें इनका दुःख इमाम के माध्यम से अभिव्यक्ति पाता है। लोगों द्वारा तरह–तरह की मन्नतें मानना एवं एक ब्राह्मणी द्वारा उसकी उल्टियां न गिरवा जाने के कारण उसका भय आदि सब बातें ग्रामीण जीवन में व्याप्त अंधविश्वासों की ओर इशारा करते हैं। कथाकार ने इसका सदैव विरोध किया। ताजिए में हिन्दुओं का भी शरीक होना और हिन्दू–मुस्लिम संबंधों की चर्चा भी निष्पक्ष सोच का दर्शन कराती हैं। लेकिन जमींदारी के टूटते ही सब कुछ सन्नाटे में गुम हो जाता है।

गाँव की निजी पहचान तो सही अर्थों में इन्हीं सांस्कृतिक मूल्यों की संज्ञाओं में होती है। गाँव में गाजीपुर से ही नहीं अपितु लखनऊँ तक के मियाँ लोग आते हैं। अपनी मुरादों की मन्नते मानते हैं। गाँव में महीनों पहले से ताजियों की तैयारियाँ होने लगती हैं लेकिन आजादी के बाद गंगौली की मजलिस मरसिया, नोहा, ताजिया, सेहरा, सोजेखानी और सारा का सारा उल्लास अचानक लुप्त होने लगता है और कुछ नए शब्दों की गूँज जैसे जमींदारी बॉड, भूमिधरी, कस्टोडियन, पंचायत, इलेक्शन, खडन्जा, लालटेन, भ्रष्टाचार, पार्टी बन्दी और फिल्मी गाने आदि गलियों में भर जाती हैं। परन्तु जमीदारों की मनमानी, 'तमाम छोटे बड़े जमीदार गिरोहबंद हैं, रात को डाका डलवाते हैं और दिन को मुकदमा लड़वा रहे हैं।' कुल मिलाकर सारे मूल्य अब टूटते से दिख रहे हैं। उपन्यास का अभीष्ठ भी यही है।

स्वतंत्रता पश्चात गांव के बदलते हुए भावात्मक एवं संस्थानिक दोनों रूपों को लेखक ने यथाशक्ति अभिव्यक्ति देने की कोशिश की है।

गाँवो में जहां जमींदारी की समाप्ति हुई है, वहां एक नया छुटभैया वर्ग पैदा हुआ, जो भ्रष्टाचारी है तथा रात–दिन षडयंत्रों के ताने–बाने बुनना, पुलिस से मिलकर गाँव में दलबंदी करना, नये किस्म की ओछी राजनीति आदि विविध कार्य करता है। लेखक कहता है कि ऐसे युग की समाप्ति के बाद जनमानस अपरिचित नवारम्भ भूमिका की मांग करता है। किस्सागोई और बयानबाजी में स्पिरिट में समूह चित्रों को बांधता लेखक परिवर्तन की नयी तेज चपेट में शायद स्वयं के खो जाने का अनुभव करता है और पूरे अस्तित्व के साथ संदेह भूमिका के रूप में कूदकर अपने को टटोलता है। फिर भी कुल मिलाकर वह न तो अपने और न किसी कहानी को बांध पाता है। बिखरी कथा में वह समय को बांधता चलता है।

सामन्ती समाज की ह्रासशीलता और उस ह्रासशीलता का स्वाभाविक एवं यर्थाथ चित्रण करने के लिए कथाकार ने यहां समलैंगिक और विषमलैंगिक संबंधों की चर्चा किया है जबकि विषमलैंगिक संबंधों की चर्चा से पूरा उपन्यास भरा पड़ा है। शिया समाज में विवाहेत्तर यौन–सम्बन्ध आम बात है, इस समाज के स्त्री–पुरूष कौन किससे लगा है, इसकी चर्चा अक्सर करते हैं। यहां सम्पन्न और कुलीन पुरुषों द्वारा छोटी जाति की युवतियों को अपनी हवस का शिकार बनाने के दर्जनों प्रसंग देखे जा सकते है। यहाँ मुस्लिम परिवारों की चारित्रिक–नैतिक गिरावट को देखा जा सकता है। ''मुस्लिम जिन्दगी की परम्परागत यौन– सम्बन्धी नैतिकता की यह एक जीवन्त सच्चाई है।''[9]

'आधा गांव' में प्रयुक्त गालियों पर विवाद और मतभेद बहुत हैं और इसकी सबसे अधिक चर्चा भी हुई है। भाषा की जिन्दादिली और पात्रों की सहज अभिव्यक्ति चित्रांकित करने के लिए ही कथाकार ने यहां गालियों का प्रयोग कर पात्रों के जिन्दगी के रवैये को 'ऐज इट इज' प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। 'ओस की बूंद' नामक अपने ही उपन्यास में राही ने स्वयं स्वीकारा कि जो पात्र बोलेगे वहीं वो लिखेंगे, चाहे इसके लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार भी न मिले। वे पात्रों पर स्वयं को थोपना नहीं चाहते। उनके इस उपन्यास की ''सबसे बड़ी विशेषता है– संयमहीनता, इसलिए यह पहला ऐसा जीवन्त उपन्यास है जिसके सभी पात्र बे–लगाम हैं और उनकी अभिव्यक्ति सहज, सटीक और दो टूक है।[10]

डॉ0 राही के पात्रों की भाषायी संयमहीनता समीक्षक विवेकी राय को कहीं भी नहीं दिखती, बल्कि इनमें उन्हें सहजता दिखती है, ''मुझे इसमें संयमितता दृष्टिगोचर हो रही है। कुल मिलाकर एक दर्जन संगीन गालियां है, जिनका प्रयोग कुल मिलाकर लगभग तीन दर्जन बार हुआ है। यह एक नियम से हुआ है। क्योंकि समस्त गालियाँ उपन्यास के उत्तरार्द्ध में हैं। इनके वक्ता भी कुछ खास लोग हैं जैसे मिगदाद, हाजीजी, फुन्नन मियाँ, हकीम जी और हरिजन एम0 एल0 ए0 परसुराम। ये लोग जमाने की चोट से, क्रत

से पागल, विक्षुब्ध, फ्रस्टेट, असफल और मन बढे लोग हैं। ये ही पूर्वार्द्ध में संयमित–संतुलित भाषा बोलते हैं, और उत्तरार्द्ध में सनक जाते हैं कि कट–कटा के दुर्वाक्य बकने लगते हैं। वास्तव में ये जिन्दगी से ऊबे, पीड़ित, निराश और शहर जाने से बचे हुए लोग हैं। लोगों का ऐसा बीहड़ जुलूस जब गालियों को बकता सामने आता है तो वह टेक्निक की उच्छृंखला से अधिक गाँव की टूटन के मनोवैज्ञानिक विस्फोट के रूप में अधिक विश्वसनीय प्रतीत होता है।''[11] वास्तव में गालियाँ गालियों के लिए न होकर पात्रानुरूपता और स्वाभाविकता लिए हुए है। वह गाली वास्तव में एक प्रकार की आधुनिकता के लिए धक्का होता है।

'आधा गाँव' की भाषा बड़ी जीवन्त, जिन्दादिली लिए हुए, सजीव प्रवाहपूर्ण और स्वाभाविकता से भरपूर है, जिसमें भोजपुरी की गंवई गंध है, जिसकी सोंधी खुशबू ने उपन्यास समीक्षकों को बरबस ही अपनी तरफ आकर्षित कर लिया है।

इस उपन्यास की भाषा में चित्रात्मकता, उपमामयता, लाक्षणिक प्रयोग, मानवीकरण आदि जहाँ हमें चमत्कृत करती हैं, वहीं भोजपुरी–उर्दू का इतना सटीक और स्वच्छन्द प्रयोग उनकी सृजन क्षमता का शानदार परिचय देती है, जिसने समीक्षकों को राही साहब की कृतियों में औपन्यासिकता का भान कराया। अरबी–फारसी के तत्सम शब्दों की भरमार ने कुछ लोगों को दिग्भ्रमित किया, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि देवनागरी लिपि में छपी यह कृति हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। इसमें एक ओर जहाँ भाषा में काव्यात्मकता, व्यंग्यात्मकता एवं सहजता है वहीं दूसरी ओर इसमें खराबपन और सच्चाई लाने हेतु मुहावरे, सूक्तियाँ और गालियाँ भी खूब हैं। भोजपुरी उर्दू का प्रयोग शुद्ध आंचलिक आग्रह है। ''आधा गाँव' की भाषिक उपलब्धियाँ बहुत महत्वपूर्ण हैं। भाषा विज्ञान के रास्ते नहीं, एक हिन्दी की जिन्दा किताब के साक्ष्य में यह कहने का मार्ग प्रशस्त हुआ कि उर्दू कोई स्वतंत्र भाषा होने से अधिक हिन्दी की सहेली है।... वास्तव में 'आधा गाँव' का प्रकाशन एक सर्वथा नई परम्परा का प्रत्यावर्तन होने के साथ–साथ एक अभिनंदनीय साहित्यिक साहस है। कुल मिलाकर इतना कहा जा सकता है कि 'आधा गाँव' की भाषा पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक सभ्य और सुसंस्कृत मुसलमान परिवार की पारिवारिक और व्यावहारिक भाषा है, जिसका अपना मीठा स्वाद है।''

वस्तुतः कथाकार राही मासूम रजा ने अपनी रचना 'आधा गाँव' की कथायात्रा में विविध पहाड़ों एवं कोनो से शिया परिवारों की अंतरंग व्यथा और समयानुसार बदलती मनोदशा का सफल चित्रण किया है। स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर स्थितियों को, जमींदारी उन्मूलन प्रक्रिया और मुस्लिम धर्मोत्सवों को जिस तरह गंगौली निवासियों के संदर्भ में इन्होंने देखा और अभिव्यक्ति दी वह उनके (राही के) निष्पक्ष राष्ट्रीय सोच का परिचय करा देती है। मुस्लिम लीग पाकिस्तान और दिग्भ्रमित कट्टरपंथी साम्प्रदायिकता के

प्रति लेखक की दृष्टि पैनी व नुकीली है। राष्ट्रीय तेवर मुखरित हो उठा है। 'गाजीपुर एपिक' की भूमिका में लिखी गयी वह कृति ज्वलंत राष्ट्रीय समस्याओं के निदान हेतु आम जनमानस में तलाश करती दिखती है। इस बीच पाठक का गंगौली, गाजीपुर और गंगा के प्रति उग्र प्रेम भावना का परिचय मिल जाता है। यह 'आधा गाँव' एक निर्मम आत्मनिरीक्षण है। यथार्थ की भूमि पर ही चलते रहने के कारण उन्होंने यहाँ गंगौली के जन जीवन की भीतरी एवं बाहरी अच्छाइयों और बुराइयों को शब्दों के माध्यम से पाठकों के समक्ष हू–ब–हू प्रस्तुत कर दिया है।[12]

निष्कर्षतः विवेच्य उपन्यास में अंचल ही नायक होने के कारण उसकी विशेषताओं को रेखोकित करन के लिए सौ से भी अधिक पात्रों का चित्रण किया गया है। इससे पूर्वी उ0प्र0 के अंचल गंगौली गांव का सजीव चित्रण हुआ है। अपने साहित्यिक शक्ति और सौन्दर्य के कारण ही 'आधा गाँव' दुनिया के तमाम महत्वपूर्ण औपन्यासिक कृतियों में से एक गिना जाने लगा है।

संदर्भ :

1. आंचलिक उपन्यास : संवेदना और शिल्प, डॉ0 ज्ञानचन्द गुप्त, पृ0 13
2. आंचलिक उपन्यास और ग्रामीण यथार्थ, डॉ0 विश्वनाथ तिवारी, पृ0 45
3. आधा गांव : डॉ0 मासूम रजा, पृ0 304
4. वही, भूमिका से , पृ0 303
5. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास(आधा गांव समय की कथा)– डॉ0 हरदयाल, पृ0 101
6. आधा गांव : एक आलोचनात्मक अध्ययन, डॉ0 दिलशाद जिलानी, पृ0 53
7. हिन्दी उपन्यास : उत्तरशती की उपलब्धियाँ – डॉ0 विवेकी राय, पृ0 40
8. आधा गांव – डॉ0 मासूम रजा, पृ0 230
9. आंचलिक उपन्यास– डॉ0 ज्ञानचन्द गुप्त, पृ0 146
10. आधा गांव – डॉ0 मासूम रजा, प्रकाशक की ओर से, कवर पृष्ठ
11. हिन्दी उपन्यास : उत्तरशती की उपलब्धियाँ – डॉ0 विवेकी राय
12. आंचलिक उपन्यास– डॉ0 ज्ञानचन्द गुप्त, पृ0 148

***

अलाउदीन खिलजी का 'दक्षिण भारतीय नीति' - ऐतिहासिक विश्लेषण

प्रियंका कुमारी *

उद्देश्य –

इस शोध – पत्र का उद्देश्य अलाउद्दीन खिलजी की दक्षिण भारत की नीति को समझना है वह दिल्ली सल्तनत का प्रथम ऐसा शासक था जिसने दिल्ली सल्तनत का विस्तार विंध्याचल पर्वत को पार करके दक्षिण भारत तक पहुंचाया. इसके साथ साथ दक्षिण भारत के राज्यों के साथ उसका संबंध कैसा रहा। उनके साथ नीति कैसी रही और इसके उद्देश्य क्या थे और उसके लिए दक्षिण का महत्व इतना क्यों था? दक्षिण भारत को जीतने के लिए उसने दिल्ली सल्तनत के सेना में कई ऐसे सुधारित का कार्य किए जिसने की सेना को अधिक मजबूत बनाया। यह सब किस तरीके से हुआ और कैसे हुआ इसी बात को हमें इस शोधपत्र में जांच पड़ताल करना है?

मुख्य बिंदु : अलाउद्दीन खिलजी, दक्षिण भारत की नीति, दक्षिण के राज्य और महत्व

पृष्ठभूमि :

अलाउद्दीन खिलजी 20 वर्ष तक सुल्तानरहा जिसने दिल्ली सल्तनत को मजबूत करके एक शक्तिशाली साम्राज्यवादीसल्तनत में बदल दिया। इसने आसपास के क्षेत्रों को जीतकर के इसकी पृष्ठभूमि की शुरुआत की । इसने साम्राज्य विस्तार के साथ साथ और कई प्रशासनिक सुधार भी की जो कि उस समय के लिए आवश्यक थे शासन तंत्र को योग्यता के आधार पर रखने का कोशिश किया और जो साम्राज्य विस्तार के लिए पर्याप्त नहीं था उसमें तमाम बदलाव किए। इसी बदलाव को हम साम्राज्यवादी विस्तार नीति और प्रशासनिक सुधार के रूप में देख सकते हैं। जब वह शासक बना तो उसके सामने अनेक परिस्थितियां मुंह बाए खड़ी थी उसने चुकी अपने चाचा की हत्या करके शासक बना था इसके कारण लोग उसको स्वीकार करने को तैयार नहीं थे तो उसने धन का प्रलोभन देकर के अपने विरोधियों को अपनी ओर मिलाया और उस समय जो भी पड़ोसी राज्य जो उसका विरोध कर रहे थे उनको जीत करके दिल्ली सल्तनत में मिला लिया । उत्तर भारत को जीतने के पश्चात अब उसकी बारी दक्षिण भारत को जीतने की थी अलाउद्दीन के सैनिक अभियानों का वर्णन करते हुए अमीर खुसरो और बरनी के कहे गए बातों को भी जानना आवश्यक है उसने अपने शासन के शुरुआती वर्षों में सलाहकारों से इस महत्वकांक्षा पर विचार विमर्श किया ।

---

* शोधार्थी, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

उसकी उम्मीद थी जिसको वह पूरा करना चाहता था और वह एक विजेता के रूप में अपने को दिखाना चाहता था वह अपने साम्राज्य को मजबूत करना चाहता है इसी परिपेक्ष्य में उत्तर भारत के कई अभियानों को देख सकते हैं. इसके साथ–साथ दक्षिण भारत के अभियानों को देखा जा सकता है । इसमें उसने तमाम सुधारे किए जिससे अभियान को पुरा होने में मदद मिल सके।

हम अब अलाउद्दीन की दक्षिण भारत की नीतियों को समझने का कोशिश करेंगे कि उसने किस तरीके से दक्षिण भारत में दिल्ली सल्तनत को प्रसारित किया। अलाउद्दीन की उपलब्धियों में सबसे बड़ी उपलब्धि दक्षिणी राज्यों को जीतने की है वह दिल्ली सल्तनत का पहला शासक था जिसने कि विंध्याचल पर्वत को पार करके दक्षिण को जीतने का प्रयास किया और इसमें उसको सफलता भी मिली। यह विजय अलाउद्दीन के शासन के आधे समय के बाद हुआ। दक्षिण भारत विजय की जानकारी का स्रोत बरनी की पुस्तक तारीख, फिरोजशाही और अमीर खुसरो की पुस्तक खजिनउलफुतूह और इसामी की पुस्तक फुतूह उस सलातीन से चलता है। दक्षिण भारत का सैन्य अभियान का भार अलाउद्दीन खिलजी ने मलिककाफूर को दिया।

दक्षिण भारत के राज्यों को देखें तो वहां कई राज्य थे जिसमें देवगिरीए तेलंगाना, मदूरे और द्वार समुद्र प्रमुख थे। वारंगल देवगिरी विंध्याचल पर्वत के दक्षिण में था जहां यादव वंश शासन कर रहे थे । वारंगल देवगिरी के दक्षिण पूर्व में कृष्णा और गोदावरी नदियों के बीच में था जहां पर काकतीय वंश का शासन चल रहा था द्वारा समुद्र राज्य जो कि आधुनिक समय में कर्नाटक राज्य में स्थित है जहां पर होयसल वंश का शासन चल रहा था। मदुरै जहां पर पांडे वंश का शासन चल रहा था। इन राज्यों के आपसी संबंध अच्छे नहीं थे बल्कि संबंधों में कटुता थी वह बराबर एक दूसरे को नियंत्रण करने का प्रयास करते थे और एक दूसरे के शक्तियों पर हमेशा अंकुश लगाने की कोशिश करते थे यहां तक कि अपने पड़ोसी राज्यों में कई बार प्रवेश कर गए इसके साथ–साथ दूसरे पड़ोसी राजाओं को हराने के लिए उन्होंने तुर्क सेनाओं से भी सहायता लेने में कोई संकोच नहीं किया इसलिए यह दक्षिण भारत के राज्य इतना धनी और समृद्ध होने के बावजूद भी अपनी रक्षा करने में असमर्थ रहे और इनके पास इतना संपत्ति और धन था जिससे कि उत्तर भारत के राज्यों के शासकों की आंख इस पर पड़ी और उत्तर भारत केके राजा दक्षिण भारत के राज्यों पर धनसंपदा को अर्जित करने के लिए उन्होंने कोशिश करना शुरू किया जिसमें से पहला शासक अलाउद्दीन खिलजी था जिसके दिमाग में आया कि दक्षिण भारत के राज्यों को जीत कर के वहां से अपने साम्राज्यवादी नीतियों में वहां के धन का उपयोग कर सकता है।

चुकी दक्षिण भारत के अभियान का भार अलाउद्दीन खिलजीने मलिककाफूर को दे रखा था उसने 1307–1308 में देवगिरी पर आक्रमण

किया। देवगिरी पर अलाउद्दीन ने आक्रमण राजा बनने के पहले ही किया था और वहां के शासक राम चंद्र देव ने आत्मसमर्पण करके वार्षिक कर देना स्वीकार किया था परंतु उत्तर भारत के राज्यों में व्यस्तता के कारण रामचंद्र देव ने कर देना बंद कर दिया बरनी का मानना यह है की अलाउद्दीन खिलजी ने मलिककाफूर के नेतृत्व में भेजी गई सेना का मुख्य उद्देश्य था बकाए राशि की वसूली करना वही दूसरे समकालीन लेखक इसामी मानते हैं कि इस अभियान का उद्देश्य रामचंद्र देव के पुत्र के द्वारा किया गया विद्रोह था। कुल मिलाकर के राम चंद्र देव ने मलिककाफूर के सामने आत्मसमर्पण कर दिया रामचंद्र देव को दिल्ली लाया गया जहां की अलाउद्दीन खिलजी ने उदारता पूर्वक उसके साथ व्यवहार किया और जीता हुआ देवगिरी वापस रामचंद्र देव को सौंप दिया उसको उपाधि भी दिया कई जागीरे कई उपहार दान में दिए। रामचंद्र देव ने अपनी पुत्री का विवाह अलाउद्दीन खिलजी के साथ कर दिया ताकि मैत्रीपूर्ण संबंधों को और मजबूत किया जा सके। अलाउद्दीन खिलजी की यह नीति दूरदर्शी और दक्षिण भारत के अन्य राज्यों के लिए जिस पर भरोसा कर सके दूरदर्शिता देखते हैं। अन्य राज्यों को जीतने में देवगिरी के राजा की सहायता बहुमूल्य रहा। 1309–1310 में मलिककाफूर ने वारंगल राज्य पर आक्रमण किया यह राज्य बहुत ही सुरक्षित किले के अंदर था जैसा कि अमीर खुसरो इसके बारे में बताते हैं मगर मलिककाफूर ने बड़ी कार्यकुशलता दिखाते हुए उस किले को घेर लिया और वहां के राजा प्रताप रूद्र देव को अंततः अलाउद्दीन खिलजी के समक्ष आत्मसमर्पण करना पड़ा। वहाँ से प्राप्त धन दिल्ली लाया गया।

देवगिरी और वारंगल राज्य को जीतने के पश्चात अलाउद्दीन खिलजी की नजर दक्षिणी के अन्य राज्यों पर बनी रही।द्वारसमुद्र राज्य दक्षिण में था जहां का शासक वीरबल्लालतृतीय अपने पड़ोसी राज्य के साथ संघर्ष में व्यस्त था उसी समय मलिककाफूर ने परिस्थिति का लाभ उठा कर के उसके राजधानी द्वारसमुद्र पर चढ़ाई कर दिया यह आक्रमण इतना तेज था कि वीरबल्लाल अपनी राजधानी को बचाने में असफल रहा और मालिककाफूर की सेना उसकी राजधानी को चारों ओर से घेर लिया वीरबल्लालको किसी से सहायता नही मिलीऔर वह मालिककाफूर के साथ संधि किया कि वह दिल्ली सल्तनत की अधीनता स्वीकार करेगा साथ ही प्रत्येक वर्ष कर देता रहेगा। द्वार समुद्र को जीतने के बाद अब उसकी नजर दक्षिण भारत की एक और राज्य पर पड़ी जो कि मदुरै था उस समय मदुरै मेंसत्ता के लिए गृह युद्व चल रहा था। मलिककाफूर ने ऐसी परिस्थिति का फायदा उठाते हुए वीर पांड्य की सेना को संघर्ष के लिए उकसाया और उस को पराजित किया मलिककाफूर की रामेश्वरमजीत लेने के बाद वहां के नगरों को लूटा और वहां से अकूत संपत्ति मिली। इस तरीके से दक्षिण भारत में अलाउद्दीन खिलजी का अभियान पूरी तरीके से सफल रहा ।उसने दक्षिण भारत के महत्वपूर्ण राज्यों को मिलाकर के दिल्ली सल्तनत के राज्य

विस्तार को दक्षिण भारत के सुदूर समुद्र तक पहुंचा दिया। 1313 ईस्वी में दक्षिण भारत में अंतिम अभियान अलाउद्दीन खिलजी का देवगिरी पर हुआ जहां के वर्तमान शासक ने दिल्ली सल्तनत को समझौते में दिया गया वचन को मुकर जाना था मलिककाफूर ने वहां के शासक को हराया और दक्षिण भारत के प्रशासनिक जिम्मेदारी मलिककाफूर को ही अलाउद्दीन खिलजी ने संभालने को कहा।

अगर हम अलाउद्दीन के दक्षिण भारत में साम्राज्यवाद विस्तार की नीति की चर्चा करें तो हम पाते हैं कि दक्षिण भारत की समृद्धि नीति उत्तर भारत की साम्राज्यवादी नीति से बिल्कुल भिन्नथी । उत्तर भारत के राज्यों को जीतने के पश्चात अलाउद्दीन खिलजी ने उसका प्रशासन स्वयं अपने हाथों में लिया और वहां अपने अधिकारियों को नियुक्ति भी किया परंतु दक्षिण भारत में ऐसा नहीं किया वहां पर जीते शासकों शासको से वार्षिक कर देने के लिए बाध्य किया इसके साथ–साथ उनके राज्य को भी लौटा दिया।दक्षिण भारत की दूरी उत्तर से दूर थी सुविधाओं की कमी थी शासन करने में बहुत बाधाएं आ रही थी इन्हीं परिस्थितियों को अच्छी तरह से समझा था। उसके आगे आने वाले समय में उसकी नीति उसके उत्तराधिकारीओं ने भी यही अपनाई लेकिन उस पर नियंत्रण बहुत समय तक रहा नहीं इसलिए विघटन की प्रक्रिया भी वहीं से शुरू हुई। इस विस्तार वादी नीति का आर्थिक परिणाम अच्छे हुए यह कि दक्षिण भारत से बहुत बड़ी मात्रा में धनराशि प्राप्त हुई जिससे कि दिल्ली सल्तनत के राजकोष में जबरदस्त बढ़ोतरी हुआ ।इसका कुछ इस तरीके से महत्व यह है कि दक्षिण और उत्तर भारत के बीच संपर्क बड़ा उस समय के तमाम ऐसे स्रोत से पता चलता है कि दक्षिण उत्तर भारत के बीच व्यापार संबंध पहले से बढ़ता हुआ दिखाई देता है।

अलाउद्दीन खिलजी ने दक्षिण भारत में पहली बार तुर्की सत्ता का विस्तार किया और एक ऐसा साम्राज्यवादी नीति का आदर्श प्रस्तुत किया जिसने उसके उत्तराधिकारी शासकों की नीतियों को भी प्रेरित किया। भारतीय इतिहास में गुप्त साम्राज्य के पश्चात यह पहला दूसरा ऐसा मौका था जब कोई उत्तर भारत का शासक दक्षिण भारत में अपने राज्य का विस्तार करने में सफलता पाया। इस समाज्यवादी विस्तार की नीति को बनाए रखने के लिए अलाउद्दीन खिलजी ने कई प्रशासनिक और आर्थिक सुधार भी किए जिससे कि केंद्रीय प्रशासन की शक्ति और राजा की निरंकुशता में वृद्धि हुई अलाउद्दीन की साम्राज्यवादी नीति विशेषकर उसकी दक्षिण नीति काफी महत्वपूर्ण और दूरगामी परिणाम हुएए दक्षिण राज्य में मिलाएं भी नहीं उसकी कई इच्छाएं पूरी हो गई और वह सैनिक युद्ध करने से भी बच गया इसी नीति को आगे मोहम्मद बिन तुगलक ने दक्षिण भारत में साम्राज्य विस्तार करने में प्रयोग किया।

अलाउद्दीन की साम्राज्यवादी विस्तार नीति में केवल लंबी सफलताएं ही नहीं रहा अगर साम्राज्यवादी नीति को ध्यान से देखें तो अलाउद्दीन की सफलता कुछ समय के लिए ही होती थी उसके बाद जीते हुए राज्य फिर से उभर कर के सामने आ जाते थे। दक्षिण भारत की विजय में ऐसी कई घटनाएं हुई जब मलिककाफुर की विजयी सेनाएं वापस लौटी तो दक्षिण के राज्य उठ खड़े हो गए और अवहेलना करने लगे

अलाउद्दीन खिलजी और आगे आने वाले दिल्ली सल्तनत राजाओं के युद्ध से हम स्पष्ट समझ सकते हैं कि अलाउद्दीन खिलजी की सफलता एक स्थायी सफलता नहीं थी। जब तक अलाउद्दीन खिलजी जीवित रहा तब तक यह व्यवस्था चलती रही लेकिन उसके मरने के पश्चात यह व्यवस्था के नकारात्मक पक्ष आने लगे फिर भी विस्तार वादी नीति के कारण दिल्ली सल्तनत को एक मजबूत सल्तनत मेंबदल दिया यह उस समय की इसके द्वारा किया गया सबसे बड़ा कार्य था।

इस शोध–पत्र का सार देखें तो तमाम स्रोतों और तर्कों, साक्ष्यों के आधार पर यह प्रमाणिक है कि अलाउद्दीन खिलजी की दक्षिणी भारतीय नीति उस समय की जरूरत की मांग थी ।वह ऐसा पहला दिल्ली सल्तनत का राजा हुआ जिसने की दक्षिण भारत में कदम रखा और उसमें उस हद तक उसको सफलता भी मिला। इसकी उपलब्धि यह रही कि दिल्ली सल्तनत का विस्तार उत्तर भारत से निकल कर के दक्षिण के सुदूर समुद्र तक पहुच गया। हां इस साम्राज्यवादी नीति में कमियां थी कि वहां के राजा को दिल्ली सल्तनत में नहीं मिलाए। उसे केवल कर लेतेरहै और प्रशासन खुद वहां के राजा को सौंप दिया है । इसका परिणाम यह हुआ कि जब उत्तर भारत के राजा कमजोर हुए तो दक्षिण के यह राज्य अपने को स्वतंत्र कराने के लिए आगे आए और दिल्ली सल्तनत की यह नीतियों में कमी विघटन का भी कारण आगे आने वाले समय में इसके उत्तराधिकारियों के लिए बना ।इस शोध–पत्र से यह भी पता चलता है की उत्तर और दक्षिण भारत के बीच संचार और व्यापार का विकास भी हुआ आवागमन के साधन बढ़े।

संदर्भ :

1. Chandra- Satish, History of Mediaeval India,Orient Balck Swan Press,2007
2. Habib- Irfan, Mediaeval India,Oxford University Press,1998
3. Verma-H-C, Mediaeval India, Delhi University, Delhi
4. Habib-Mohammad and Nizami-Khaliq Ahmad ,Comprehensive History of India: The Delhi Sultanat (A-D-1206&1526), People's Publishing House, 1970, Alaudin pp 201,1194,1195
5. Lal-K-S,Studies in Medieval Indian History,Ranjit Printers & Publishers, 1966 – India pp 206,114,184

6. Lal-K-S, Returnto Roots: Emancipation of Indian Muslims, Radha Publications, 2002,University of Michigan
7. Mahajan-V-D, History of Mediaeval India,S-Chand Company Ltd-Delhi India ,pp 128-158
8. Niazi-GhulamSarwar, The Life and Works of Sultan AlauddinKhalji,Atlantic Press,2021
9. Raman-Aroon,The Treasure of Kafur, Pan Mac Millan, Delhi, December 20,2013
10. Zilli-Ishtiaq, Tarikh– I FirozShahi, Primus Books, 2015-
11. Khan-Iqtidar Alam, Historical Dictionary of Medieval India, the Scarecrow,2008 ,pp120-130

***

''सामाजिक सुधार आंदोलन में दलित साहित्य की भूमिका''

डॉ. महेन्द्र कुमार सार्वा *

सामाजिक आंदोलनो में दलित सामाजिक स्तरीकरण अध्ययन की उपयोगिता महत्वपूर्ण है। इतिहास में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में परिवर्तन कुछ विशिष्ट आदर्शों एवं शक्तियों द्वारा हुआ है। इसी प्रकार का एक महान परिवर्तन आधुनिक भारतीय समाज में दलित सामाजिक सुधार आंदोलन में दलित साहित्य की भूमिका है। भारतीय समाज की दलित दृष्टि उच्च जातियों की दृष्टि से भिन्न है। दलित समुदाय नए आधुनिक भारत के निर्माण की ओर अग्रसर है। अतः यह उचित है कि इस रुपान्तरण के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक तत्वों को खोजा जाए। हमें राष्ट्र के लिए इसकी उपयोगिता एवं भविष्य के लिए इसके सम्भावित परिणामों पर भी ध्यान केन्द्रित करना होगा। इस यथार्थ को स्वीकारना होगा कि भारतीय समाज का इतिहास लिखते समय 'दलित समाज' के साथ सम्यक् न्याय नहीं किया गया । भारतीय समाज की संरचना, सुव्यवस्था, सुरक्षा व समृद्धि में 'दलित समाज' का महत्त्वपूर्ण योगदान होते हुए भी उसकी 'योजनापूर्ण उपेक्षा' की गई। दलित सामाजिक आंदोलनो में दलित साहित्य की उपलब्धियों, सीमाओं और योगदान पर चर्चा करना इस लेख का उद्देष्य है।

दलित साहित्य एक सामाजिक सुधार आंदोलन है जिसका सूत्रपात दलित पैंथर से माना जाता है।जिसमें प्रमुखता से दलित समाज में पैदा हुए रचनाकारों ने इसे अलग धारा मनवाने के लिए संघर्ष किए। दलित साहित्य की शुरूआत मराठी से मानी जाती है, जहां दलित पैंथर आंदोलन के दौरान बडी संख्या में दलित जातियों से आए रचनाकारों ने आम जनता तक अपनी भावनाओं और पीड़ाओं को लेखों, कविताओं, निबन्धों, जीवनियों, कटाक्षों, व्यंगों, कथाओं आदि के माध्यम से पहुंचाया।(1) प्रायः दलित चिंतक नाथ, सिद्ध और संतों की कविताओं को दलित साहित्य की पृष्ठभूमि के रूप में चिन्हित करते रहे हैं, लेकिन साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस मान्यता को अपनी किताब '**दलित साहित्यः अनुभव संघर्ष एवं यथार्थ**' में अस्वीकार करते है। इसका कारण उन्होंने यह बताया कि चूँकि संत कविता में भक्त और ईश्वर का संबंध वैसा ही है जैसे दास और मालिक का । यह कविता कोई सामंतवादी ढांचे को तोड़ती नहीं है, इसलिए यह दलित कविता की पृष्ठभूमि नहीं हो सकती।(2)

चार्वाक वो पहला शख्स था, जिसने लोगों को भगवान के भय से मुक्त होने सिखाया। भारतीय दर्शन में चार्वाक ने ही बिना धर्म और ईश्वर के

---

* सहायक प्राध्यापक इतिहास शास. दू. ब. महिला स्नातको. महाविद्यालय रायपुर छ. ग.

सुख की कल्पना की। इस तर्ज पर देखने पर चार्वाक भी दलितों की आवाज उठाते हुए नजर आते है।(3)

साहित्य में दलित वर्ग की उपस्थिति बौद्ध काल से मुखरित रही है किंतु एक लक्षित मानवाधिकार आंदोलन के रूप में दलित साहित्य मुख्यतः बीसवीं सदी की देन है। भारत में दलित सामाजिक आंदोलन की शुरूआत महात्मा ज्योतिबा फुले के नेतृत्व में हुई। ज्योतिबा फुले ही वो पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने दलितों के अधिकारों के साथ–साथ दलितों की शिक्षा की भी पैरवी की।(4) यद्यपि ज्योतिबा फूले ने भारत में दलित आंदोलनों का सूत्रपात किये, लेकिन इसे समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का काम बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर ने किया। यदि बाबा साहब प्राचीन धर्मग्रंथों, पाश्चात्य साहित्य और भारतीय इतिहास आदि का शोधपूर्ण अध्ययन कर वास्तविक तथा सच्चा इतिहास उपलब्ध नहीं कराये होते, तो आज दलितों का इतिहास अंधकार के गर्त में डूबा हुआ होता। आंबेडकर ने सुप्त चेतना को झकझोर कर आत्मगौरव के बोध और स्वत्व के प्रकटीकरण की जो जमीन तैयार की, उसने शीघ्र ही दलित साहित्य को सामाजिक आंदोलन का रूप दे दिया। दलित समाज और दलित साहित्य ने कभी सपने में भी न सोचा था कि यह समुदाय एक दिन इस तरह उठ खड़ा होगा और उसका अपना साहित्य रचा जाएगा। (5) रवीन्द्र प्रभात ने अपने उपन्यास **ताकि बचा रहे लोकतन्त्र** में दलितों की सामाजिक स्थिति की वृहद चर्चा की है वहीं डॉ॰एन.सिंह ने अपनीं पुस्तक "दलित साहित्य के प्रतिमान " में हिन्दी दलित साहित्य के इतिहास कों बहुत ही विस्तार से लिखा है।(6) हीरा डोम की कविता जीवन में दमन के खिलाफ ईश्वर से शिकायत करती है, वहीं ईश्वर के पूर्वाग्रही रूप को उजागर करते हुए उसकी सत्ता को भी चुनौती देती है। उनकी शिकायत है कि उनका दुःख भगवान भी नहीं देखता है – '**हमनी के दुःख भगवानओं न देखता जे,हमनी के कबले कलेसवा उठाइबि**'। ईश्वर की सत्ता को चुनौती देने की बानगी देखिये– '**कहवा सुतल बाटे सुनत न बाटे अब डोम जानि हमनी के छुए से डेराले**। डोम को छूने मात्र से जो ईश्वर डर रहा हो। इस बात का बोध रखने वाला कवि कब तक ऐसे ईश्वर की सत्ता को मान सकता था।(7)

दलित साहित्य के तीन अनिवार्य संदर्भ हैं– हिंसा, राजनीति और शक्ति (पॉवर)। हिंसा का एक सिरा धर्मशास्त्रों से जुड़ा है, तो दूसरा समकालीन शास्त्रेतर हिंसा से। स्मृतिग्रंथ दलितों पर हिंसा को धार्मिक वैधता देते हैं। कतिपय पौराणिक और पारंपरिक आख्यान इस हिंसा का व्यावहारिक नमूना पेश करते हैं। ये नमूने वर्ण–जाति आधारित हिंसा को स्वीकार्य बनाते और सामूहिक मानस में इसे 'सहज गतिविधि' के तौर पर स्थापित करते हैं।(8) ठाकुर का कुँआ''प्रेमचन्द्र की एक प्रसिद्ध कहानी है,जिसका कथानक अस्पृश्यता पर केंद्रित है। कहानी की मुख्य पात्र गंगी अपने बीमार पति के लिए कुएँ का साफ पानी नहीं ला पाती है, क्योंकि उच्च जाति के लोग

दलितों को अपने कुएँ से पानी नहीं लाने देतें हैं। (9) ठाकुर का कुँआं के बारे में साहित्यकार ओम प्रकाश वाल्मीकिजी लिखते है –'' भारतीय समाज व्यवस्था ने दलितों के मौलिक अधिकार ही नहीं छीने बल्कि उन्हें निकृष्ट जीवन जीने के लिए भी बाध्य किया और उन पर कड़े कानून लागू किए.। उनके संपत्ति अर्जित कर प्रतिबंध लगाए.। सैकड़ों साल एक ही स्थान पर रहने के बावजूद वे उस स्थान के निवासी नहीं माने जाते हैं क्योंकि उनके पास संपत्ति के कागजात नहीं हैं. ठाकुर का कुआं (कविता) इसी सामाजिक सच्चाई को अभिव्यक्त करती है और दलितों की अंतःपीड़ा को सहज और सरल शब्दों में पाठकों के सामने रखती है.।(10)

हिंदी साहित्य में दलितों के जीवन को केंद्र में रखकर अनेक किताबें लिखी गई हैं जिनमें दलित जीवन की सच्चाई बेहद यथार्थवादी नजरिए से अभिव्यक्त हुई है.। जूठन (आत्मकथा)– ओम प्रकाश वाल्मीकि। दलित साहित्य में 'जूठन' ने अपना एक विशिष्ट स्थान बनाया है. इस पुस्तक ने दलित, गैर–दलित पाठकों, आलोचकों के बीच जो लोकप्रियता अर्जित की है, वह उल्लेखनीय है.। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी दलितों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए जो एक लंबा संघर्ष करना पड़ा, 'जूठन' इसे गंभीरता से उठाती है.। प्रस्तुति और भाषा के स्तर पर यह रचना पाठकों के अन्तर्मन को झकझोर देती है.। भारतीय जीवन में रची–बसी जाति व्यवस्था के सवाल को इस रचना में गहरे सरोकारों के साथ उठाया गया है।.दलितों की वेदना और उनका संघर्ष पाठक की संवेदना से जुड़कर मानवीय संवेदना को जगाने की कोशिश करते हैं., इसीलिए यह पुस्तक पाठकों के बीच इतनी लोकप्रिय हुई है। (11) मुर्दहिया (आत्मकथा) तुलसी राम। 'मुर्दहिया' पूर्वी उत्तर प्रदेश के ग्रामीण अंचल में शिक्षा के लिए जूझते एक दलित की मार्मिक अभिव्यक्ति है, .जहां सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक विसंगतियां कदम कदम पर दलित का रास्ता रोक कर खड़ी हो जाती है और उसके भीतर हीनताबोध पैदा करने के तमाम षड्यंत्र रचती है (12) . **पच्चीस चौका डेढ़ सौ (कहानी)** ओम प्रकाश वाल्मीकि की दलित कहानियों में सामाजिक परिवेशगत पीड़ाएं, शोषण के विविध आयाम खुल कर और तर्क संगत रूप से अभिव्यक्त हुए हैं. । 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' कहानी में इसी तरह के शोषण को जब पाठक पढ़ता है, तो वह समाज में व्याप्त शोषण की संस्कृति के प्रति गहरी निराशा से भर उठता है। .ग्रामीण जीवन में अशिक्षित दलित का जो शोषण होता रहा है, वह किसी भी देश और समाज के लिए गहरी शर्मिंदगी का सबब होना चाहिए । .ब्याज पर दिए जाने वाले हिसाब में किस तरह एक सम्पन्न व्यक्ति, एक गरीब दलित को ठगता है और एक झूठ को महिमा–मण्डित करता है, वह पाठक की संवेदना को झकझोर कर रख देता है।(13) अपना गाँव' मोहनदास नैमिशराय की एक महत्त्वपूर्ण कहानी है जो दलित मुक्ति–संघर्ष आंदोलन की आंतरिक वेदना से पाठकों को रूबरू कराती है.। दलित साहित्य की यह विशिष्ट कहानी है. दलितों में स्वाभिमान

और आत्मविश्वास जगाने की भाव भूमि तैयार करती है। चूल्हा मिट्टी का, मिट्टी तालाब की, तालाब ठाकुर का नियम सदैव दलित वर्ग को कष्ट पहुँचाया। (14)

वर्ष 1958 में महाराष्ट्र दलित साहित्य संघ ने प्रथम दलित साहित्य सम्मेलन किया था। इस सम्मेलन ने दलित साहित्य और दलित आंदोलन को जोड़ कर देखा और साहित्य सृजन की क्रांतिकारी भूमिका का रेखांकन किया। आंदोलनधर्मी साहित्य रचने के आह्वान के साथ सम्मेलन में कई प्रस्ताव पारित किए गए। प्रस्ताव संख्या पांच में कहा गया कि 'मराठी में दलितों द्वारा और गैर–दलितों द्वारा दलितों पर लिखे गए साहित्य को दलित साहित्य नाम से स्वतंत्र मान्यता दी जाए और इसके सांस्कृतिक महत्त्व को समझते हुए विश्वविद्यालयों और साहित्यिक संगठनों द्वारा इसे उचित स्थान दिया जाए।'..(15)

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दलित समुदाय के लोगों का दखल जैसे ही अकादमिक, सामाजिक व राजनीतिक जगहों पर हुआ है, वैसे ही दमन के सूक्ष्म और जटिल रूपों की भी पहचान तेजी से हुई। यहाँ तक कि दलित साहित्य ने अपने भीतर की कमियों और सीमाओं का रेखांकन भी शुरू किया। इसने एक तरफ जहाँ अपना भौगोलिक विस्तार कर अखिल भारतीय स्वरुप ग्रहण कर लिया है, वहीं इसमें विधिगत समृद्धि के साथ–साथ कलात्मक ऊँचाई भी आई है। विषयवस्तु के स्तर पर इसमें उल्लेखनीय परिवर्तन हुए है। लेखकों का अनुपात विविध सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाला हुआ है। दलित साहित्य लेखन में दलित महिलाओं की भागीदारी ने न केवल दलित साहित्य के स्वरूप को प्रभावित किया है बल्कि पूरे भारतीय साहित्य के स्वर को उसने एक नयी दिशा दी है। मेरा ख्याल है कि दलित साहित्य में पहली पीढ़ी के लेखक गैर अकादमिक संस्थानों से जुड़े हुए थे। लेकिन अब जो नया परिवर्तन हुआ है, उसमें अकादमिक जगत से जुड़े हुए दलित लेखकों का खासा हस्तक्षेप हुआ है। दलित साहित्य की विकास यात्रा को एक नयी ऊँचाई मिल रही है। दलित साहित्य लेखन में दलित महिलाओं की भागीदारी ने न केवल दलित साहित्य के स्वरूप को प्रभावित किया है बल्कि पूरे भारतीय साहित्य के स्वर को उसने एक नयी दिशा दी है व सामाजिक लोकतंत्र का एक मजबूत आधार खड़ा किया है।

संदर्भ :

1 चंचरीक के. एल – भारतीय दलित आंदोलन की रूपरेखा यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन नईदिल्ली पृ. 5
2 बाल्मिकी ओमप्रकाश – हिंदी दलित साहित्य की 10 श्रेष्ठ रचनाएँ, 16 सितम्बर 2013 पृ 11
3 सिंह सुखपाल – भारतीय षटदर्शन पृ 14
4 चंचरीक के. एल – ज्योतिबा फूले, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन नईदिल्ली पृ. 6

5 गौतम एस. एस. –भारतीय दलित आन्दोलन और सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन पृ.13
6 प्रभात रवीन्द्र –ताकि बचा रहे लोकतंत्र , हिन्द युब्म प्रकाशन जियासराय नईदिल्ली पृ.17
7 सिंह एन – दलित साहित्य के प्रतिमान , वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2012 पृ.32
8 वीर भारत तलवार – दलित साहित्य की अवधारणा ,चिंतन की परम्परा और दलित साहित्य पृ. 75
9 चंचरीक के. एल – भारत में दलित आंदोलन, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन नईदिल्ली पृ. 54
10 बाल्मिकी ओमप्रकाश – हिंदी दलित साहित्य की 10 श्रेष्ठ रचनाएँ, 16 सितम्बर 2013 पृ 15
11 बाल्मिकी ओमप्रकाश – हिंदी दलित साहित्य की 10 श्रेष्ठ रचनाएँ, 16 सितम्बर 2013 पृ 23
12 दलित समाज के प्रेरणास्रोत व्यक्ति (लेख)
13 कुमार अजय – दलित आन्दोलन अधीनस्थों के आंदोलन की समीक्षा (शोध आलेख)
14 नैमिशराय मोहनदास – भारतीय दलित आन्दोलन एक संक्षिप्त इतिहास 12
15 वीर भारत तलवार – दलित साहित्य की अवधारणा ,चिंतन की परम्परा और दलित साहित्य पृ. 76

***

बिहार में सुशासन का ढांचा और दलित-महादलित विमर्श

डॉ. आलोक वर्मा *

स्वाधीनता के बाद भारत ने एक उदार लोकतंत्र अपनाया, जिसका एक लिखित संविधान है और एक संसदीय प्रणाली में अनुसूचित जाति और दलित कहे जाने वाले ऐतिहासिक रूप से वंचित वर्ग को विशिष्ट व्यक्तिगत और सामूहिक अधिकार दिए गए हैं। जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में एक वृहत सामाजिक बदलाव के जरिये संपन्न समाज के लोकतांत्रिक रूपांतरण की प्रतिबद्धता भारतीय विकास नीति का अहम हिस्सा रहा है। हालांकि छह दशक से भी ज्यादा लंबी लोकतांत्रिक प्रक्रिया के बावजूद दलित अभी भी हाशिये पर है और वंचना के शिकार है, जिसके मूल में असमानता और सामाजिक भेदभाव है। जहां गरीबी देश में वंचित समाज के लिए बड़ी अयोग्यता साबित हुई है, वहीं जाति ने असमानता पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जाति व्यवस्था में हर जाति के लिए जन्म आधार पर तय किए गए सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक अधिकारों में बदलाव की सीमाओं ने भी कई किस्म की वंचनाओं को जन्म दिया है।[1] सामाजिक संबंधों से बहिष्कार दूसरे क्षेत्र जैसे शिक्षा, रोजगार और बाजार से वंचित होने से भी जुड़ा है और यह क्षमताओं से वंचित करना ही है। इससे अवसरों की सीमा बंध जाती है।

हालांकि स्वाधीनता के बाद वंचितों की स्थिति में काफी बदलाव आया है, बावजूद इसके उनके हाशिये पर रहने और बहिष्कार की स्थिति बनी हुई है, जो एक सशक्त लोकतंत्र के लिए बड़ी चुनौती है। ऐतिहासिक दौर से ही दलितों को शिक्षा प्रणाली, संपत्ति का स्वामित्व जैसे भूस्वामित्व से वंचित किया गया और उन्हें खास व्यावसायिक गतिविधियों की सीमाओं में बांधकर सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों से वंचित रखा गया।[2]

सामाजिक परिमंडल में भी दलितों को अभी भी बहिष्कार और वंचना झेलनी पड़ रही है। उनके निवास गांव से बाहर और शहरों में झुग्गियों में हुआ करते हैं, जहां सड़क, पेयजल, स्वच्छता और प्राथमिक स्वास्थ्य को

* एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान विभाग राजेन्द्र कॉलेज, जयप्रकाश विश्वविद्यालय छपरा

मूलभूत आवश्यकताओं से भी उन्हें वंचित रहना पड़ता है। शर्मनाक पहलू यह है कि सन् 1993 में मैला ढ़ोने की प्रथा को दंडनीय बना देने के बावजूद इनमें से अधिकांश अब भी इस काम को करने के लिए मजबूर हैं।[3]

जहां स्वाधीनता के बाद स्थिति में कुछ सुधार है, वहीं बिहार जो कुछ राज्यों में यह समस्या अब भी बनी हुई है। स्वातंन्र्योत्तर काल में स्थिति में बदलाव के कारक रहे हैं। भेदभाव के खिलाफ संरक्षण, पूंजीवादी विकास और प्रतिस्पर्धा राजनीति। संविधान में वर्णित भेदभाव के खिलाफ संरक्षण अनुसूचित जाति के लोगों को समाज और राजनीति में समावेशीकरण सुनिश्चित करता है, भागीदारी को बढ़ावा देता है और भेदभाव के खिलाफ सुरक्षा देता है लेकिन समाज की असमान आर्थिक संरचना, जो स्वतंत्रता के बाद प्राप्तियां के असंतुलित वितरण के रूप में सामने आई, उनमें विकास की एक पूंजीवादी प्रणाली बनी रही। जिसका अर्थ यह था कि एक खास वर्ग लाभान्वित होता रहा और बड़ी संख्या गरीब हाशिये पर बने रहे ओर अवसरों की उपलब्धता उनके लिए सीमित ही रही। एलिनॉर जेलियट[4] के अनुसार भेदभाव के खिलाफ संरक्षण के बिना खासकर स्वाधीनता के बाद के कुछ सालों तक अनुसूचित जाति के लोग व्यवस्था से बाहर ही बने रहे और वे सामाजिक भागीदारी हासिल नहीं कर पाए।

सन् 1990 के बाद भेदभाव के खिलाफ संरक्षण पर बहस–मुबाहिसों के तौर–तरीकों में बदलाव आया है। वैश्वीकरण के साथ–साथ एक छोटा, किन्तु प्रभावशाली, शिक्षित और मध्यवर्गीय दलित बौद्धिकों–कार्यकर्त्ताओं की पैठ राजनीति में बढ़ी है। उनका तर्क है कि आर्थिक उदारीकरण के दौर में राज्यों में नौकरियों के अवसर कम हुए हैं। इनमें से कुछ का तर्क है कि नौकरियों के अवसर देने वाले और तेजी से बढ़ते निजी क्षेत्र में आरक्षण की सीमा बढ़ाई जाए, जबकि कुछ का मत है कि आपूर्तिगत वैविध्य के अमरीकी मॉडल की तरह ठोस कदम उठाए जाए।[5]

एक ओर जहां दलितों की आर्थिक स्थिति में तेजी से सुधार हुआ है, वहीं समाज के अन्य वर्गों में असमानताएं अभी भी मौजूद है। प्रतिस्पर्धी राजनीति के साथ–साथ पूंजीवादी विकास ने जहां जाति प्रणाली को कमजोर किया है, वहीं इसने दलितों के बीच ही कई किस्म की असमानताएं को जन्म दिया है। दलितों का एक

वर्ग अभी भी जातिगत व्यवसाय जैसे कृषि के साथ बुनकरों की श्रेणी में है। पूंजीवादी प्रणाली ने उनके लिए अवसर खोले हैं, जिनकी दक्षता बाजार के अनुकूल है। शहरी इलाकों के दलित संगठित और असंगठित क्षेत्रों में दुकानों पर, छोटे उद्यमों में और कुछ निजी क्षेत्रों में अच्छी नौकरियों में लगे हैं लेकिन ऐसे लोगों की संख्या काफी कम है। संगठित क्षेत्र उद्यम के राष्ट्रीय आयोग की रिपोर्ट बताती है कि कि तरह भारतीय अर्थव्यवस्था में कमजोर वर्ग हाशिये पर है। ऐसे श्रमिक जिनके पास रोजगार नहीं हैं एवं सामाजिक सुरक्षा नहीं है उनकी संख्या कुल कार्यरत श्रमिकों का 92 फीसदी है और सामाजिक पहचान, गंवई निवास और शिक्षा के आधार पर उनसे भेदभाव अब भी मौजूद है। रिपोर्ट यह स्पष्ट करती है कि इन श्रमिकों में से अधिकांश अनुसूचित जाति–जनजाति से आते हैं।[6]

स्वतंत्रता के बाद यह सोचा गया था कि त्वरित आर्थिक विकास के साथ–साथ दलितों के साथ जातिगत आधारित अत्याचार खत्म हो जाएंगे जबकि 1970 के बाद दो स्थितियां सामने आई हैं। जाति आधारित अपराधों की संख्या में तेजी से इजाफा हुआ है और इनमें से कई अपराध अपेक्षाकृत विकसित राज्यों जैसे हरियाणा, पंजाब, महाराष्ट्र और तमिलनाडु में दर्ज किए गए है। दूसरा, रीति–रिवाजों के अत्याचारों की जगह जाति आधारित अत्याचार जैसे बलात्कार, दलितों को वोट देने से वंचित करना, उनके मकान जला देना, औरतों को बेआबरू कर गांवों में घुमाना आदि वारदातों में इजाफा हुआ है। आर्थिक स्थिति सुधरने के साथ ही साथ दलितों के खिलाफ अत्याचार भी बढ़े हैं, ईर्ष्या की भावना बढ़ी है, जिसका ज्वलंत उदाहरण खैरलांजी है। हरियाणा के जाति पंचायतों की सबसे ज्यादा शिकार दलित औरतें हुई है। सन् 2002 में यहां दलितों के साथ अत्याचार के 33507 मामले दर्ज किए गए। अनुसूचित जाति–जनजाति अत्याचार निरोधक अधिनियम 1989 से कोई मदद नहीं मिली है और संघर्ष बढ़ा रही है। अनुसूचित जाति–जनजाति राष्ट्रीय आयोग की रिपोर्ट 1990 के अनुसार सन् 1980 के बाद अत्याचारों के अधिकांश मामलों की जड़ में सामाजिक और सांस्कृतिक कारण होने के बजाय विशुद्ध रूप से राजनीतिक और आर्थिक कारण रहे हैं। अध्ययन

बताते हैं कि इसका अर्थ यह नहीं है कि छुआछूत पूरी तरह खत्म हो गई है।[7]

हालांकि राजनीतिक क्षेत्र में व्यापक बदलाव दर्ज किया गया है। भेदभाव के खिलाफ संरक्षण एक दीर्घावधि को लोकतंत्रीकरण और आर्थिक विकास प्रक्रिया है, जिसने शिक्षित, आत्मविश्वास से पूर्ण और राजनीतिक रूप से जागरूक मध्यवर्गीय दलितों की नयी पीढ़ी विकसित की है, जो बहिष्कार और आधिपत्य की स्थिति मानने को तैयार नहीं है। देश के अधिकांश हिस्सों में दलित शब्द पहचान के पर्याय के रूप में उपयोग किया जा रहा है। हालांकि इसने दलितों को एक समुदाय के रूप में स्थापित नहीं किया है और अभी भी इनके अंदर उपजाति की खाई चौड़ी दिखाई देती है और इनके विविध समूहों में हिंसा के भी उदाहरण सामने आते रहे हैं। बावजूद इसके इसका महत्व बढ़ा है, जिसने दलित पहचान, आत्मविश्वास के साथ–साथ ऊंची जातियों के अत्याचार और आधिपत्य के खिलाफ खड़ा होने का संबल भी दिया है।[8]

कहना न होगा कि बिहार में दलित वोट बैंक का लंबे समय तक इस्तेमाल हुआ। बाद के दौर में यह वोट बैंक समाजवादियों–कम्युनिस्टों से होता हुआ नए समाजवादी विचारों वाले दलों से जुड़ा। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले और उसके बाद के कई दशकों की राजनीति में बिहार में दलित कांग्रेस से जुड़े रहे। 1977 में कांग्रेस छोड़ने से पहले बाबू जगजीवन राम कांग्रेस में सबसे ऊँचे कद के दलित नेता थे। वे बिहार के ही थे। कांग्रेस में दलित नेताओं को उचित स्थान देने की कोशिश की गई। फिर भी, इस प्रक्रिया में उन्हें दूसरे दर्जे तक ही सीमित रखा गया। जगजीवन राम इसके अपवाद थे। बिहार की कांग्रेसी राजनीति में इसके दूसरे अपवाद भोला पासवान शास्त्री थे। 1967 के विधानसभा चुनावों में कांग्रेस को हार का सामना करना पड़ा। गैर–कांग्रेसी दल भी स्थायी सरकार देने में नाकाम रहे। ऐसे में, 1968 में कांग्रेस नेतृत्व ने ऊँची जाति के किसी नेता की जगह दलित नेता भोला पासवान शास्त्री का नाम आगे बढ़ाया। शास्त्री का नाम आगे बढ़ाने के पीछे कांग्रेस के रणनीतिकारों की सोच यह थी कि इससे दूसरे गैर–कांग्रेसी दलों का समर्थन आसानी से मिल जाएगा। ऐसा हुआ भी। लेकिन शास्त्री के मंत्रिमंडल में पचास फीसद से अधिक सदस्य ऊँची जातियों के थे। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि

शास्त्री एक मुखौटा थे, जिनका इस्तेमाल कांग्रेस के ऊँची जाति के नेताओं ने सत्ता पर कब्जा जमाने के लिए किया। समाजवादी दलों या जनता पार्टी में भी दलितों को महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं मिला। इनकी राजनीति में पिछड़ी जातियों, खासतौर पर ऊँची पिछड़ी जातियों का वर्चस्व था। 1979 में रामसुन्दर दास दूसरे ऐसे दलित नेता हुए, जिन्हें राज्य का मुख्यमंत्री बनने का सौभाग्य मिला। दास के मंत्रिमंडल में भी ऊँचे जातियों का प्रतिनिधित्व 50 फीसद था।[9] लेकिन दास के साथ भी यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य जुड़ा था कि जनता पार्टी के ऊँची जाति के नेताओं ने उनका इस्तेमाल पिछड़ावाद की राजनीति कर रहे कर्पूरी ठाकुर को पटखनी देने के लिए किया।

लालू प्रसाद के उदय के बाद पंद्रह सालों तक दलितों और पिछड़ों की एकता भी दिखी। नब्बे के दशक में लालू के उभार ने दलितों को भी अपनी ओर आकर्षित किया। लालू द्वारा सामंतवादी ऊँची जातियों की तीखी आलोचना, *पिछड़ावादी प्रतीकों की राजनीति* और ऊँची जातियों के बीच लालू की नापसंदगी ने दलितों में लालू को लोकप्रिय बना दिया। बिहार में दलितों के मजबूती से उभरते नेता रामविलास पासवान के साथ ने भी लालू की स्थिति को मजबूत किया। लेकिन 1998 में राष्ट्रीय जनता दल के निर्माण के बाद लालू और रामविलास पासवान के रास्ते अलग-अलग हो गए। पासवान को दलितों की मजबूत जाति दुसाध का उसी तरह समर्थन प्राप्त रहा है, जिस तरह लालू को यादवों का समर्थन प्राप्त रहा है।

विश्लेषण के इस मोड़ पर दो मुख्य सवाल हैं, पहला, 2015 के विधानसभा चुनावों तक बिहार की राजनीति में दलितों का वैसा उभार क्यों नहीं हुआ, जैसा कि उत्तर प्रदेश में हुआ? दूसरा, क्या रामविलास पासवान और जीतन राम मांझी की राजनीतिक दिशा उस ओर जाती है, जहाँ दलितों को सामाजिक न्याय मिल सके? अधिकांश विश्लेषक यह मानते हैं कि बिहार की राजनीति में उत्तर प्रदेश की भांति दलितों का उभार न होने का मुख्य कारण यह है कि यहाँ उत्तर प्रदेश की तुलना में दलितों की जनसंख्या कम है। साथ ही, दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि बिहार में बसपा की तरह किसी ऐसे दल का उभार नहीं हुआ, जो सभी दलितों को एक छतरी के नीचे लाकर एक राजनीतिक शक्ति में बदल दे।

पहले तर्क को बहुत दमदार नहीं माना जा सकता है। यह सच है कि उत्तर प्रदेश की तुलना में बिहार में दलितों की जनसंख्या कम है। लेकिन बिहार में यादवों की जनसंख्या दलितों की जनसंख्या से 2 फीसद कम है। यादव बिहार की राजनीति में अपना वर्चस्व कायम करने में सफल रहे हैं। लेकिन दलित सत्ता की राजनीति में बहुत आगे नहीं बढ़ पाए। नब्बे के दशक में वे सिर्फ पिछड़ी जातियों की सहयोगी की भूमिका में ही रहे।[10] वास्तव में, दूसरा तर्क अधिक दमदार है। बिहार में कोई एक ऐसी पार्टी उभरकर सामने नहीं आई, जिसे सभी दलित जातियाँ अपनी पार्टी मानें और उसका समर्थन करें।

सन् 2005 में सत्ता में आने के बाद नीतीश कुमार ने दलित से महादलित की नई सोशल इंजीनियरिंग शुरू की। दुसाध जाति को छोड़कर अन्य 22 जातियों को महादलित की सूची में डाल दिया। महादलित आयोग का गठन किया। महादलित परिवारों के लिए अलग से योजनाएं बननी शुरू हुई। स्वभाविक तौर पर इसने एक नया आर्कषण पैदा किया। 2010 के विधानसभा चुनाव में *महादलित राजनीति* का असर यह हुआ कि 39 सीटों पर राजग का कब्जा हो गया। सिर्फ एक सीट पर राजद काबिज हुआ। दलित–महादलित वोट बैंक की गतिशीलता ऐसी कि रामविलास पासवान की पार्टी का कोई प्रत्याशी नहीं जीती। हालांकि दिलचस्प यह भी है कि महादलित में शामिल नहीं किए जाने वाले दुसाध समुदाय से ही सबसे अधिक 13 सदस्य जदयू/भाजपा गठबंधन के टिकट पर विधानसभा में पहुंचने में सफल हो सके। दूसरी ओर सबसे अधिक पहली बार 9 मुसहर भूइयां–मांझी प्रतिनिधि बिहार विधान सभा में पहुंचने में सफल हो सके।[11]

बिहार में 2015 में 16वीं विधानसभा के गठन के लिए हुए चुनावों के पूर्व राजनीति प्रेक्षक मान रहे थे कि दलितों के अधिकांश वोट एनडीए को मिलेंगे क्योंकि इस गठबंधन में रामविलास पासवान और जीतन राम मांझी दोनों शामिल हैं। लेकिन चुनाव के बाद के परिणामों ने सारे विश्लेषकों को औंधेमुँह पटक दिया । जीतन राम मांझी की *हिन्दुस्तानी अवाम मोर्चा* एक सीट और रामविलास पासवान की लोक जनशक्ति पार्टी 2 सीटें प्राप्त कर सकी।

सामाजिक स्तर पर नीतीश–लालू ने पिछड़ा–अति पिछड़ा– दलित– अल्पसंख्यक जमातों का महागठबंधन

बनाकर चुनाव जीत गये। लेकिन सामाजिक न्याय की पुरोधा यह महागठबंधन सरकार जनसंख्या के अनुरूप दलितों को मंत्रिमंडल में यथोचित प्रतिनिधित्व प्रदान नहीं किया। दलित कोटे से मुनेश्वर चौधरी, शिवचन्द्र राम (राजद), सतोष कुमार निराला, महेश्वर हजारी (जदयू) तथा अशोक चौधरी (कांग्रेस) मंत्री बनाये गये। जबकि मंत्रिमंडल में 30 प्रतिशत यादव जाति से हैं।

बहरहाल लोजपा को दलितों की एक बड़ी जाति दुसाध का समर्थन प्राप्त है। इसके बावजूद लोजपा की राजनीति की दिशा दलित सशक्तीकरण की ओर जाती प्रतीत नहीं होती है। इसके कई कारण हैः पहला, पासवान की राजनीति सत्ता हासिल करने की रणनीति अधिक है। वे बुनियादी बदलाव लाने वाले किसी कार्यक्रम को प्रस्तावित नहीं करते। दूसरा, पासवान की राजनीति में सभी दलित जातियों के शामिल होने की संभावना कम ही है। सही मायने में उनकी राजनीति उनके कुनबे का विस्तार प्रतीत होती है।

बिहार में दलितों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति आजादी के बाद के दौर में बहुत ज्यादा नहीं बदली। इनके साथ सामाजिक छुआछूत का व्यवहार पहले से थोड़ा कम हुआ है, लेकिन यह भी व्यापक रूप से कायम है। बिहार की कुल आबादी में लगभग 16 प्रतिशत वाले दलित समुदाय में शिक्षा-दीक्षा की हालत अत्यन्त दयनीय है। इनकी साक्षरता दर 28 प्रतिशत है। महिलाओं की साक्षरता दर 15 प्रतिशत है।[12] दलितों में दुसाध और चमार जाति के एक हिस्से को छोड़ दें, तो तकरीबन पूरा दलित समुदाय अब भी गरीबी और साधनहीनता से जूझ रहा है।

उल्लेखनीय है कि बिहार में दलित-महादलित आबादी का 77 प्रतिशत हिस्सा खेत-मजदूर है। आजादी के 68 साल बाद भी बिहार में दलित भूमिहीन वे-घर-बार परिवारों की संख्या 42 लाख है। इनके पास बासगीत के पर्चे नहीं होते। खेतिहर-मजदूर के रूप में बेगारी और कम मजदूरी जैसी समस्याओं से जूझते हुए यह किसी तरह अपनी जिंदगी गुजारते हैं। बिहार में जो थोड़ा बहुत भूमि-सुधार लागू हुआ, उसका फायदा मुख्य रूप से ऊँची पिछड़ी जातियों को ही हुआ। दलितों तक उसका कोई फायदा नहीं पहुँचा। इस कारण, दलितों की आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय बनी रही। आर्थिक स्थिति खराब होने के

कारण इनके बच्चों को शिक्षा नहीं मिल पाती और ये राज्य द्वारा दी जाने वाली आरक्षण जैसी सुविधाओं का फायदा उठाने में नाकाम रहते हैं।[13]

हमें ध्यान रखना होगा कि बिहार के सामाजिक–राजनीतिक जीवन में दलितों की स्थिति को प्रभावित करने वाला सबसे बड़ा सवाल जमीन का है। अधिकांश दलित भूमिहीन हैं। ये खेतिहर–मजदूर के रूप में कम मजदूरी पर काम करने के लिए मजबूर है। *लोजपा* या *हिन्दुस्तानी अवाम मोर्चा* (यह बिहार में अभी छोटी शक्ति है) इस सवाल से कन्नी काट जाते हैं।

यह सही है कि बिहार में दलित नेताओं के बीच जागरूकता, लोक जनशक्ति पार्टी, हिन्दुस्तानी अवाम मोर्चा जैसे राजनीतिक दलों के गठन और प्रतिस्पर्धा राजनीति से दलितों का सशक्तीकरण हुआ है और वे राजनीति की मुख्यधारा में प्रवेश कर चुके हैं। राजनीतिक जागरूकता का एक नया दौर देखा जा रहा है और नीचे से ऊपर तक इसका संचार हुआ है। सन् 1990 के बाद के सभी चुनावों में दलितों के बीच वोट देने का प्रतिशत लगातार बढ़ता गया है।

सन् 2005 के विधानसभा चुनावों से लेकर वर्तमान तक बिहार के लोकतांत्रिक राजनीति में दलित/महादलित उभार सर्वथा नये चरित्र और विशिष्ट गुणों के साथ देखा गया। नयी शिक्षित पीढ़ी राष्ट्र निर्माण परियोजनाओं की समुचित समझ से लैस है, जो ऊंची जाति के कुलीनों द्वारा नियंत्रित किए जा रहें, उनके लिए उनके मतलब के लिए चल रहे लोकतंत्र से बिल्कुल अलहदा है। बहिष्कारों के अनुभवों और सरकार द्वारा दलितों के जान और माल की रक्षा में असमर्थता से उपजे भ्रम ने दलितों को आर्थिक विकास का फल चखने और छुआछूत की प्रथा से मुक्त होने का अवसर दिया है। हालांकि फिलहाल यह दलित उभार विकास के साथ वंचित करने, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक वंचना से उपजी प्रतिक्रिया के रूप में ही सामने है। इस उभार का एजेंडा व्यवस्था को तोड़ने का नहीं, बल्कि समाज के अंदर और राजनीति में दलितों के लिए सामाजिक न्याय हासिल करने पर आधारित है।

निष्कर्ष

छह दशक से भी ज्यादा लंबी लोकतांत्रिक प्रक्रिया के बावजूद बिहार में दलित/महादलित अभी भी हाशिये पर है और वंचना के शिकार हैं, जिसके मूल में असमानता

और सामाजिक भेदभाव है। जहां गरीबी देश में वंचित समाज के लिए बड़ी अयोग्यता साबित हुई है, वहीं जाति ने असमानता पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह घटनाक्रम सशक्त लोकतंत्र के लिए बड़ी चुनौती है। दरअसल दलितों के संदर्भ में *सशक्तीकरण* का सबसे प्राथमिक मतलब है– उत्पादन संबंधों में आमूलचूल बदलाव। संसदीय राजनीति में दलितों का उभार हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि एक ऐसा नेतृत्व उभरे जो कुनबापरस्ती, मौकापरस्ती और तात्कालिक मुद्दों में ही उलझे रहने की जगह दूरदृष्टि और उत्पादन संबंधों में बुनियादी बदलाव लाने के प्रति वैचारिक रूप से प्रतिबद्ध हो। लेकिन वास्तविकता तो यह है कि राजनीति में सक्रिय भागीदारी, समाज में इज्जत भरा स्थान और जिंदगी में समान रूप से आगे बढ़ने के अवसर के संदर्भ में महादलित सशक्तीकरण से बहुत दूर है।

सन्दर्भ :

1. एलिनॉर जेलियट, *फ्रॉम अनटचेवल टू दलित,* मनोहर, न्यू दिल्ली, 1998.
2. धीरूभाई सेठ, *सत्ता और समाज,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 179–183.
3. सुधा पाई, ''वंचित वर्ग का बहिष्कार और हाशिये की राजनीति'', *योजना,* नई दिल्ली, अगस्त 2013, पृ. 43–45.
4. धीरूभाई सेठ (2009), पूर्वोक्त, पृ. 180.
5. घनश्याम शाह, हर्ष मंदेर, सुखेदव थोर्राट, सतीश देशपांडे, अमीता विमष्कर, *अनचेविलिटी इन रूरल इंडिया,* सेज पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, 2006, पृ. 134.
6. उपरोक्त.
7. एस.के. जैन, *कास्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन बिहार,* कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1988, पृ.66.
8. हैरी डब्ल्यू ब्लेयर, ''राइजिंग कुलक्स एण्ड बैकवर्ड क्लासेज इन बिहार'', *इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* 12 जनवरी, 1980, पृ. 69.
9. मनीष कुमार झा एण्ड पुष्पेन्द्र, ''गवर्निंग कास्ट एण्ड मैनेजिंग कॉनफ्लिक्ट्स इन बिहार 1990–2011'' संकलित, रणवीर समदर (सं.) *गवर्नेंस ऑफ पीस : सोशल गवर्नेंस, सेक्युरिटी एण्ड द प्रावलेमिटिक ऑफ पीस,* एसगेट, 2015, पृ. 167–202.

10. अर्णव मुखर्जी एण्ड अंजन मुखर्जी, ''बिहार : व्हाट बेन्ट रॉंग ? एण्ड ब्हाट चेन्ज्ड ?'' *वर्किंग पेपर* नं. 2012/107, सितम्बर 2012.
11. संजय कुमार एण्ड राकेश रंजन, ''बिहार : डिवलापमेंट मैटर्स'', *इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* 2009, पृ. 141–144.
12. अन्ना जुहॉस, ''एनालिसिस ऑफ द लेजिसलेटिव एसेम्बली इलेक्शन्स इन बिहार 2015'', इंस्टिट्यूट फॉर फॉरेन अफेयर्स एण्ड ट्रेड, ई–2015/45, बुगपेस्ट, 2015.
13. अशोक पंकज, ''टुवाड्र्स चेजिंग इंस्टिट्यूशंस फॉर गवर्नेस एण्ड डेवलपमेंट ऑफ बिहार'' संकलित, सच्चिदानंद एण्ड वी.वी.मंडल (सं) *क्राइसिस ऑफ गवर्नेस : द केस ऑफ बिहार,* सिरियल्स पब्लिकेशंस, न्यू दिल्ली, 2009,0 पृ. 13–42.

***

''भारतीय गाँवों में राजनैतिक दलों का बढ़ता प्रभाव''

डॉ. श्यामदेव पासवान *

हमारा देश एक जनतंत्र देश है। इसमें जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि देश का शासन चलाते हैं। और जब देश की 70% जनसंख्या गाँव में रहती है तो यह कहा जा सकता है कि राजनैतिक शक्ति और सत्ता गाँव के हाथ में है। आज देश के हर एक वयस्क नागरिकों को जनता का प्रतिनिधि चुनने के लिए वोट देने का अधिकार है। शिक्षित ओर अशिक्षित स्त्री–पुरूष हर एक को यह अधिकार है कि धर्म, लिंग, निवास स्थान, सामाजिक–आर्थिक स्तर किसी भी आधार पर भारत के वयस्क नागरिकों के इस राजनैतिक अधिकार में कोई भेदभाव नहीं किया गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत की वर्तमान की राजनीति की रूपरेखा, प्रवृत्तियाँ आदि ग्रामीण राजनीति से निर्धारित होंगी। इसका एक विशेष कारण यह भी है कि हमारे देश में ग्रामीण अपने मतदान के राजनैतिक अधिकार का पूरा–पूरा उपयोग कर रहे हैं। पिछले चुनावों में यह देखा गया है कि गाँव में मतदान देने में स्त्रियों की संख्या काफी थी। अशिक्षितों ने भी मतदान में किसी तरह की ढिलाई नहीं दिखाई। बूढ़े और बीमार तक पीछे नहीं रहे। इससे स्पष्ट पता चलता है कि भारत के गाँव में राजनैतिक चेतना जाग रही है। इस राजनैतिक चेतना की प्रवृत्तियों पर ही देश की राजनीति का प्रतिमान निर्भर है।

ग्रामीण जीवन के राजनैतिक पहलू के अध्ययन का इसलिए भी महत्व है क्योंकि आज गाँव ही देश के शासन तंत्र की प्राथमिक इकाई है। इस प्रकार देश की राजनीति और शासनतंत्र का गाँव पर और गाँव की प्रवृत्तियों का देश की राजनीति पर प्रभाव पड़ते हैं।

हमारे देश में पंचायतों की स्थापना करके और इन्हें सामाजिक–अर्थिक क्षेत्र में व्यापक अधिकार देकर स्वतंत्र भारत में फिर से ग्रामीण जनतंत्रों की स्थापना की गई है। इससे जनता की समस्याओं का पता चलेगा और वे प्रत्यक्ष रूप से शासन में भाग ले सकेंगे। अंग्रेजों ने भारतीय ग्रामों में पंचायतों के योगदान की सराहना की थी किन्तु निकट भूतकाल में अनेक जाँच समितियों ने पंचायत राज के अनेक दोष की ओर ध्यान दिलाया है। अपने देश में राजनीतिकरण सबसे अधिक पंचायतों में देखा जा सकता है। वर्तमान पंचायतों में अधिकतर गतिविधियाँ गाँव की प्रगति को ध्यान में रखकर नहीं बल्कि पंचों के राजनैतिक हितों को ध्यान में रखकर की जाती हैं। राजनैतिक आधार पर ही पंचायतों के चुनाव लड़े जाते हैं, और राजनैतिक उद्देश्यों को सि़द्ध करने के लिए पंचायतों की गतिविधियाँ

* एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, जगजीवन कॉलेज, गया (बिहार)

चलायी जाती हैं। इस प्रकार हमारे गाँवों में पग–पग पर राजनीतिकरण देखा जा सकता है। यह राजनीतिकरण जातिवाद से और भी बढ़ गया है क्योंकि अधिकतर चुनाव जाति के नाम पर ही लड़े जाते हैं और जाति के सदस्यों से खुले आप जाति के नाम पर वोट माँगे जाते हैं, चुने जाने के बाद चुने हुए सदस्य अपनी–अपनी कुर्सियाँ बनाए रखने के लिए जातिवाद को प्रोत्साहित करते हैं और बनाए रखते हैं।

ग्रामीण जनसंख्या के विभिन्न वर्ग किन्हीं संगठनों द्वारा नहीं पहिचाने जा सकते लेकिन विभिन्न जातियाँ देखी जा सकती हैं। जातियों के आधार पर चुनाव लोकतांत्रिक चुनाव के समय स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं और चुनाव में मनोनीत भी किए जाने वाले उम्मीदवारों की जातियों से ही उनके जनाधार का आकलन राजनैतिक दल करके अपनी गोटियाँ बैठाते हैं।

पंचायती राज की व्यवस्था में स्थानीय जातियों का समूह सदा ही प्रासंगिक रहा है लेकिन संविधान में संशोधन के बाद नई व्यवस्था में जातियों को लोहे के सांचे में जड़ के कठोर अधार दे दिए गए हैं।

जहाँ तक अनुसूचित जाति, जनजाति के लिए विभिन्न पद आरक्षित किए गए हैं उससे यह स्पष्ट है कि पहले से जमी हुई सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था में कुछ परिवर्तन आया है। महिलाओं के आरक्षण का लाभ तो उसी प्रकार जातियों के आधार पर उन पुरूषों को चला जाता है जो स्वयं चुनाव नहीं लड़ते अपने रिश्तेदार महिलाओं को उम्मीदवार की तरह चुनाव में उतारते हैं।

हमारे यहाँ राजनैतिक शक्ति का मूल स्त्रोत गाँव है। इसलिए देश का हर एक राजनैतिक दल शक्ति के इन स्त्रोतों पर अधिकार करने की चेष्टा करता है। हमारे देश के मुख्य राजनैतिक दलों कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी, जनता दल, समाजवादी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी और समता पार्टी आदि ने अपना जाल गाँव में भी अच्छी तरह फैलाया है। गाँव में कांग्रेस का सबसे अधिक प्रभाव है गाँव का मतदाता कांग्रेस के चुनाव चिन्ह हाथ से बहुत ज्यादा परिचित है। ग्रामीण लोगों पर कांग्रेस की इस प्रभाव में महात्मा गाँधी और पंडित नेहरू के व्यक्तित्व का बड़ा योगदान रहा है। महात्मा गाँधी के रहन–सहन, तौर–तरीकों और विचारों से ग्रामीण जनता अत्यधिक प्रभावित हुई है क्योंकि ये सब ग्रामीण जीवन के अनुरूप थे। आज भी बहुत लोग कांग्रेस को महात्मा गाँधी की पार्टी या पंडित नेहरू के पार्टी के रूप में जानते हैं और इसी रूप में वोट भी देते हैं परन्तु गाँव में कांग्रेस के आलोचकों की भी कमी नहीं है। बहुत से लोग तो गाँव के हर एक अभाव को और दोष को कांग्रेस के सिर मढ़ते हैं कि कांग्रेसी राज्य से अंग्रेजी राज्य ही अच्छा था। देश के विभिन्न क्षेत्रों के गाँव में अन्य राजनैतिक दलों ने भी प्रचार किया है। उदाहरण के लिए केरल के गाँव में साम्यवादी विचारधारा मानने वाले ग्रामीण लोग काफी दिखाई पड़ते हैं। भारतीय जनता पार्टी को भारतवर्ष में हिन्दू आदर्शों के रूप में विकसित करना चाहती है। बहुजन

समाज पार्टी 'सर्वजन हिताय–सर्वजन सुखाय' का नारा लगाकर लोगों को आकर्षित करने की कोशिश करती है। यद्यपि गाँव के लोग पर्याप्त संख्या में शिक्षित नहीं हैं परन्तु पिछले चुनावों के फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्र में विभिन्न राजैनिक दलों के बारे में काफी ज्ञान देखा जा सकता है। विभिन्न दलों के अनुयायी अपने–अपने दलों के लक्ष्यों को लेकर आपस में गर्मागर्म बहस करते हैं। गाँव में राजनैतिक दलों के प्रभाव में स्थानीय नेताओं का बड़ा महत्व है जो राजनैतिक दल स्थानीय नेताओं का जितना सहयोग करते पाए जाते हैं उसका गाँव में उतना ही प्रभाव देखा जा सकता है। क्योंकि व्यक्तिवाद का विकास होने पर भी अधिकतर ग्रामीण लोग स्थानीय नेताओं की बात पर ही चलते हैं। क्योंकि बहुत सी बातों का उनको स्वयं नहीं पता होता है। गाँव के धनी या सम्मानित लोग जैसा कहते हैं बहुत से ग्रामीण लोग उनका ही अनुगमन करते हैं परन्तु बहुत कम गाँव में सभी नेता किसी न किसी एक राजनैतिक दल के अगुवाई है। अधिकतर गाँव में स्थानीय नेता विभिन्न दलों को सहयोग देते हैं। कोई कांग्रेस के पक्ष में जाकर प्रचार करता है तो कोई बी०जे०पी० का गठन करता है तो कोई बी०एस०पी० की बातें करता है और कोई सपा को अच्छा समझता है। स्थानीय नेताओं में इस प्रकार राजनैतिक मतभेद होने से गाँव में राजनैतिक लक्ष्यों को लेकर दंगे, खून–खराबे, चोरियाँ और डकैतियाँ तक होती हैं। अनेक वर्ष पूर्व दो समाजवादी कार्यकर्ताओं को अपने ही प्रदेश के एक गाँव के लोगों ने लाठियों से मार डाला और उनमें, से एक को जिन्दा हालत में ही दूसरे के साथ जला दिया गया। यह घटना इस बात को स्पष्ट करती है कि स्थानीय राजनीति से मिलकर राजनैतिक दलों का परस्पर विद्वेष गाँव में कितना भयंकर रूप धारण कर चुका है।

राजनीतिक दल जनता को राजनीतिक अन्तर्भागिता के लिए महत्वपूर्ण माध्यम प्रदान करते हैं तथा उनका राजनीतिकरण एवं राजनीतिक समाजीकरण करते हैं। राजनीतिक समाजीकरण द्वारा दल समाज के प्रचलित आदर्शों एवं मूल्यों को सुदृढ़ करते हुए राजनीतिक संस्कृतिक को स्थायित्व प्रदान करते हैं। या नवीन अभिवृत्तियों एवं मुल्यों द्वारा राजनीतिक संस्कृति को परिवर्तित करने का कार्य करते हैं। राजनीतिक दल निष्क्रिय एवं राजनीति के प्रति उदासीन लोगों को सक्रिय बनाने तथा विभिन्न नीतियों के प्रति उनमें सजगता उत्पन्न करके उनका राजनीतिकरण करते हैं। जनसभाओं एवं संचार माध्यमों द्वारा राजनीतिक दल यह कार्य करता है। दल चुनाव के समय जनता में राजनीतिक सजगता लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

राजनीतिक दल समाज में विभिन्न मूल्यों एवं लक्ष्यों का निर्धारण करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। समाज के मूल्य एवं लक्ष्य दलील विचारधारा द्वारा प्रभावित होते हैं। प्रजातंत्रीय व्यवस्था में प्रत्येक दल अपने उद्देश्यों की घोषणा अपने–अपने चुनाव घोषणा–पत्रों में करते हैं तथा इन्हीं

के आधार पर लोग किसी दल को अपना समर्थन प्रदान करते हैं तथा चुनाव के समय मत देते हैं। चुनाव में विजयी दल सरकार बनाने के पश्चात इन्हीं लक्ष्यों को कार्यान्वित करने का प्रयत्न करता है। राजनैतिक दल जनता व शासन के मध्य कड़ी प्रदान करते हैं। ये बहुहित समूह का निर्माण करते हैं। राजनीतिक स्थिरता प्रदान करते हैं। राजनीतिक भर्ती करते हैं और जनमत का निर्माण करते हैं तथा सरकार तथा वैकल्पिक सरकार का निर्माण और शासन संचालन करते हैं।

राजनीतिक दलों के निर्माण के मनोवैज्ञानिक आधार भी होते हैं अर्थात् मानव स्वभाव में निहित प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। मतैक्य एवं संगठन मानव स्वभाव में दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। मानव स्वभाव एवं मूल्यों वाले व्यक्ति संगठित होकर राजनीतिक दल का निर्माण करते हैं फिर उन मूल्यों को बनाए रखने का प्रयास करते हैं।

व्यक्तिगत हितों के आधार पर भी राजनीतिक दलों का निर्माण होता है। हाब्स के अनुसार मानव समाज जन्म से ही स्वार्थी होते हैं तथा जब कभी उनके स्व को चोट पहुँचती है अथवा अस्तित्व को खतरा उत्पन्न होता है वे मिलकर समूहों का निर्माण कर लेते हैं। भारत में अनेक राजनीतिक दलों का निर्माण केवल किसी एक या कुछ व्यक्तियों के व्यक्तिगत हितों की पूर्ति तथा सौदेबाजी करने के लिए हुआ है। राजनीतिक दलों के निर्माण में जन्मस्थान अथवा प्रादेशिकता भी एक प्रमुख आधार है। डी०एम०के०, अकाली दल, तेलंगाना प्रजा समिति आदि राजनीतिक दल आर्थिक आधार पर भी संगठित होते हैं।

राजनीतिक दलों के निर्माणकारी तत्वों में एक झंडे के नीचे संगठित होना, विचार सिद्धान्तों में साम्य, राजनीतिक या सांविधानिक साधनों के प्रयोग में विश्वास, शासन प्रभुत्व की इच्छा आदि है। ग्रामीण राजनीति गतिशील है–ग्रामीण जीवन के राजनैतिक पहलू के उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि देश को स्वतंत्रता मिलने के पश्चात से उसमें बराबर उथल–पुथल और परिवर्तन हो रहा है। भारतीय जनतंत्र का भविष्य गाँवों पर आधारित है इसलिए ग्रामीण जीवन में राजनैतिक पहलू के विकास का बड़ा महत्व है। इसमें सभी राजनैतिक दलों को परस्पर सहयोग से काम लेना चाहिए क्योंकि उसके लक्ष्य भिन्न होते हुए भी गाँव में स्वस्थ राजनैतिक चेतना के विकास से सभी का विकास होता है। इससे विशेष तौर पर राष्ट्रीय एकता बढ़ाने पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

यद्यपि स्वतंत्रता के पश्चात् अनुसूचित जातियों की राजनीतिक निर्योग्यताएँ समाप्त हो गईं तथा उन्हें अन्य नागरिकों की तरह समान अधिकार ही प्राप्त नहीं है अपितु राज्य विधान सभाओं एवं लोक सभा में आरक्षण सुविधाएँ भी प्रदान की गई हैं फिर भी इन्हें चुनने में डाँटने–डपटने (Intimidation) तथा दबाव (Corcion) के अनेक मामले सामने आते रहते हैं। हरियाणा, बिहार, उ०प्र० पंजाब में अनेक ऐसी शिकायतें मिली हैं। बिहार

में मतदान केन्द्रों के पास खुली उग्रता के मामले भी हुए हैं।

यद्यपि प्रजातंत्रीकरण तथा राजनीतिकरण के परिणामस्वरूप अनुसूचित जातियों में नई चेतना के कारण अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आई है तथा पंचायतों से लेकर लोकसभा तथा सुरक्षित स्थान व नौकरी की सुविधाओं एवं सुरक्षित स्थानों के कारण इनमें आत्मविश्वास में वृद्धि हुई है। तथापि ऐसा देखा गया है कि अनुसूचित जातियों के सभी व्यक्ति विशेष रूप से ग्रामीण अशिक्षित व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति सचेत नहीं हैं इनमें भी एक संभ्रान्त वर्ग का उदय हो गया है तथा सभी सुविधाएँ इसी वर्ग को मिल रही हैं सामान्य लोगों को नहीं इसका एक प्रमुख कारण अशिक्ष तथा अज्ञानता भी है।

राजनीतिकरण के कारण अनुसूचित जातियों अपने स्तर को उठाने के लिए संगठित हो गई हैं तथा सत्ता संरचना को प्रमाणित करने अथवा इस पर प्रभुत्व जमाने के लिए अन्य निम्न जातियों से गठबन्धन करने लगी हैं। बल्कि निम्न जातियों से ही नहीं अपितु उच्च जातियों से भी गठबन्धन करने लगी हैं। बल्कि निम्न जातियों से ही नहीं अपितु उच्च जातियों से भी गठबन्धन करने लगी। अभी विगत 2009 के लोकसभा चुनाव में हमारे अम्बेडकर नगर क्षेत्र में दलित–ब्राह्मण गठजोड़ देखा गया है। इसके परिणामस्वरूप अनुसूचित जातियाँ निश्चित रूप से राजनीति के प्रति अधिक जागरुक हैं तथा इसमें अधिक भाग लेती हैं और उन्हीं दलों या व्यक्तियों का समर्थन करती हैं जो उनके अधिकारों की रक्षा कर सकते हैं तथा उनके बीच उठते–बैठते और खाते–पीते हैं। राजनीतिकरण के कारण कुछ जातियों में अपने निम्न स्तर से बड़ी असंतुष्टि सी होने लगी है तथा बहुत से लोगों ने बौद्ध, ईसाई, धर्म को भी ग्रहण कर लिया है। कुछ जातियों ने संस्कृतिकरण से अपना स्तर ऊँचा करने का प्रयास किया है। सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार ने इन जातियों के लिए संगठित होकर शक्ति प्राप्त करने के द्वारा खोल दिए है।

आइसक के अनुसार–अनुसूचित जातियों में शिक्षा व व्यवसायिक गतिशीलता, आरक्षण की नीति इत्यादि से काफी परिवर्तन हुए हैं तथा इनसे उनकी सामाजिक–आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति पहले से कहीं अच्छी हुई है। श्रीवास्तव मन्जू के 1986 के अध्ययन के अनुसार–वर्तमान काल में उत्तर प्रदेश में पिछड़े वर्गों की राजनीति वस्तुतः अहीर, कुर्मी एवं लोधी हिन्दू जातियाँ एवं मुसलमानों में मोनिन अंसारी की राजनीति बन गई है। अन्य पिछड़ी हुई जातियों संख्या की दृष्टि से कम से कम अलग बँटी हुई है। वे सामाजिक, आर्थिक शैक्षणिक दृष्टि से अत्यन्त हीन तथा राजनैतिक प्रभाव की दृष्टि से शून्य स्तर पर है वे न केवल सामाजिक आर्थिक, शैक्षणिक एवं राजनैतिक प्रभाव की दृष्टि से ब्राह्मण, राजपूत एवं वैश्य वर्ण की जातियों से निम्न है बल्कि पिछड़े वर्गों की अहीर, कुर्मी, लोधी तथा कुछ अन्य जातियों से भी पिछड़ी हुई है। फलस्वरूप अन्य पिछड़े वर्गों में शामिल जातियाँ

एकजुट होकर कार्य करने की अपेक्षा एक दूसरे का ही विरोध करती हैं जिसका लाभ अग्रणी जातियों को मिलता है। इसी का परिणाम है कि ग्राम प्रधान स्तर पर बहुसंख्यक होते हुए भी अन्य पिछड़े वर्गों के ग्राम प्रधान, ब्लाक और जिला स्तर पर अपनी संख्या के अनुपात में अपना प्रतिनिधित्व नहीं पा सके।

भारत जब स्वतंत्र हुआ उस समय उत्तर भारत के राज्यों में कांग्रेस दल का नेतृत्व उच्च जातियों का प्रतिनिधित्व बहुत ही कम था। ऐसा होना स्वाभावित भी था क्योंकि जेसा हम लिख चुके हैं आधुनिक शिक्षा का लाभ प्रारम्भ में उच्च जातियों ने ही उठाया था और ये ही लोग स्वतंत्रता आन्दोलन में अग्रणी रहे।

पिछले वर्ग के उम्मीदवार भी केवल पिछड़े वर्ग के समर्थन से जीतने की आशा नहीं कर सकते हैं क्योंकि उत्तर प्रदेश में शायद ही कोई ऐसा निर्वाचन क्षेत्र है जहाँ केवल पिछड़े वर्गों का बहुमत है। द्वितीय यह कि अधिकतर निर्वाचन में पिछड़े वर्गों के वोट बँट जाते हैं। दलगत निष्ठा के कारण और इस कारण भी कि पिछड़े वर्ग के कई उम्मीदवार खड़े हो जाते हैं। ऊँची जाति के लोग स्वयं पैसा देकर डमी उम्मीदवार के रूप में पिछड़े वर्गों के ही उम्मीदवारों को खड़ा कर देते हैं जो पिछड़े वर्ग के मतों को बाँट लेते हैं। इसलिए केवल पिछड़े वर्ग के नाम पर कोई भी उम्मीदवार जीतने की आशा नहीं कर सकता है।

दलगत राजनीति से भी अधिक गाँव में स्थानीय राजनीति देखी जा सकती है। यह स्थानीय राजनीति दो रूपों में दिखाई पड़ती है। एक ओर तो गाँव के विभिन्न नेता गाँव में शक्ति प्राप्त करने के लिए संघर्ष करते हैं और दूसरी ओर गाँव में जाति बिरादरी की विभिन्न गोष्ठियों में भी राजनीति गर्म दिखाई पड़ती है। गाँव के नेता लोग ग्राम पंचायत, ग्राम सभा ओर पंचायती अदालत में शक्ति प्राप्त करने के लिए ग्रामीण राजनीति में हर तरह के उपाय आजमाते हैं। कुछ लोग बिना सूद के रूपया उधार देते तो कुछ लोग डरा–धमका कर लोगों को मजबूर करते हैं। कुछ लोग धर्म का झण्डा उठाये रहते हैं तो कुछ लोग गाँव में सार्वजनिक हित में काम करके लोगों का सम्मान प्राप्त करते हैं। इन स्थानीय नेताओं में खूब दलबन्दी चलती है। दलबन्दी के अधार पर साँठ–गाँठ करने में जाति का कोई भी विशेष ध्यान नहीं रखा जाता है। जहाँ वर्ग के आधार पर दलबन्दी होती है वहाँ जमींदार एक हो जाते हैं चाहे उनमें कोई ब्राह्मण हो और कोई जाट। इसी प्रकार कहीं दोस्ती के अधार पर दलबन्दी हो सकती है तो कहीं समान राजनैतिक विचारों के आधार पर दलबन्दी दिखाई पड़ती है। इस दलबन्दी में जाति का महत्व भी कम नहीं है। हमारे देश में गाँव में जातीय संगठनों को छिन्न–भिन्न होने के बाद अब जातीय नेता चुनावों में अपने जाति भाइयों का मत पाने में सफल होते हैं। देश के पिछले तीन चुनावों में यह देखा जा चुका है कि जाति के आधार पर वोट खुले आम माँगे जाते हैं और मिलते

भी हैं।

इस प्रकार राजनैतिक लक्ष्यों के कारण बिखरते हुए जातीय संगठन फिर से दृढ़ हो जाते हैं। गाँव में हर जाति का अलग–अलग संगठन होता है। जातीय संगठनों में शक्ति प्राप्त करने के लिए भी विभिन्न व्यक्तियों में संघर्ष दिखाई पड़ता है। इस प्रकार पण्डितों, जाटों, नाइयों, चमारों आदि सभी जातियों के अलग–अलग पर्याप्त आन्तरिक राजनीति दिखाई पड़ती है। जातीय संगठनों में नेतृत्व ओर ग्रामीण संगठनों में नेतृत्व के लक्ष्य को लेकर गाँव की स्थानीय राजनीति काफी जटिल हो जाती है। अक्सर विभिन्न दलों के प्रत्यक्ष संघर्ष की नौबत आ जाती हे जिससे रक्तपात भी हो जाता है। इस स्थानीय राजनीति में भूमी से सम्बन्ध का बड़ा महत्व है। सामान्य रूप से किसान के साथ ओर जमींदार, जमींदार के साथ होते हैं। धनिक धनी का और गरीब– गरीब का साथ देता है। परन्तु फिर भी धनिक लोग गरीबों में फूट डालकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। गाँव में कोई अत्याचार होता है तो उसकी शिकायत के रूप मे सरकारी अधिकारियों के पास उसकी अर्जी ले जायी जाती है। प्रदर्शन किए जाते हैं और जुलूस निकाले जाते हैं परन्तु यदि आग भड़क उठती है तो लाठियाँ और बन्दूकें भी चलती हैं और संघर्ष होता है। दक्षिण में तेलंगाना में किसानों ने सशस्त्र संघर्ष किया और सरकार के विरूद्ध गुरिल्ला युद्ध छेड़ दिया। कांगेस व अन्य दलों के नेतृत्व मे समय–समय पर होने वाले असहयोग और सत्याग्रह और अनशन आदि करने वाले लोग देखे जा सकते हैं। सरकारी कर का विरोध करने के लिए कर न देने के आन्दोलन चलाए जाते हैं। कभी–कभी अत्याचार के बढ़ जाने पर गाँव के किसान विद्रोह कर बैठते हैं। उदाहरण के लिए देश में अंग्रेजी जमाने में कई जगह ऋणग्रस्त लोगों ने साहूकारों के विरूद्ध विद्रोह किया और अनसे कानूनी कागजात छीनकर सार्वजनिक रूप से जलाये। राजनैतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के इन सब उपायों के अलावा गाँव के सभी लोग मतदान के संसदीय उपाय से परिचित हैं। लोग यह जानते हैं कि हर पाँच वर्ष बाद देश में नया चुनाव होता है जिसमें वे अपनी इच्छा के अनुसार नये नेताओं को चुन सकते हैं। इस बात कातिक नेता भी समझते हैं और इसलिए गाँव का चुना जाने वाला हर एक व्यक्ति अपने निर्वाचन क्षेत्र में बराबर कुछ न कुछ सुधार करने की चेष्टा करता है। जिससे कि ग्रामीण लोगों पर उसका प्रभाव बना रहे। स्वतंत्रता के बाद से हमारे देश में ग्रामीण समाज में राजनैतिक प्रवृत्तियों में बराबर परिवर्तन देखा जा सकता है। यद्यपि कुछ लोग अब भी अंग्रजी राज्य की याद करते हैं और कुछ लोग जमींदारी व्यवस्था की ।

संदर्भ :

1. राजेन्द्र कुमार शर्मा : ग्रामीण समाजशास्त्र एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स ।

2. डॉ० धर्मवीर महाजन : भारतीय समाज : मुद्दे एवं समस्याएँ, डॉ० कमलेश महाजन, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली ।
3. एम० एन० श्रीनिवास : आधुनिक भारत में जातिवाद तथा अन्य निबंध, पब्लिशर्स, मध्य प्रदेश, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल ।
4. श्रीवास्तव मंजु : भारत में पिछड़े वर्गों की राजनीति, बी०एच०यू० राजनीतिशास्त्र विभाग ।
5. डॉ० वीरकेश्वर प्रसाद सिंह : भारतीय शासन एवं राजनीति – भारतीय राजनीति के आधार और निर्णायक तत्व, संस्करण 2008, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली ।

***

'' एकांकी परिवार में वृद्धजनों की समस्याएँ ''
(एक वैज्ञानिक अध्ययन)

अर्चना सरस्वती *

सामान्य रूप से केवल दो पीढ़ियों तक सीमित परिवार को 'केन्द्रीय परिवार' कहा जाता है। केन्द्रीय परिवार में साधारण स्थिति में एक दम्पत्ति तथा उनके अविवाहित बच्चे मिलकर रहा करते हैं। इस विशेषता के कारण कहा जा सकता है कि केन्द्रीय परिवार का आकार छोटा होता है, सदस्यों की संख्या कम होती है। परन्तु सदस्यों की संख्या कम होना केन्द्रीय परिवार की शत प्रतिशत निश्चित विशेषता नहीं है। इस विषय में अपवाद की सम्भावना की जा सकती है। ऐसा सम्भव है कि किसी दम्पत्ति के बच्चों की संख्या किसी अन्य संयुक्त परिवार के सदस्यों की संख्या से अधिक हो। इस स्थिति में परिवार के प्रकार का निर्धारण सम्मिलित पीढ़ियों की संख्या द्वारा किया जाता है। एकांकी परिवार में केवल दो पीढ़ियों की संख्या द्वारा किया जाता है। एकांकी परिवार में केवल दो पीढ़ियों के सदस्य अर्थात् माता–पिता और उनके अविवाहित बच्चे ही सम्मिलित रहा करते हैं। इससे भिन्न संयुक्त परिवार में तीन या तीन से अधिक पीढ़ियों के सदस्य अर्थात् दादा–दादी, चाचा–ताऊ तथा बच्चे सम्मिलित रहते हैं।

एकांकी परिवार या केन्द्रीय परिवार का अर्थ स्पष्ट करने के लिये सर्वश्री आगबर्न तथा निमकॉफ ने इस समिति मे सम्मिलित सदस्यों की संख्या एवं उनकी अनिवार्यता का उल्लेख इन शब्दों में किया है, ''परिवार न्यूनाधिक अंशों में एक स्थिर समिति है, जो पति–पत्नी तथा उनके बच्चों अथवा बिना बच्चों तथा पति व पत्नी में से कोई एक और उनके बच्चों से मिलकर बनता है। प्रस्तुत कथन द्वारा केन्द्रीय परिवार का अर्थ एवं आकार स्पष्ट हो जाता है। केवल विवाहित पति–पत्नी द्वारा संगठित संस्था को केन्द्रीय परिवार कहा जा सकता है। यदि उनके बच्चे हों तो भी जब तक बच्चे अविवाहित हैं तब तक उनके परिवार को केन्द्रीय परिवार ही कहा जायेगा। इसके अतिरिक्त माता पिता में से किसी एक की मृत्यु हो जाय अथवा विवाह–विच्छेद द्वारा पति–पत्नी में से कोई एक अलग हो जाये उस स्थिति में भी माता या पिता में से किसी एक के साथ बच्चों के संयुक्त जीवन को भी ''एकांकी परिवार'' की संज्ञा दी जा सकती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि माता–पिता और उनके अविवाहित बच्चों तक ही केन्द्रीय परिवार सीमित रहता है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि अपने बच्चे न होने की स्थिति में गोद लिये गये बच्चों को भी एकांकी परिवार का सदस्य माना जा सकता है।

---

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, गृह विज्ञान विभाग, महिला महाविद्यालय, दाउदनगर, औरंगाबाद (बिहार)

वृद्धों की समस्याएँ समाज एवं सामाजिक परिस्थितियों की उपज है। इसके लिए सामाजिक संरचना, संस्कृति एवं मूल्य व्यवस्था आदि जिम्मेदार है। इसके निम्नलिखित मूल कारण है :–

(1) **अन्तर– पीढ़ी संघर्ष–** एक–एक पीढ़ी दबाव, विरोध एवं धमकी आदि के द्वारा दूसरी पीढ़ी संघर्ष के नाम से जाना जाता है। पुरानी पीढ़ी परम्परागत नियमों से चिपके होते हैं, वे किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहते हैं। जबकि युवा पीढ़ी नये मूल्यों को प्रतिस्थापित करना चाहती है। इनमें परम्परागत तरीकों के प्रति उदासीनता एवं विरोध का भाव रहता है। यही मूल कारण है जिससे वृद्धजनों की समस्याओं के प्रति युवाओं का ध्यान नहीं होता।

(2) **दोषपूर्ण समाजीकरण** – वर्तमान समाजीकरण का ढँग सेवा भाव, संयुक्ता की भावना, त्याग एवं परोपकार आदि से भिन्न है। आज का समाजीकरण एवं शिक्षा का आधार अधिक से अधिक धन उपार्जन एवं भौतिकता से सम्बन्धित है। आज के आदर्श में वृद्धजनों की देखभाल एवं सेवा–भाव का स्थान नहीं के बराबर है। इसके न होने पर भी व्यक्ति के मान–सममानप पर फर्क नहीं पड़ता है। यही कारण है कि वर्तमान समाज में वृद्धजनों की समस्याएँ बढ़ती जा रही है।

(3) **व्यक्तिवादिता** – आज व्यक्ति सिर्फ अपने, अपने बीबी एवं अपने बच्चों के बारे में सोचता है। बुजुर्गों के बारे में सोचने एवं करने की बात नहीं आती। व्यक्तिवादिता समाज पर हावी हो गयी हे। ऐसी परिस्थिति में बूढ़े–बुजर्ग अलग–अलग होते जा रहे हैं। एक माँ–बाप कई सन्तानों को पाल–पोश कर एवं पढ़ा–लिखाकर जीवन के रंगमंच पर जीने लायक बना डालते हैं। फिर कई संतानें मिलकर एक बूढ़े माँ–बाप को पाल नहीं पाते। इसका खास कारण व्यक्तिवादिता ही है।

(4) **संयुक्ता की धारणा में कमी**– भारतीय संयुक्त परिवार का आधार संयुक्ता रहा है जहाँ विभिन्न पीढ़ियों के सदस्यों का एक साथ रहना, साथ–साथ खाना, सम्पत्ति का एक जगह होना, संस्कारों एवं सेवा–भाव में संयुक्त रूप से भाग लेना रहा है। आज व्यक्ति की व्यक्तिवादिता संयुक्तता पर हावी हो गयी है। संयुक्त परिवार से अलग होकर घर बसाना बूरा नहीं माना गया। अब तो इसे अच्छा माना जाने लगा। ऐसी परिस्थिति में वृद्धजनों की समस्याओं का बढ़ना स्वाभाविक हो गया। जब बूढ़े माता–पिता के आधार अर्थात् संतान ही छोड़ चले, तो समस्याओं का बढ़ना लाजिमी है।

(5) **भौतिकवादी संस्कृति** – संस्कृति के दो अंग हैं– अभौतिक एवं भौतिक संस्कृति। अभौतिक संस्कृति में धर्म, नैतिकता एवं शिष्टाचार आदि का महत्व होता है। भौतिक कसंस्कृति में अधिक से अधिक भौतिकता–सुखवादी एवं भोगवादी तत्वों का महत्व होता है। वर्तमान भारतीय समाज भौतिकतावादी की ओर उन्मुख है। फलस्वरूप वृद्धजनों

की देख–रेख, सेवा एवं उनके प्रति लगाव में ह्रास हुआ है, जिसके कारण वृद्धजनों की समस्याएँ बढ़ती जा रही है।

(6) **आधुनिक प्रक्रियाएँ** – औद्योगीकरण, नगरीकरण, आधुनिकीकरण एवं पश्चिमीकरण आदि परिवर्तन की आधुनिक प्रक्रियाएँ हैं। निःसन्देह इन प्रक्रियाओं के प्रभाव में भारत विकसित राष्ट्र के रूप में उभर रहा है लेकिन साथ ही साथ इसके प्रभाव में त्याग, सहानुभूति, स्नेह, लगाव एवं सेवा–भाव में ह्रास होता जा रहा है। जबतक इन गुणों का महत्व समझा गया, बुजुर्गों की समस्याएँ ही नहीं थी। इन गुणों में जैसे ह्रास होता गया, वैसे–वैसे वृद्धों की समस्याएँ बढ़ती गई।

(7) **नैतिक मूल्यों का ह्रास** – नैतिक मूल्य व्यक्ति के अन्तःकरण को सही और गलत का ज्ञान कराता है। नैतिक मूल्यों के ह्रास की स्थिति में सही और गलत का बोध समापत हो जाता है। वर्तमान भारत में नैतिकता से जुड़े विश्वासों एवं कर्तव्यों एवं व्यवहारों में आमतौर पर कमी देखी जाती है। यही कारण है कि माता–पिता या अन्य वृद्धों के प्रति लगाव एवं कर्तव्य के पालन में कमी पाई जाती है। फलस्वरूप वृद्धों की समस्याएँ बढ़ रही है।

(8) **अन्य कारण** – वृद्धों की समस्याओं के उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त अन्य कई कारण हैं, जिनमें परिवार की संरचना में परिवर्तन, धर्म में ह्रास, प्राथमिक सम्बन्धों में ह्रास एवं सामाजितक गतिशीलता आदि। संयुक्त परिवार के स्थान पर एकांकी परिवार की स्थापना के कारण ऐसे परिवारों में वृद्धों का स्थान गौण होता जा रहा हे। भारतीय जीवन दर्शन में कर्म ही धर्म है। आज इस दर्शन का लोप होता जा रहा है। फलस्वरूप वृद्धों के प्रति कर्तव्य न होने से उनकी समस्याएँ बढ़ी है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि वृद्धों की समस्याएँ अनेक कारणों का परिणाम है। मानव सुखवादी, भोगवादी एवं व्यक्तिवादी हो गया है कि वह सही एवं गलत, नैतिक एवं अनैतिक, शिक्षा एवं अशिष्ट का ख्याल किये बिना जी रहा है। फलस्वरूप अपने ही परिवार के उन बूढ़ों के प्रति भी लापरवाह है, जिन्होंने उन्हें पाल–पोषकर जीवन के रंगमंच पर लाया है।

वृद्धों के लिए सरकारी नीति एवं कार्यक्रम

भारत में वृद्धों की समस्याओं के प्रति सरकार का ध्यान आकृष्ट हुआ और उनके लिए अनेक कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं :–

(1) भारत में सामाजिक नयास मंत्रालय के द्वारा 1992 में बुजुर्गों के हित में एक व्यापक कार्यक्रम तैयार किया गया। इसके अन्तर्गत वृद्धों को सहायता करने वाले ऐच्छिक संगठनों को वित्तीय सहायता का प्रावधान रखा गया।

(2) भारत में 1998–99 में बुजुर्गों का समन्वित कार्यक्रम नामक कार्यक्रम चलाया गया। इसके तहत ऐच्छिक संगठनों द्वारा चलाये गये कार्यक्रम का 90 प्रतिशत खर्च सरकार वहन करती है।

(3) यदि नेहरू युवा केन्द्र या महाविद्यालय के राष्ट्रीय सेवा योजना के माध्यम से वृद्धों की समस्याओं के समाधान में प्रयास किये जाते हैं, तो इन संस्थाओं का इस संदर्भ में सारा खर्च सरकार वहन करती है।

(4) सामाजिक न्याय मंत्रालय के द्वारा भी वृद्धों की समस्याओं की ओर समाज में जागरूकता लाने का कार्यक्रम चलाया जाता है। इस समय भारत में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 736 वृद्धावस्था गृह, वृद्धगन देख–रेख केन्द्र तथा सचल अस्पताल स्थापित है।

(5) भारत में वृद्धों की समस्याओं के समाधान के सन्दर्भ में वृद्धावस्था गृह की स्थापना की गई है। यह एक ऐसा गृह है जिसमें 60 वर्ष से अधिक आयु के निर्धन एवं निराश्रित वृद्धों को रखा जाता है। यहाँ उनके शारीरिक एवं मानसिक सुरक्षा की व्यवस्था की जाती है।

(6) भारत में ऐच्छिक संगठनों के माध्यम से 'वृद्धजन देख–रेख केन्द्र' की स्थापना की गई। इस केन्द्र में 60 वर्ष से अधिक आयु के वृद्धों को रखा जाता है। इन केन्द्रों में एक ओर वृद्धों के अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है, तो दूसरी ओर उन्हें परिवार से भी सम्बन्धित रखा जाता है।

(7) वृद्धजनों की स्वास्थ्य सम्बन्धी देखभाल के लिए सचल चिकित्सकीय सेवाएँ शुरू की गई है। इस संदर्भ में ऐच्छिक संगठनों को सरकार की ओर से आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।

(8) वृद्धजनों को कानूनी परामर्श देने, पेंशन में मदद करने, आँख, नाक, कान से सम्बन्धित यंत्रों की सुविधा हेतु तथा बैकों से लेन–देन आदि में मदद हेतु गैर संस्थात्मक सेवाओं की स्थापना की गई है।

(9) सरकार तथा अन्य संस्थाओं द्वारा वृद्धजनों की अन्य सुविधाओं का भी ख्याल रखा गया है। जैसे बेसहारा, वृद्धजनों के लिए वृद्धावस्था पेंशन योजना, अन्नपूर्ण योजना के माध्यम से निराश्रित वृद्धों को दस किलो अनाज दिया जाना, राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा 0.75 प्रतिशत अधिक ब्याज 60 वर्ष से अधिक आयु के वृद्धों को दिये जाने की व्यवस्था, 65 वर्ष से अधिक आयु के वृद्धों को आयकर में छुट का प्रावधान, भारतीय रेल में सफर में 60 वर्ष से अधिक आयु के वृद्धों को 25 प्रतिशत किराये में छुट, डाकघरों में 2004 से सीनियर सिटीजन स्कीम के तहत 60 वर्ष से अधिक आयु के वृद्धों की जमा राशि पर एक प्रतिशत अधिक ब्याज की व्यवस्था है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि भारत सरकार एवं ऐच्छिक संगठनों के माध्यम से वृद्धजनों की समस्याओं को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है। इन प्रयासों से वृद्धों की समस्याओं की ओर आम लोगों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। भारत में वृद्धों का अपना परिवार से विशेष लगाव होता है। इसलिए भारतीय युवाओं एवं प्रौढ़ों का वृद्धों के प्रति सहानुभूति बढ़े, तो

भारतीय वृद्धों को विशेष समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ सकता है। इस संदर्भ में युवाओं में नैतिक शिक्षा की परम आवश्यकता है।

वृद्धों की समस्याओं के समाधान के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं :–

(1) संयुक्त परिवार को विघटन से रोकना तथा इसमें जो दोष उत्पन्न हो गए हैं उन्हें दूर करने के लिए उपाय किए जाने चाहिए।

(2) सामुदायिक जीवन को प्रोत्साहित करने के लिए उपयुक्त उपाय किए जाएँ। सामुदायिक वृद्धों के लिए मनोरंजन को उचित साधनों का विकास किया जाना चाहिए।

(3) असहाय वृद्धों हेतु वृद्ध होम की स्थापना सरकार को स्वयं करनी चाहिए और इसका खर्च भी उन्हें ही वहन करना चाहिए।

(4) वृद्धों का स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को हल करने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें निःशुल्क चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

(5) वृद्धजनों को यथासम्भव पारिवारिक वातावरण में रखा जाना चाहिए। हाल ही में केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड ने वृद्ध सदनों और पालागरों को मिलाकर एक ही स्थान पर संचालित करने की योजना बनाई है जिससे वृद्धजनों को बच्चों की गतिविधियों का आनन्द मिल सके तथा वे अपना समय सुख से बिता सकें। इससे बच्चों को भी वृद्धों का संरक्षण, प्यार और स्नेह मिल सकेगा। इस प्रकार की अन्य उपयोगी योजनाएँ बनाई जानी चाहिए तथा उन्हें तत्काल लागू किया जाना चाहिए।

संदर्भ :

1. डॉ० जे० एस० विनायक : पारिवारिक सम्बन्ध, संजीव प्रकाशन, मेरठ ।
2. डॉ० डी० आर० सचदेव : भारत में समाज कल्याण प्रशासन, किताब महल, सरोजनी मार्ग, इलाहाबाद ।
3. रवीन्द्र नाथ मुकर्जी : भारतीय समाज एवं संस्कृति, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली–7.
4. जी० के० अग्रवाल : भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, आगरा बुक स्टोर, आगरा ।

***

शिक्षा का अधिकार कैसे हो साकार

अमित कुमार पाण्डेय *
डॉ राघवेन्द्र सिंह **

भूमिकाः– सामान्यतः हम लोग जानते है कि किसी भी देश के विकास के लिए उस देश के नागरिकों का शिक्षित होना बहुत जरूरी है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए सभी देशों की सरकारें इस योजना पर कार्य कर रही है कि, किस तरह अपने देश के बच्चों को जो कि कल के भविष्य है, शिक्षित किया जाए। इसी के तहत भारत सरकार ने भारत में निःशुल्क शिक्षा और अनिवार्य शिक्षा की योजना को 2009 में हरी झण्डी दिखा कर लागू कर दिया है , ताकि प्रत्येक वर्ग के बच्चे पढाई कर सकें। शिक्षा का अधिकार अधिनियम पारित करने से पूर्व इस अधिनियम हेतु संविधान में प्रावधान करने के उद्देश्य से 86 वाँ संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया था।

हम सब यह भी जानते है किसी भी सरकारी सफलता वहाँ के सभी नागरिकों के शिक्षित होने पर निर्भरकरती है। 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया है।

शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 के अपेक्षाकृत सफल न होने का कारण :

इतने वर्षो के बाद भी सरकार को अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो पाई है जिसके कुछ प्रमुख कारण निम्न लिखित है।

1. इसके दिशा–निर्देशों एवं नियम, कानून के बारे में अधिकांश माता–पिता को सम्पूर्ण जानकारी न होने के कारण इस योजना का वे लाभ नहीं उठा पा रहे है।
2. अनेक विद्यालयो का मानना है कि गरीब बच्चों के एडमिशन से उनके स्कूल का परिणाम खराब हो जाएगा और समाज में उनके स्कूल की छवि खराब हो जाएगी और वे इन बच्चों के एडमिशन के लिए माँ–बाप को हतोत्साहित करते है।
3. सरकार इन स्कूलों को क्षतिपूति राशि समय पर नहीं देती है।
4. इस प्रकार स्कूलों में की जा रही लापरवाही व गैर जिम्मेदारी से काम करने के खिलाफ शिकायत करने व उस पर कार्यवाही करने की सरकार ने कोई व्यवस्था नहीं है।
5. सर्व शिक्षा अभियान के कार्यक्रम में धन की कमी सबसे बड़ी बाधा के रूप में सामने आ रही है।

---

* शोधछात्र (शिक्षा शास्त्र), एम एल के पो जी कालेज, बलरामपुर- उत्तर प्रदेश
** एसो प्राफेसर विभागाध्यक्ष - बीएड विभाग, एम एल के पी जी कालेज, बलरामपुर - उत्तर प्रदेश

सतत विकास के लक्ष्यों के अनुरूप शिक्षा :

इस योजना का मुख्य उद्देश्य शिक्षा के क्षेत्र में सतत् विकास करना है। नर्सरी से लेकर माध्यमिक स्तर तक के बच्चों के लिए समान रूप से शिक्षा उपलब्ध कराई जाए। इसी के तहत् सरकारी स्कूल में निःशुल्क किताबें, निःशुल्क बस्त्र व निःशुल्क खाने का प्रावधान है ताकि बच्चों की संख्या को बढाया जा सके।

क्या होंगे लाभ :

पहली बार स्कूलों में उच्चतर माध्यमिक और नर्सरी स्तर की शिक्षा का समावेश किया जाएगा, गुणवता युक्त शिक्षा पर ध्यान दिया जाएगा और बच्चों को सीखने की क्षमता का विकास होगा, सरकारी स्कूलो के बुनियादी ढाँचा में सुधार पर ध्यान दिया जायें, बच्चों को शिक्षा के लिए जागरूक किया जायेगा।

सुधार के लिए और क्या किया जाना चाहिए :

गाँव–2 में जागरूकता अभियान चलाया जाना चाहिए , लोगों को शिक्षा के प्रति जागरूक किया जाना चाहिए , माँ–बाप को बच्चों के अशिक्षित होने पर होने वाले हानियों से अवगत कराना चाहिये ताकि वे अपने बच्चो को स्कूलं पढनें के लिए भेजे। और सरकार को विद्यालय पर नजर रखने के लिए आनॅलाइन प्रबंध प्रणाली पर ध्यान देना चाहिए। स्कूलो में पढाई सही हो रही है या नहीं इस बात की निगरानी करनी चाहिए। विद्यालय में यदि किसी प्रकार कर गड़बड़ी पाई जाती है तो उस पर कठोर से कठोर कार्यवाही की जानी चाहिए ताकि भविष्य में कोई भी अध्यापक व अध्यापिका इस तरह की गलती न करें। मैं ये भी कहना चाहता हूँ कि सरकार को समय–2 पर जागरूकता अभियान एवं रेलियों के माध्यम से शिक्षा के प्रति जागरूक करना चाहिए। इसका उद्देश्य प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में सार्वभौमिक, समावेशन को बढावा देना तथा 6 से 14 वर्ष के बच्चो को शिक्षा के मौलिक अधिकार से वंचित होने से बचाना है। सरकार को सरकारी विद्यालय की व्यवस्था में आ रहे खर्च को समय–2 पर उपलब्ध कराना चाहिए ताकि विद्यालय में बच्चों की गुणवत्ता पूर्ण पढाई जारी रह सके और उन्हे किसी भी प्रकार पढते समय कठिनाइयों का सामना न करना पड़े।

शिक्षा का अधिकार, एडुटेक से होगा साकार :

कोविड महामारी के बाद शिक्षण संस्थानों को बंद करना पड़ा जिसके कारण ऑफलाईन शिक्षा पूरी तरह से वाक्षित हो गयी। विद्यार्थीयों तक शिक्षा पहुचाने के लिये केवल डिजिटल माध्यम ही था। इसके बाद आनलाईन डिजिटल शिक्षा की पहल की गयी । विभिन्न स्कूलों एवं कालेजो में डिजिटल माध्यम से शिक्षा का संचालन कर कोर्स को पूरा कराया जाने लगा। विभिन्न आनलाईन माध्यमों से शिक्षा में भागीदारी सुनिश्चित की जाने

लगी। महामारी के कारण जो व्यवस्था पूरी तरह से ध्वस्त हो गयी थी डिजिटल माध्यम से शिक्षा को आगे ले जाने में सहायता मिली।

डिजिटल पहल नें शिक्षा की दुनिया में क्रान्ति ला दी है परन्तु उसका इसरा पक्ष गॉव और शहर में बढती डिजिटल असमानता है क्योकि गांव मे पर्याप्त साधन सुविधा उपलब्ध नहीं है। हमारी अनिवार्यतः प्रयास होना चाहिए कि सभी को शिक्षा मिले, कोई शिक्षा से वंचित न हो सके। यह भारत के भविष्य के लिये भी महत्वपूर्ण है उसके नागरिक शिक्षित और कौशल हो और बिना शिक्षा के ये संभव नहीं है। डिजिटल शिक्षा प्रणाली ने शिक्षा के क्षेत्र में एक नयी व्यवस्था को जन्म दिया है विद्यार्थी को पहुॅच का दायरा इससे बढ़ गया है कोई भी कहीं से भी सीख सकता है।

शिक्षा में तकनीकी :

महामारी से पहले भी पढाई के विकट संकट से जूझ रहा था तब दस साल की उम्र वाले दो में से एक बच्चे में पढने की बुनियादी दक्षता की कमी थी। महामारी नें इस समस्या को और बढ़ा दिया है क्योकि 15.5 लाख स्कूल भौतिक रूप से बंद हो गये है। इससे 24.8 करोड़ से अधिक छात्र एक वर्ष से अधिक समय तक कक्षीय पठन–पाठन से वंचित है। अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के एक अध्ययन में पाया गया है कि स्कूलों के बंद हो जाने के चलते प्राथमिक विद्यालयों के 82 से 92 प्रतिशत छात्रों ने कम से कम एक गणितीय और भाषा कौशल खो दिया है। यह स्थिति शिक्षा में तकनीकी को एकीकृत करने की आवश्यकता पर बल दे रही है। इससे हर बच्चे की शिक्षा तक पहुच बढाने में मदद् मिलेगी। यद्यपि केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों ने रेडियों और टेलीविजन कार्यक्रमो, लाइव व्याख्यानों के साथ–2 आनलाईन एप्लिकेशनों के माध्यम से दूरस्थ शिक्षा और अध्ययन की निरन्तरता बनाये रखने के लिए कई प्रयोग किये है, परन्तु इस दिशा में अभी कुछ चुनौतियॉं बनी हुई है। शिक्षा की वार्षिक स्थिति रिपोर्ट(एएसईआर) 2020 से पता चला है कि घरेलू स्तर पर लगभग 60 प्रतिशत छात्रों के पास ही टेलीविजन और स्मार्ट फोन की सुविधा उपलब्ध है।

एडु–टेक :

ऐसे में एक एडु–टेक (तकनीकी संचालित शिक्षा) नीति की अनिवार्यता तेजी से स्पष्ट होती जा रही है ताकि प्रत्येक बच्चे को 21वी सदी की आवश्यकताओ के अनूकुल बनाया जा सकें। वैसे हमारी नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 शिक्षा के हर स्तर पर तकनीक को एकीकृत करने की बात करती है। इसके लिए एक स्वायत्त निकाय के रूप में राष्ट्रीय शिक्षा प्रौद्योगिकी मंच (एनटीएफ) के स्थापना करने की परिकल्पना भी की गयी है। वास्तव में भारत तकनीकी आधारित संरचना, बिजली और सस्ती इन्टरनेट कनेक्टिविटी तक पहुच के साथ इस दिशा मे छलांग लगाने के लिए तैयार है जिसे डिजिटल इण्डिया जैसे प्रमुख कार्यक्रमों और शिक्षा मन्त्रालय की पहल से प्रोत्साहन मिल रहा है इसके लिए स्कूली शिक्षा के लिए डिजिटल

अवसंरचना (दिक्षा) ने ओपन सोर्स लर्निंग प्लेटफार्म तैयार किया गया है, जो दुनिया की सबसे बड़ी प्रबन्धन सूचना प्रणालीयों (ई–एमआईएस) में से एक है इसमे प्रत्यक्ष रूप से व्यापक संभावनाए नजर आ रही है।

उद्देश्य :

एडु–टेक नीति के चार प्रमुख उद्देश्य जैसे– वंचित समूहों की शिक्षा तक पहुँच प्रदान करना, शिक्षण, –अध्ययन और मूल्यांकन की प्रक्रिया को सूक्ष्म बनाना, शिक्षण–प्रशिक्षण कोसुगम बनाना, शासन प्रणालियों–में सुधार करना होना चाहिए। इस पर आगे बढ़ने के लिए कुछ बातों का ध्यान रखना होंगा। जैसे– तकनीक एक उपकरण है, रामबाण नहीं अतः इसका उपयोग अध्ययन की सेवा में होना चाहिए। इसके लिए एक योजना बनाई जानी चाहिए। इसके बगैर डिजिटल संरचना प्रदान करने मे जोखिमहै तकनीकी स्कूलों को प्रतिस्थापित नहीं कर सकती है यह शिक्षकों की जगह नहीं ले सकती है, तकनीकी समाधान तभी प्रभावशाली होता है जब इन्हें शिक्षकों द्वारा अपनाया जाता है।

वैसे भी आज भारत में एडु–टेक का बाजार तेजी से बढ़ रहा है। इस क्षेत्र में अभी 4,500 से अधिक स्टार्ट–अप काम कर रहे है इनका कुल बाजार मूल्य करीब 70 करोड डॉलर है। अगले 10 वर्षो में इसका आकार 30 अरब डॉलर पर पहुंच जाने का अनुमान है। जमीनी स्तर अरूणाचल प्रदेश के नामसाई जिले में 'हमारा विद्यालय' और असम का 'करियर मार्गदर्शन' पोर्टल छात्रों की पढ़ाई में सहायक बनकर उभर रहें है। गुजरात में 'समर्थ' लाखों शिक्षकों को ऑनलाइन माध्यम से प्रशिक्षित कर रहा है। झारखण्ड का 'डिजीसाथ' अभिभवकी–शिक्षकों–छात्रों के संबंधो में मजबूती ला रहा है। हिमांचल प्रदेश की 'हर घर पाठशाला' बच्चो को डिजिटल शिक्षा प्रदान कर रही है। उत्तराखंड का सामुदायिक रेडियों 'बाइट' प्रारम्भिक पठन की बढ़ावा दे रही है। मध्य प्रदेश का 'डीजीएलईपी' विद्यालयों में शैक्षणिक सामग्री वितरित कर रहा है। केरल की 'अक्षरवृक्षम पहल' बच्चों को कौशल विकास कर रही है।

आवश्यकता :

देश में एडू–टेक को बढ़ावा देने के लिए कई मोर्चो पर एक साथ कदम उठाने की आवश्यकता है। सबसे पहले देश में एडू–टेक की पहुच और प्रभाव का आकलन करने के लिए एक खाका तैयार किया जाना चाहिए। इसके अंतर्गत अवसंरचना , शासन, शिक्षकों एवं छात्रों की चुनौतियों की पहचान की जानी चाहिए। लघु से मध्यम अवधि में, इन चुनौतिया को दूर करने के लिए सभी हितधारकों (छात्र, शिक्षक, स्थानीय समुदाय, प्रशासक, क्षेत्र विशेषज्ञ) को शामिल करतें हुए नीति निर्माण और योजनाएँ बनाई जानी चाहिए। सार्वजनिक– निजी भागीदारी का मॉडल इसमें सहायक हो सकता है। देश में मौजूद डिजिटल खाई को पाटने पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। दीर्घ अवधि में जब सभी योजनांए पूरे देश में एकसमान

रूप में जमीन पर उत्तर जाएं तो सभी शैक्षणिक सामग्रियों का भंण्डार और समय–समय पर उनका परिष्करण करते रहना चाहिए।

उपंसहार :

कुल मिलाकर आज शिक्षा की तकनीक के सहार की जरूरत है। एडु–टेक नीति देश की शिक्षा तकनीक को पंख लगाने में सक्षम है। इससे सबकी समान रूप से गुणवत्तापरक शिक्षा मिलनी सुनिश्चित हो सकगी। छात्रों मे सीखनें की प्रक्रिया तेज और अच्छी होगी, शिक्षा की लगात में कमी आएगी और शिक्षकों के समझका बेहतर उपयोग हो सकेगा। इन सबसे अतंतः शैक्षिक उत्पादकता बढ़ेगी।

सन्दर्भ :

1. अग्निहोत्री, रविन्द (2007) ''आधुनिक भारतीय शिक्षा की समसयाएँ और समाधान'', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
2. अग्रवाल, जेसी (2007) ''शैक्षिक तकनीकी तथा प्रबंध के मूलवतत्व'', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
3. अग्रवाल, रामनाराण (1970) ''मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन'', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
4. भटनागर, सुरश (1970) ''शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार'' इन्टनेशन पब्लिशिंग हाऊस, आगरा।
5. भार्गव, महेश (1994) ''मनोविज्ञान और शिक्षा में सांख्यिकीय के मूल आधार'' एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
6. भटनागर, आर.पी. (1973) ''शिक्षा तथा मनोविज्ञान में सांख्यिकीय प्रयोग'' नेशनल बुक डिपो, मुरादाबाद।
7. गुड, बार स्केट्स (1994) ''शैक्षिक और सामाजिक अनुसंधान एवं सर्वेक्षण'' एपजीटॉन सेन्चुरी कम्पनी (इन्क) न्यूयार्क।
8. कुलश्रेष्ठ, एस.पी. (2004) ''शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार'', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
9. मित्तल, सन्तोष (2008) ''शैक्षिक तकनीकी एवं कक्षा–कक्ष प्रबंध'',राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
10. पाण्डेय, के.पी. (2008) शैक्षिक अनुसंधान, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

***

अन्य शब्द-वर्गों का हिंदी मानववाची नामपद के रूप में प्रयोग

अभिजीत प्रसाद *

परिचय

संसार में किसी भी इकाई को व्यक्त या संकेतिक करने के लिए एक नाम की आवश्यकता पड़ती है। ये नाम दो तरह के होते हैं- किसी एक ही प्रकार की अनेक चीजों को संबोधित करने के लिए प्रयुक्त तथा किसी एकमात्र इकाई को संबोधित करने के लिए प्रयुक्त। उदाहरण के लिए 'सेब' या 'मकान' ऐसे शब्द हैं जिनसे इस प्रकार की सभी इकाइयों का बोध होता है। 'सेब' शब्द को सुनकर यह नहीं कहा जा सकता कि किसी व्यक्ति विशेष के घर में रखा हुआ कोई एकमात्र फल या किसी स्थान विशेष (या एक जगह इंगित बाग/बगीचा) में स्थित एकमात्र पेड़। बल्कि एक विशेष आकार और स्वाद रखने वाले सभी फल (या उसके पेड़) 'सेब' हैं। दूसरी स्थिति है 'किसी एकमात्र इकाई को संबोधित करने के लिए प्रयुक्त' होने वाले शब्दों की है। 'मुंबई' कहने से पृथ्वी पर उपस्थित एकमात्र शहर का बोध हो रहा है। इसे 'उपग्रह' और 'चाँद' शब्दों के उदाहरण से भी देख सकते हैं। किसी ग्रह की परिक्रमा करने वाला कोई भी विशाल आकार का पिंड 'उपग्रह' है, इसलिए यह नामपद नहीं हो सकता, किंतु 'चाँद' शब्द से केवल एकमात्र उसी पिंड (उपग्रह) का बोध हो रहा है जो पृथ्वी के चक्कर लगाता है। अतः यह एक नामपद है। इस प्रकार के वे सभी शब्द जिनका प्रयोग संपूर्ण ब्रह्मांड की केवल एक इकाई (व्यक्ति, वस्तु, स्थान आदि) का बोध कराने के लिए किया जाता है, नामपद (*Name Entity)* हैं।

नामपद एवं मानववाची नामपद

'नामपद' 'नाम' (Name) + 'पद' (entity) दो शब्दों से मिलकर बना है। इन शब्दों का प्रयोग हिंदी में 'नामपद' एक साथ या 'नाम-पद' संयोजक चिह्न (-) के साथ प्रयोग किया जाता है जबकि अंग्रेजी में इन्हें 'Name Entity' अलग-अलग ही लिखा जाता है। 'नाम (Name)' एक ऐसा पद (term) है जिसका प्रयोग किसी वस्तु की पहचान (identification) के लिए किया जाता है और 'पद (entity)' एक ऐसी इकाई है जिससे किसी वस्तु की वास्तविक गुण, मात्रा का ज्ञान होता है। 'नाम' की व्युत्पत्ति की चर्चा करते हुए हलायुधकोश में कहा गया है- 'म्नायते अभ्यस्यते यत् तत्'। अर्थात् जिसे बार-बार दुहराया जाए। नामपद को सामान्य भाषाज्ञान में 'व्यक्तिवाचक संज्ञा' कहा गया है। जिन शब्दों द्वारा किसी विशेष व्यक्ति या स्थान का बोध होता है; उसे व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते हैं, जैसे- मोहन, राकेश, सुशीला, दिल्ली, मुंबई आदि। मशीनी दृष्टि से प्राकृतिक भाषा संसाधन (NLP) में इसे ही 'नामपद' कहा गया है।

नामपद कई प्रकार के होते हैं, जैसे- मानववाची नामपद (Human Name Entity), स्थानवाची नामपद (Place Name Entity), संस्थावाची नामपद (Organization Name Entity), संख्या (numbers), दिनांक (date), समय (time), माप (measures), मात्रा (mass), दिन (days) एवं माह (Month)। नामपदों के प्रकारों में मानववाची, स्थानवाची तथा संस्थावाची नामपद प्रमुख हैं। जब किसी व्यक्ति को इंगित या संकेत कर बोलना पड़े, तो उसके लिए हमें उसके नाम की आवश्यकता पड़ती है इसलिए मानव अपने समाज में अपने नामकरण की व्यवस्था बना रखी है। बालक के जन्म के कुछ दिनों बाद ही उसका

* पीएच.डी. शोधार्थी, भाषाविज्ञान एवं भाषा प्रौद्योगीकी विभाग, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा (महाराष्ट्र)

नामकरण होता है। यह नाम उसके परिवार, संबंधित सदस्यों आदि के द्वारा उसे संबोधित करने के लिए किया जाने लगता है। बालक हेतु परिवार द्वारा प्रयोग किया जाने वाला शब्द 'नाम' (Name) बालक का नाम कहलाता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि मानव समाज में किसी परिवार या व्यक्ति विशेष द्वारा दिया गया शब्द जो किसी व्यक्ति की पहचान या संबोधन आदि के लिए प्रयोग होता है, 'मानववाची नामपद' (Human Name Entity) हैं। मानववाची नामपद को दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि ऐसी इकाई जिनका प्रयोग केवल मानव (पुरुष और स्त्री) के संबोधन हेतु किया जाता है; वे पद मानववाची नामपद हैं, जैसे- मोहन, राकेश, राजेश, विजय, ममता, रीना, प्रीती, बतीता आदि।

मानववाची नामपद का शब्द-वर्गीय स्वरूप

मानववाची नामपद के अंतर्गत किसी व्यक्ति का नाम क्या या किस प्रकार के शब्द का हो सकता है उसके लिए कोई नियम (विधान) तय नहीं किया गया है। इनमें व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्दों को आधार बनाया जाता है लेकिन हिंदी में बहुत ऐसे भाववाचक संज्ञा शब्द हैं- प्रेम, आनंद, खुशी, भावना, कामना, कल्पना, मुस्कान, उजाला आदि जिनका प्रयोग मानववाची नाम के रूप में किया जाता है। इसी तरह शब्द-वर्ग के अन्य शब्दों का प्रयोग भी मानव नाम के रूप में होता है, यही कारण है कि मानववाची नामपद में संदिग्धार्थकता उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार यहाँ हिंदी में प्रयुक्त होने वाले मानववाची नामपदों को उसके शब्द-वर्ग के आधार पर उसके स्वरूप को अलग-अलग कर समझा जा सकता है।

अधिकांश मानववाची नाम संदिग्धार्थक ही होते हैं; परंतु सभी मानववाची नामपद संदिग्धार्थक नहीं होते हैं। जिन शब्दों का प्रयोग केवल किसी व्यक्ति के लिए ही किया जाता है उनमें अर्थ की दृष्टि से कोई समस्या नहीं होती है लेकिन बहुत ऐसे भी शब्द हैं जिनका प्रयोग अपनी स्वतंत्र इकाई (शब्द-वर्ग) के अलावा व्यक्ति के नाम के रूप में भी किया जाता है। ऐसे मिलने वाले शब्दों को नामपद में संदिग्धार्थक नाम (शब्द) कहते हैं, अर्थात दूसरे शब्दों कह सकते हैं कि जिन शब्दों का प्रयोग नाम के रूप में किया गया हो तथा उसका अपना भी एक अर्थ हो तो वे संदिग्धार्थक नामपद हैं। हिंदी मानववाची नामपद के अंतर्गत अन्य शब्द-वर्ग के शब्दों का प्रयोग नाम के रूप में किया जाता है। इसके अंतर्गत उन सभी शब्दों को रखा जा सकता है जो नामपद और अन्य शब्द-वर्गीय रूप जैसे- भाववाचक संज्ञा, विशेषण या क्रिया आदि दोनों के अंतर्गत आते हैं।

➢ **अन्य शब्द बनाम मानववाची नामपद**

पहले ही चर्चा हो चुकी है कि नामपद संदिग्धार्थक होते हैं लेकिन सभी नहीं। नामपद में प्रयुक्त शब्दों की संख्या के आधार उसे इस प्रकार से वर्गीकृत करें जैसे- एकशब्दीय (ज्योति, किरण, बादल, विकास), दोशब्दीय (छोटे लाल, राम बहादुर, राज कुमारी) एवं बहुशब्दीय (मुकुल बिहारी सरोज, ओम प्रकाश वाल्मीकि, अजिताभ प्रकाश चंद्रा) तो इसमें एकशब्दीय नामपद के अन्य शब्द-वर्गीय शब्द होनी की स्थिति सबसे अधिक मिलती है। एकशब्दीय के रूप में व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्दों के अलावा जो शब्द मानववाची नामपद के रूप में प्रयोग होने की क्षमता रखते हैं वे व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होते हैं और इनका कोशीय (शाब्दिक) अर्थ भी होता है। उदाहरण के लिए- रजनी, सुमन, पवन आदि इन शब्दों का प्रयोग किसी व्यक्ति के नाम के रूप में किया जा सकता है जबकि इनका अपना कोशीय अर्थ भी है। इस प्रकार मानववाची नाम के रूप में प्रयुक्त हो सकने वाले ऐसे सभी शब्दों के दो रूप (forms) बन जाते हैं और इनके प्रयोग से संदिग्धार्थकता उत्पन्न होती है। यहाँ उन्हीं शब्दों के बारे में चर्चा की जा रही है जो मानववाची नाम के साथ-साथ अन्य शब्द-वर्ग की इकाई के अंतर्गत आते

हैं, अर्थात जो शब्द मानववाची नामपद और अन्य शब्द-वर्ग दोनों कोटि के अंतर्गत आते हों। हिंदी मानववाची नामपदों को शब्द-वर्ग के आधार निम्न वर्गों में वर्गीकृत कर उसके स्वरूप को समझ सकते हैं-

- भाववाचक संज्ञा बनाम मानववाची नामपद
- जातिवाचक संज्ञा बनाम मानववाची नामपद
- सर्वनाम बनाम मानववाची नामपद
- विशेषण बनाम मानववाची नामपद
- क्रिया बनाम मानववाची नामपद
- क्रिया-विशेषण बनाम मानववाची नामपद
- **भाववाचक संज्ञा बनाम मानववाची नामपद**

हिंदी में ऐसे अनेक भाववाचक संज्ञा शब्द हैं जिनका प्रयोग मानव नाम (व्यक्तिवाचक संज्ञा) के रूप में भी किया जाता है। ऐसे शब्दों का किसी पाठ में प्रयोग किया जाता है तो एक शब्द-वर्ग की इकाई को छोड़कर दूसरी इकाई (या इसके विपरीत) का शब्द बन जाता है इस स्थिति में कोई संदिग्धार्थकता नहीं होती है लेकिन शाब्दिक स्तर पर ये संदिग्धार्थक शब्द होते हैं। ऐसे शब्दों के दो शब्द-वर्ग के अंतर्गत स्थान बन जाता है और ये स्वतंत्र किसी रूप में प्रयुक्त होने की क्षमता रखते हैं। उदाहरण के लिए-

1. मानसोत्सव कवि दिन में भी **सपना** देखता है। (भाववाचक संज्ञा)
2. **सपना** का डांस देखकर सभी लोग खुश हो गए। (व्यक्तिवाचक संज्ञा- नामपद)

इन वाक्यों में अर्थ की दृष्टि से 'सपना' शब्द द्वारा यहाँ कोई संदिग्धार्थकता नहीं है क्योंकि यहाँ इन्हें अलग-अलग अभिव्यक्ति हेतु प्रयोग किया गया है लेकिन यहीं शाब्दिक स्तर पर संदिग्धार्थक शब्द हैं। जब इस शब्द के प्रयोग से ऐसी संरचना बन जाएँ कि दो स्थितियों में से किसी एक अर्थ को निश्चय कर पाना कठिन हो जाए है तो उस स्थिति में उनके बीच संरचनात्मक संदिग्धार्थकता देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए-

1. उसने **सपना** पर कभी विश्वास नहीं किया। इस वाक्य में 'सपना' शब्द के अर्थ को निश्चित नहीं किया जा सकता है कि यहाँ इसका प्रयोग भाववाचक संज्ञा या नामपद (स्त्रीवाची नाम) में से किसके लिए किया गया है। इस प्रकार अनेक भाववाचक संज्ञा शब्दों का प्रयोग मानववाची नामपद के रूप में प्रयोग किया जाता है। ऐसे मिलने वाले कुछ प्रमुख भाववाचक शब्द बनाम नामपद के अन्य उदाहरणों को निम्न तालिका में देख सकते हैं-

भाववाचक संज्ञा बनाम मानववाची नामपद के अन्य उदाहरण	
स्त्रीवाची नामपद	नम्रता, महिमा, मधुरिमा, गरिमा, अर्चना, कल्पना, कामना, उपासना, विद्या, पूजा आदि।
पुरुषवाची नामपद	विकास, दया, प्रेम, अमर, आनंद, प्रताप, विनय, उत्कर्ष, चेतन, गौरव आदि।

उपरोक्त तालिका में स्त्रीवाची और पुरुषवाची नामों को अलग-अलग देख सकते हैं जो व्यक्तिवाचक संज्ञा अर्थात मानव नाम के रूप में प्रयुक्त होने वाले सभी पद भाववाचक संज्ञा शब्द हैं।

इसमें भी हिंदी नामपदों का डाटा लेकर उनका विश्लेषण किया तो प्राप्त हुआ कि भाववाचक संज्ञा शब्दों में का प्रयोग स्त्रीवाची नाम के लिए अधिक है जबकि पुरुषवाची नाम के लिए कम है। इसी प्रकार नामपदों को शब्द-वर्ग के आधार पर विश्लेषण किया गया है।

➢ **जातिवाचक संज्ञा बनाम मानववाची नामपद**

जिस प्रकार नामपद के रूप में भाववाचक संज्ञा शब्दों का प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार जातिवाचक संज्ञा शब्दों का भी प्रयोग नामपद (व्यक्तिवाचक संज्ञा) के रूप किया जाता है लेकिन इनकी संख्या भाववाचक संज्ञा शब्दों की अपेक्षा कम है। ऐसे मिलने वाले कुछ प्रमुख जातिवाचक शब्द बनाम नामपद की सूची को नीचे दी गई तालिका में देख सकते हैं-

जातिवाचक संज्ञा बनाम मानववाची नामपद के अन्य उदाहरण	
स्त्रीवाची नामपद	आनंदी, कमला, सोना, अनुपमा, तारा, कविता, गीता, पायल, काजल, पलक आदि।
पुरुषवाची नामपद	मयूर, नरेंद्र, पवन, हीरा, मोती, राजदीप, अनूप, समीर, अशोक, निशांत आदि।

➢ **सर्वनाम बनाम मानववाची नामपद**

ऐसा कोई सर्वनाम शब्द प्राप्त नहीं हुआ जिनका प्रयोग किसी व्यक्ति के नाम के लिए नहीं किया जाता है। इसे ऐसे कह भी सकते हैं कि सामान्य व्यवहार में अभी तक कोई भी सर्वनाम शब्द नहीं मिला है जिसका प्रयोग मानववाची नामपद के रूप हो।

➢ **विशेषण बनाम मानववाची नामपद**

हिंदी में मानववाची नामपद के रूप में प्रयुक्त होने वाले विशेषण शब्दों की संख्या बहुत अधिक है। अनेक विशेषण शब्दों का प्रयोग व्यक्ति के नाम के रूप में किया जाता है। इसके अलावा कुछ विशेषण शब्द जैसे- लाल, श्याम, बहादुर (नाम के उदाहरण- दिनेशलाल, श्यामबिहारी, रामबहादुर) आदि हैं जो मानववाची नामपदों के निर्माण में सहायक घटक के रूप में कार्य करते हैं। विशेषण शब्द के अंतर्गत पुल्लिंग और स्त्रीलिंग दोनों ही प्रकार के मानव नाम पाए जाते हैं। विशेषण बनाम मानववाची नामपद के उदाहरण को निम्न तालिका में देख सकते हैं-

विशेषण बनाम मानववाची नामपद के अन्य उदाहरण	
स्त्रीवाची नामपद	उज्ज्वल, निर्मल, निवेदिता, प्रियदर्शन, अनुपमा, मंजु, कोमल, विमल, नेहा, भाग्यवती, शीतल आदि।
पुरुषवाची नामपद	सुशील, अमर, उत्तम, मनोहर, विनीत, निर्भय, अनमोल, हर्षित, विशाल, अक्षय, बहादुर, विमल, त्रिलोकी आदि।

➢ **क्रिया बनाम मानववाची नामपद**

नामपद के रूप में प्रयोग होने वाले क्रिया शब्द बहुत कम हैं जिनका प्रयोग दोनों के रूप में किया जाता हो। उदाहरण के लिए-

- सोना (क्रिया एवं संज्ञा शब्द इसके अलावा स्त्रीवाची नामपद के रूप में प्रयुक्त)
- रंजना (क्रिया तथा स्त्रीवाची नामपद)
- आराधना (क्रिया एवं संज्ञा शब्द तथा स्त्रीवाची नामपद)
- राधना (क्रिया तथा स्त्रीवाची नामपद)
- गया (क्रिया रूप तथा पुल्लिंग मानववाची नामपद)

इसके प्रयोग से होने वाली संदिग्धार्थकता की स्थिति को निम्नलिखित वाक्यों में देख सकते हैं-

1) मुझे **सोना** दिखी थी। (नामपद)

2) मुझे **सोना** खरीदना है। (संज्ञा)

3) व्यक्ति को दिन में भी एक बार **सोना** चाहिए। (क्रिया)

4) **सोना** कहाँ है? (क्रिया या नामपद?)

'जाना' क्रिया का बना भूतकालिक क्रिया रूप 'गया' का वाक्य में प्रयोग होने पर बनने वाली संदिग्धार्थकता की स्थिति इस प्रकार हो सकती है-

1) रमेश घर **गया** है। ('जाना' क्रिया का भूतकालिक रूप)

2) **गया** रमेश का सबसे अच्छा दोस्त है। (नामपद)

उपरोक्त में 'सोना' शब्द का प्रयोग नाम, संज्ञा, क्रिया कई रूपों में किया जाता है इसी तरह 'गया' शब्द का प्रयोग क्रिया और नामपद दो रूप में मिलता है। इस प्रकार इन शब्दों के एक से अधिक स्थिति में प्रयोग किए जाने के कारण पाठ में संदिग्धार्थकता मिलती है। इन शब्दों का संज्ञा, क्रिया के अलावा नामपद में भी संदिग्धार्थकता होती है।

- **क्रिया-विशेषण बनाम मानववाची नामपद**

ऐसा कोई क्रिया विशेषण-शब्द नहीं हैं जिनका प्रयोग किसी व्यक्ति के नाम के लिए किया जाता है। हिंदी नामपदों के डाटा के आधार पर यह प्राप्त हुआ है कि किसी क्रिया का शब्द विशेषण-प्रयोग मानववाची नाम में पुरुष या स्त्री के लिए नहीं किया गया है

इस प्रकार देख सकते हैं कि सर्वनाम और क्रिया-विशेषण को छोड़कर अन्य शब्द-वर्ग के कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका प्रयोग मानववाची नामपद के रूप में किया जाता है। वे सभी अन्य शब्द-वर्गीय शब्द जिनका प्रयोग मानववाची नामपद के लिए भी किया जा सकता है वे संदिग्धार्थक नामपद होंगे। इनमें भाववाचक संज्ञा तथा विशेषण शब्दों की संख्या सबसे अधिक है जिनका प्रयोग मानववाची नामपद के अंतर्गत पुरुषवाची या स्त्रीवाची नाम के लिए किया जाता है। कुछ जातिवाचक संज्ञा शब्दों का भी प्रयोग मानव नाम के रूप में किया जाता है। इस प्रकार मानववाची नामपदों को शब्द-वर्ग के आधार पर वर्गीकरण करने पर प्राप्त होने वाले स्वरूप के समझा जा सकता है कि किस वर्ग के शब्दों का प्रयोग मानव नामपद के रूप में किया जाता है और किसका नहीं मिलता है। के के संदर्भ में संक्षेप में कह सकते हैं कि व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्दों के अलावा अन्य जिन शब्दों का प्रयोग मानव नाम के लिए किया जा सकता है उन्हें हिंदी नामपद (व्यक्तिवाचक संज्ञा) के अलावा अन्य शब्द-वर्ग की भी किसी इकाई के रूप में पाठ में प्रयोग मिलेगा। इसके आधार पर प्राप्त हुआ है कि सामान्यतः अन्य शब्द-वर्ग के कई शब्दों का प्रयोग मानववाची नाम के लिए किया जा सकता है। इस स्थिति में अधिकांशतः मानव नामपद संदिग्धार्थक होंगे।

संदर्भ :

1. ओझा, त्रिभुवन. (1986). हिंदी में अनेकार्थकता का अनुशीलन. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
2. चित्रा, (1989). हिंदी वाक्य संरचना का संबंधपरक अध्ययन. कलिंग प्रकाशन दिल्ली।
3. तरुण, हरिवंश. (2010). मानक हिंदी व्याकरण और रचना. प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।
4. तिवारी, भोलानाथ. (2009). हिंदी भाषा की वाक्य-संरचना. साहित्य सहकार, दिल्ली।

5. दीमशित्स, जाल्मन. (1983). हिंदी व्याकरण. हिंदी अनुवाद. रादुगा प्रकाशन मास्को।

6. पांडेय, अनिल कुमार. (2010). हिंदी संरचना के विविध पक्ष. प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।

Websites:

1. https://arxiv.org/ftp/arxiv/papers/1308/1308.0661.pdf
2. http://aircconline.com/ijist/V6N2/6216ijist02.pdf
3. http://www.cscjournals.org/manuscript/Journals/IJCL/Volume2/Issue1/IJCL-19.pdf
4. http://kmario23.github.io/papers/ICON2013_NER.pdf

***

योग द्वारा बृद्धावस्था में स्वास्थ्य जागरूकता

डॉ. संजय कुमार *

प्रस्तावना

बिना किसी समस्या के जीवन भर तंदुरूस्त रहने का सबसे अच्छा, सुरक्षित, आसान और स्वस्थ्य तरीका योग हैं। इसके लिए केवल शरीर के क्रियाकलापों और श्वास लेने के सही तरीकों का नियमित अभ्यास करने की आवश्यकता है। यह शरीर के तीन मुख्य तत्वोंः शरीर, मस्तिष्क और आत्मा के बीच संपर्क को नियमित करता है। यह शरीर के सभी अंगों के कार्यकलाना को नियमित करता है और कुछ बुरी परिस्थितियों और अस्वस्थ्यकर जीवन–शैली के कारण शरीर ओर मस्तिष्क को परेशानियों से बचाव करता है। यह स्वथ्य, ज्ञान और आन्तरिक शान्ति को बनाए रखने में मदद करता है। अच्छे स्वास्थ्य प्रदान करने के द्वारा यह हमारी भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करता है, ज्ञान के माध्यम से यह मानकिस आवश्यकताओं को पूरा करता है, इस प्रकार यह हम सभी के बीच सामंजसय बनाए रखने में भी मदद करता है।

योग से एकाग्रता की ओर

सुबह में योग का नियमित अभ्यास हमें अनगितन शारीरिक ओर मानसिक बीमारियों से बचाने का कार्य करता हैं। योग के विभिन्न आसन मानसिक और शारीरिक मजबूती के साथ ही अच्छाई की भावना का निर्माण करते हैं। यह मानव मस्तिष्क को तेज करता है, बौद्धिक स्तर को सुधारता है ओर भावनाओं को स्थिर रखकर उच्च स्तर की एकाग्रता में मदद करता है। अच्छाई की भावना मनुष्य में सहायता की प्रकृतिके निर्माण करती है और इस प्रकार, सामाजिक भलाई को बढ़ावा देती है। एकाग्रता के स्तर में सुधार ध्यान में मदद करता है और मस्तिष्क को आन्तरिक शान्ति प्रदान करता है। योग प्रयोग किया गया दर्शन है, जो नियमित अभ्यास के माध्यम से स्व–अनुशासन और आत्म जागरूकता को विकसित करता है।

विश्व योग दिवस

योग का अभ्यास किसी के भी द्वारा किया जा सकता है, क्योंकि आयु, धर्म या स्वस्थ परिस्थितियों परे है। यह अनुशासन और शक्ति की भावना में सुधार के साथ ही जीवन को बिना किसी शारीरिक और मानसिक समस्याओं के स्वस्थ्य जीवन का अवसर प्रदान करता है। पूरे संसार में इसके बारे में जागरूकता को बढ़ावा देने के लिए, भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोती ने, संयुक्त संघ की सामान्य बैठक में 21 जून को अन्तरराष्ट्रीय योग दिवस के रूप में मानाने की घोषणा करने का सुझााव दिया था, ताकि सभी

* शारीरिक शिक्षा विभाग, श्री महंथ रामाश्रय दास स्ना. महाविद्यालय भुड़कुड़ा, गाजीपुर

योग के बारे में जाने ओर इसके प्रयोग से लाभ ले। योग भारत की प्राचीन परम्परा है, जिसकी उत्पत्ति भारत में हुई थी और यौगियों के द्वारा तंदुरूस्त रहने और ध्यान करने के लिए इसका निरन्तर अभ्यास किया जाता है। निकट जीवन में योग के प्रयोग के लाभों को देखते हुए संयुक्त संघ की सभा ने 21 जेन को अन्तरारष्ट्रीय योग दिवस या विश्व योग दिवस के रूप में मनाने की घेषणा कर दी हैं।

योग के प्रकार

अथ योगनुशासनमायोगः चित्तवृत्ति निरोधः। योग का प्रारम्भ अनुशासन से चित्त की स्थिरता योग है।

योगसूत्र योग दर्शन का मूल ग्रंथ हैं यह छः दर्शनों में से एक शास्त्र है और योगशास्त्र का एक ग्रंथ है। योगसूत्रों की रचना 400 ई0 के पहले पतंजलि ने की। इसके लिए पहले से इस विषय में विद्यमान सामग्री का भी इसमें उपयोग किया। योगसूत्र में चित्त को एकाग्र करके ईश्वर में लीन करने का विधान है। पतंजलि के अनुसार चित्त की वृत्तियों को चंचल होने से रोकना (चित्तवृत्तिनिरोध) ही योग है। अर्थात मन को इधर–उधर भटकने न देना, केवल एक ही वस्तु में स्थिर रखना ही योग है।

योगसूत्र मध्यकाल में सर्वाधिक अनुदित किया गया प्राचीन भारतीय ग्रन्थ है, जिसका लगभग 40 भारतीय भाषाओं तथा दो विदेशी भाषाओं (प्राचीन जावा भाषा एवं अरबी) में अनुवाद हुआ। यह ग्रंथ 12वीं शताब्दी तक मुख्यधारा से लुप्तप्राय हो गया था किन्तु 19वीं–20वीं–21वीं शताब्दी में पुनः प्रचलन में आ गया है।

''चित्तवृत्ति निरोध'' को योग मानकर यम, नियम, आसन आदि योग का मूल सिद्धांत उपस्थित किये गये हैं। प्रत्यक्ष रूप में हठयोग, राजयोग और ज्ञानयोग तीनों का मौलिक यहां मिल जाता है। इस पर भी अनेक भाष्य लिखे गये हैं। आसन, प्राणायाम, समाधि आदि विवेचना और व्याख्या की प्रेरणा लेकर बहुत से स्वतंत्र ग्रंथों की भी रचना हुई।

योग दर्शनकार पतंजलि ने आत्मा और जगत् के संबंध में सांख्य दर्शन के सिद्धांतों का ही प्रतिपादन और समर्थन किया है। उन्होंने भी वही पचीस तत्व माने हैं, जो सांख्यकार ने माने हैं। इनमें विशेषता यह है कि इन्होंने कपिल की अपेक्षा एक और छब्बीसवाँ तत्व 'पुरुषविशेष' या ईश्वर भी माना है, जिससे सांख्य के 'अनीश्वरवाद' से ये बच गए हैं।

पतंजलि का योगदर्शन, समाधि, साधन, विभूति और कैवल्य इन चार पादों या भागों में विभक्त है। समाधिपाद में यह बतलाया गया है कि योग के उद्देश्य और लक्षण क्या है और उसका साधन किस प्रकार होता है। साधनपाद में क्लेश, कर्मविपाक और कर्मफल आदि का विवेचन है। विभूतिपाद में यह बतलाया गया है कि योग के अंग क्या है, उसका परिणाम क्या होता है और उसके द्वारा अणिमा, महिमा आदि सिद्धियों की किस प्रकार प्राप्ति होती है। कैवल्यवाद से कैवल्य या मोक्ष का विवेचन किया गया

है। संक्षेप में योग दर्शन का मत यह है कि मनुष्य को अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पाँच प्रकार के क्लेश होते हैं और उसे कर्म के फलों के अनुसार जन्म लेकर आयु व्यतीत करनी पड़ती है तथा भोग भोगना पड़ता है। पतंजलि ने इन सबसे बचने और मोक्ष प्राप्त करने का उपाय योग बतलाया है और कहा है कि क्रमशः योग के अंगों का साधन करते हुए मनुष्य सिद्ध हो जाता है और अंत में मोक्ष प्राप्त कर लेता है। ईश्वर के संबंध में पतंजलि का मत है कि वह नित्यमुक्त, एक, अद्वितीय और तीनों कालों से अतीत है और देवताओं तथा ऋषियों आदि को उसी से ज्ञान प्राप्त होता है। योगदर्शन में संसार को दुःखमय और हेय माना गया है। पुरुष या जीवात्मा के मोक्ष के लिये वे योग को ही एकमात्र उपाय मानते हैं।

पतंजलि ने चित्त की क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, निरुद्ध और एकाग्र ये पाँच प्रकार की वृत्तियाँ मानी है, जिनका नाम उन्होंने 'चित्तभूमि' रखा है। उन्होंने कहा है कि आरंभ की तीन चित्तभूमियों में योग नहीं हो सकता, केवल अंतिम दो में हो सकता है। इन दो भूमियों में संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात ये दो प्रकार के योग हो सकते हैं। जिस अवस्था में ध्येय का रूप प्रत्यक्ष रहता हो, उसे संप्रज्ञात कहते हैं। यह योग पाँच प्रकार के क्लेशों का नाश करने वाला है। असंप्रज्ञात उस अवस्था को कहते हैं, जिसमें किसी प्रकार की वृत्ति का उदय नहीं होता अर्थात् ज्ञाता और ज्ञेय का भेद नहीं रह जाता, संस्कारमात्र बचा रहता है। यही योग की चरम भूमि माना जाता है और इसकी सिद्धि हो जाने पर मोक्ष प्राप्त होता है।

पतंजलि के सूत्रों पर सबसे प्राचीन भाष्य वेदव्यास जी का है। उस पर वाचस्पति मिश्र का वार्तिक है। विज्ञानभिक्षु का 'योगसारसंग्रह' भी योग का एक प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। योगसूत्रों पर भोजराज की भी एक वृत्ति है (भोजवृत्ति)। पीछे से योगशास्त्र में तंत्र का बहुत सा मेल मिला और 'कायव्यूह' का बहुत विस्तार किया गया, जिसके अनुसार शरीर के अंदर अनेक प्रकार के चक्र आदि कल्पित किए गए। क्रियाओं का छभी अधिक विस्तार हुआ और हठयोग की एक अलग शाखा निकली; जिसमें नैति, धौति, वस्ति आदि षट्कर्म तथा नाड़ीशोधन आदि का वर्णन किया गया। शिवसंहिता, हठयोगप्रदीपिका, घेरण्डसंहिता आदि हठयोग के ग्रंथ हैं। हठयोग के बड़े भारी आचार्य मत्स्येंद्रनाथ (मछंदरनाथ) और उनके शिष्य गोरखनाथ हुए हैं।

महर्षि पतंजलि जिन्हें योग के क्षेत्र में योग का पिता माना जाता है, उन्होंने सर्वप्रथम योग की एक अलग पुस्तक लिखकर योग को एक अलग अस्तित्व प्रदान किया। लगभग 5000 वर्ष पूर्व महर्षि पतंजलि ने जिस महाग्रन्थ की रचना की उसे 'योगसूत्र' के नाम से जाना जाता है। यह पतंजलि योगसूत्र आज भी पढ़ने, पढ़ाने तथा योग के क्षेत्र में अनुसंधान करने वाले साधकों के लिए प्रेरणा का विषय है।

श्रीमद्भगवद्गीता के पश्चात् यदि किसी ग्रंथ का सबसे अधिक भाषाओं में अनुवाद हुआ है, तो वह पतंजलि योगसूत्र ही है। इसके पश्चात् जितने भी योग–सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे गये, उन सभी साधकों तथा योग–प्रेमियों का प्रेरणा स्रोत आधारभूत ग्रन्थ पतंजलि योगसूत्र ही रहा है। वैसे भी जितनी सटीक व्याख्या महर्षि पतंजलि जी ने अपनी पुस्तक 'योगसूत्र' में की है ऐसा उदाहरण हमें किसी और योग सम्बन्धी ग्रंथ में देखने को नहीं मिलता।

पतंजलि योगसूत्र के चार भाग हैं :

1. **समाधि पाद :**

यह पाद इक्यावन सूत्रों से सुशोभित हैं, जिसमें महर्षि पतंजलि ने योग की परिभाषा, चित्त की अवस्थाएं तथा चित्त की वृत्तियों पर नियंत्रण आदि का बहुत ही अनुशासनात्मक तरीकों से वर्णन किया गया है।

2. **साधन पाद :**

इस पाद में पचपन सूत्र आते हैं, जिसमें क्लेशों के नाश के विषय में तथा उनकी वृत्ति के विषय में बतलाया गया है। इसके अतिरिक्त क्रियाओं व अष्टांग योग के बाहरी तत्त्वों का भी वर्णन किया गया है। क्लेशों के नाश के पश्चात् संयम द्वारा प्राप्त होने वाली सिद्धियों के विषय में बताया गया है।

3. **विभूति पाद :**

इस पाद में भी 55 सूत्र आते हैं। इस भाग में धारणा, ध्यान और समाधि को मिलाकर इसे संयम की संज्ञा दी गई है।

4. **कैवल्य पाद :**

इसे मुक्ति पाद भी कहा है। इस पाठ में 34 सूत्र आते हैं। चौथा भाग कैवल्य पाद के नाम से जाना जाता है। यह योग की उस परमावस्था के विषय में ज्ञान देता है। जिसे मानव जीवन के परम उद्देश्य मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति की बात कही गई है। योगसूत्र के धर्ममेघ समाधि के नाम से सम्बोधित किया गया है तथा यह योग की अन्तिम अवस्था है।

इन पदों में योग अर्थात् ईश्वर–प्राप्ति के उद्देश्य, लक्षण तथा साधन के उपाय या प्रकार बतलाये गये हैं और उसके भिन्न–भिन्न अंगों का विवेचन किया गया है। इसमें चित्त की भूमियाँ या वृत्तियाँ का भी विवेचन है। इस योग–सूत्र का प्राचीनतम भाष्य वेदव्यास का है जिस पर वाचस्पति का वार्तिक भी है। योगशास्त्र नीति विषयक उपदेशात्मक काव्य की कोटि में आता है।

यह धार्मिक ग्रंथ माना जाता है, लेकिन इसका धर्म किसी देवता पर आधारित नहीं है। यह शारीरिक योग मुद्राओं का शास्त्र भी नहीं है। यह आत्मा और परमात्मा के योग या एकत्व के विषय में है और उसको प्राप्त करने के नियमों व उपायों के विषय में। यह अष्टांग योग भी कहलाता है क्योंकि अष्ट अर्थात् आठ अंगों में पतंजलि ने इसकी व्याख्या की है। ये आठ अंग है– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

अनेक परवर्ती धार्मिक व्यक्तियों ने इन पर टीका की और इस शास्त्र के विकास में योगदान किया। विशेष रूप से जैन धर्म के हेमचंद्राचार्य ने अपभ्रंश से निकलती हुई हिंदी में इसको वर्णित करते हुए बड़े संप्रदाय की स्थापना की। उनके संप्रदाय के अनेक मूलतत्व पतंजलि योगसूत्र से लिए गए हैं। स्वामी रामदेव, महेश योगी आदि अनेक धार्मिक गुरूओं ने योग सूत्र के एक या अनेक अंगों को अपनी शिक्षा का प्रमुख अंग बनाया है।

अष्टांग योग–योग के आठ अंगसं

महर्षि पतंजलि ने योग को चित्त की वृत्तियों के निरोध के रूप में परिभाषित किया है। योगसूत्र में उन्होंने पूर्ण कल्याण तथा शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शुद्धि के लिए आठ अंगों वाले योग का एक मार्ग विस्तार से बताया है। अष्टांग, आठ अंगों वाले, योग को आठ अलग–अलग चरणों वाला मार्ग नहीं समझना चाहिए; यह आठ आयामों वाला मार्ग है जिसमें आठों आयामों का अभ्यास एक साथ किया जाता है।

योग के ये आठ अंग हैं :

'यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधियोऽष्टावङ्गानि।'

–प0यो0द0 2:19

योग में कई तरह के होते हैं जैस राज्ययोग कर्म योग, ज्ञान योग, भक्ति योग और हठ योग। लेकिन जब ज्यादातर लोग भारतीय विदेशों में योग के बारे में बात करते हैं, तो उनका आमतौर पर हठ योग होता है, जिसमें ताड़ासन, धनुषासन, भृजंगासन, कपालभांति और अनुलोम–विलोम जैसे कुछ व्ययायाम शामिल होते हैं। योग पूरक या वैकल्पिक चिकित्सा की एक महत्वपूर्ण प्रणाली है।

योग आपाके लचीला बनाता है

कुछ लोगों को अपने शरीर को इधर उधर झुकाने या अपने पैर की उंगलियों को झुकने या छूने में बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। एक बार जब कोई व्यक्ति नियमति आधार पर योग करना शुरू करता है, तो वे जल्द ही इसका प्रभाव महसूस करना शुरू कर देता है। यह लोड़ों में दर्द को हटाने में भी मदद करता है, जो कि ज्यादातर बड़े लोगों में एक आम बात है। ये लोगों को प्राकृतिक तरीकों से भी रोगों से मुक्ति दिलाता है जिससे मुनश्य अपने शरीर में काफी चलीचापन तथा फुर्ती महसूस करता है।

योग का नियमित अभ्यास वृद्धावस्था में मानव–शरीर को ओजस्वी और स्वस्थ बनाये रखगा। योग व्यायामों का मानव शरीर की सभी प्रणालियों पर जिनमें ग्रन्थि, अंग और नाड़ी तंत्र सम्मिलित हैं, प्रत्याक्षतः स्वास्थ्य प्रदर्शित करने वाले प्रोत्साहनकारी और विनियमित करने वाला प्रभाव पड़ता है। इनका पूरे शरीर पर शुद्धकारी ओर पुनः यौवन प्रदान करने वाला प्रभाव होता है। योग आसनों के अभ्यास की अवधि में शरीर के पृथक–पृथक भागों को खींचने और सिकोड़ने की वैकल्पिक लयबद्ध पद्धति से कोष्ठकों में से

शिथिल निष्क्रिय लसीका बाहर आने लगती हैं। हर बार संकुचन (सिकुड़न) के साथ रक्तापूर्ति में थोड़ी सी कमी हो जाती है और हम खिंचवा के साथि वही भाग आूक्सीजन ओर पैाष्टिक तत्वों वाले ताजा रक्तापूव्रि से भर जाते हैं। इस पकार अंगों और मांसपेशियों को सर्वाधिक पोषण मिलता है, रक्त संचरण सुधरता है और विषकण तथा व्यर्थ पदार्थ शरीर से बाहर निकल जाते हैं।

योग आसनों के खिंचवा चरण में शरीर के कोषों के मध्य मूल आधार पर हल्का दबाव पड़ता है। यह आधार कोषों के मध्य सूचना के प्रसारण करने के लिए उत्तरदायी है। योग आसन इस कार्य में सुधार लाते हैं जिससे निष्क्रिय नाली खुल जाती है, शरीर के स्नायुओं का ठसाठस भरा होना कम हो जाता है और गुर्दों के माध्यम से व्यर्थ तत्वों को बाहर जाना बढ़ जाता है। शरीर की निष्क्रिय प्रणाली भोजन में वसायुक्त पदार्थों को रक्त कोषों में प्रवाहित करने के लिए जिम्मेवार है ओर शरीर के स्नायुओं में से व्यर्थ तत्वों को समाप्त करने की भी जिम्मेवार हैं। लसिका तंत्र का रोग निरोधक कार्य में प्रमुख महत्व है, अतः सिद्धान्त रूप में राग निरोधक तंत्र योग आसनों के अभ्यास से बहुत सहायता प्रापत करता है। लसिका तंत्र का एक अन्य अंग जो खींचने और तनावहीन होने से अत्यधिक लाभ प्रापत करता है वह है– धर्म जो शरीर का सबसे बड़ी अवयय है। योग अभ्यासों से चमड़ी की पुनः रूप धारण करने की सुनम्यता बनी रहती है और इस प्रकार यौवन दिखाई देने लगता है।

विशषरूप से उल्टी मुद्रायें, जैसे विपरीत–करणी मुद्रा, सर्वांगासन और शीर्षासन शरीर के ऊपर भाग में रक्तापूर्ति में सुधार लाते है। शरीर के निचले भाग में रंगों की सिकुड़न कम हो जाती है और रक्तचाप विनियमित होता है। गतिशील (सक्रिय) आसनों का अभ्यास रक्तचाप को कुछ बढ़ा देता है और इस प्रकार परिचालन बढ़ जाता है। तथापि आसनों (विशेष रूप से योग निद्रा के गहन विश्राम) के अभ्यास के बाद विश्राम प्रक्रिया सहानुभूतिप्रद नाड़ी तंत्र से परासहानुभूतिप्रद नाड़ी तंत्र की ओर एक सजग कार्य परिवर्तन ला देता है। यह परिवर्तन उच्च रक्तचाप और वर्धित नाड़ी दर से सबंधित सक्रियता से कम हो गये रक्त चाप और तनावहीन नाड़ी दर की स्थिति तक है।

परिणामस्वरूप स्वतः तंत्र, जो सामान्यतः हमारे सचेत नियन्त्रण से परे होता है, सहानुभूतिप्रद और परासहानुभूति प्रद नाड़ी तंत्रों में कार्यगत संतुलन स्थापित करके योग व्यायामों को परोक्ष रूप से सहायता प्रदान करता है। अतः स्रावी तंत्र भी अधिकतर इसी प्रकार विनियमित होता है। यह हृष्ट–पुष्ट रहने की भावना संतुलन सुव्यवस्था और अन्तयोगत्वा सर्वाधिकं स्वास्थ्य प्रदान करता है।

निष्कर्ष

हम योग से होने वाले लाभों की गणना नहीं कर सकते हैं, हम इसे केवल एक चमत्कार की तरह समझ सकते हैं, जिसे भगवान ने मानव प्रजाति को उपहार के रूप में प्रदान किया है। यह हमारी शारीरिक संतुष्टी को बनाये रखता है, तनाव को कम करता है, भावनाओं को नियंत्रित रखते हुए नकारात्मक विचारों को भी नियंत्रित करता है। जिससे हममे भलाई की भावना मानसिक शुद्धता, और आत्मविश्वास विकसित होता है। योग के अनगिनत लाभ है, हम यह कह सकते हैं कि योग मानवता को मिला हुआ एक ईश्वरीय वरदान है। योग द्वारा हम शारीर के सभी शरीरकार्यकीय सिस्टम को सुचारू रूप से सिद्धि प्राप्त कर सकतें हैं। जिससे बृद्धावस्था के लक्षण हमारे शरीर के उपर प्रभावी नहीं हो पातें हैं, अतः योग हमें निरोग और स्वथ्य बनाता है। बृद्ध शरीर की शरीरिक कार्य क्षमता कम हो जाने के कारण बृद्ध व्यक्ति भारी शरीरिक कार्य सरलतापूर्वक निस्पादित नहीं कर सकता हैं, अतः यौगिक क्रिया ही एक ऐसा माध्यम है जिससे बृद्धजन अपनें शरीर को स्वस्थ रख सकतें है।

संदर्भ :

1. योजयी योग। हेमचन्द्र, धातुमाला, गण 6.
2. योगश्वि समाधौ। हेमचन्द्र, धातुमाला, गण 4.
3. दर्शन और चिन्तन, प्रथमखण्ड, पृ0 230
4. योग फिलासोफी, पृ0 43.
5. योगश्वित्तवृत्तिनिरोधः योगसूत्र 1:2.
6. अथ सैषा योगमायामहिमा परम्परास्मांक वेदेग्य आरम्भ। वैदिक योग सूत्र, पृ0 22.
7. मोहन जोदड़ो एण्ड दी हिन्दूज सिविलाइजेशन, वो 1, पृ0 53.
8. यस्मादृते न सिध्यति यज्ञौ विपश्चितश्न। स धीनां योगामिन्वति। ऋग्देव 1:18:71
9. सामवेद 301, 210, 3,. अर्थववेद 20,691, ऋग्वेद 1,5,31
10. योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे। सखाय इन्द्रभूतये। ऋग्वेद, 1,30,7

***

कालिदास के काव्यों में शैव दर्शन

डॉ. प्रभा यादव *

भारतीय दर्शन के मूल वेद हैं और वेदों को अनादि माना गया है। भारतीय दर्शन जीवन–दर्शन है। वेद की वाणी है –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्।।

अर्थात् सभी लोग सुखी हों, सभी रोग–रहित हों, सभी प्रिय का दर्शन करें और कोई दुःख दैन्य को न प्राप्त हो। वेद के समान ही बुद्ध ही वाणी है– बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय। इस प्रथम उपदेश में भगवान बुद्ध ने, सामाजिक सुख और सामाजिक कल्याण पर बल दिया है।

महाकवि कालिदास वैदिक धर्म के अनुयायी हैं। इनका वर्णाश्रम व्यवस्था में अटल विश्वास है। वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष–चार पुरुषार्थों को मानते हैं। मोक्ष परम पुरुषार्थ है। धर्मादि त्रिवर्ग में धर्म सबसे बड़ा है। धर्माविरोधी अर्थ और काम का सेवन इन्हें इष्ट है। ये संसार को त्याग और तपस्या की शिक्षा देते हैं। इनकी दृष्टि में नगरों के जीवन की अपेक्षा तपोवन का जीवन श्रेष्ठ है। ये व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्व देते हैं। ये प्रत्येक व्यक्ति को अपने सारे कार्य लोक हित को ध्यान में रखकर करने की सलाह देते हैं। ये परमात्मा से जहाँ–तहाँ विश्व के कल्याण की कामना करते हैं। इस सम्बन्ध में इनके नाटकों के भरतवाक्य ध्यान देने योग्य हैं। ये आशावादी हैं, निराशावादी नहीं। यद्यपि ये मरण को प्रकृति और जीवन को विकृत मानते हैं, तथापि छोटा–सा जीवन जो मनुष्य को मिलता है, वह इनके मत में उसका एक बड़ा भारी लाभ है।

कवि कुल गुरु कालिदास हिन्दू संस्कृति के एक विशिष्ट कवि है एवं वैदिक धर्म के अनुयायी हैं। अपनी नैतिकता का परिचय इन्होंने अपनी सभी कृतियों में दिया है। धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष, वर्ण और आश्रम व्यवस्था, अवतारवाद, पूर्वजन्म की मान्यता, जन्म से मृत्युपर्यन्त सभी संस्कारों का विस्तृत और सांगोपांग वर्णन हमें इनकी रचनाओं में मिलता है। **''त्यागाय सम्भृतार्थानाम्'** से यह स्पष्ट कर देते हैं कि धर्म संचय त्याग के लिए होना चाहिए। इष्ट प्राप्ति का एकमात्र साधन

---

* स.अ. जैतपुरा गाजीपुर

तपस्या है। इस सिद्धान्त का इन्होंने सर्वत्र निर्वाह किया है। उनका प्रत्येक पात्र तपस्या की कसौटी पर कसा गया है। कालिदास के काव्यों में दार्शनिक तथ्य अनेक स्थलों पर विखरे पड़े हैं। इनके काव्यों एवं नाटकों में वर्णित–लिखित पात्रों से मनुष्य जीवन को बहुमुखी शिक्षाएँ प्राप्त होती हैं। शिव इनके परम इष्ट देवता है। इन्होंने मंगलाचरण में शिव का ध्यान किया है। ये शिव को ब्रह्म मानते हैं। शिव के रहस्यों का इन्होंने अनेकानेक स्थलों पर विवेचन किया है। शिव एवं मां पार्वती को शब्द अर्थ के समान एक दूसरे से सम्पृक्त मानते हैं।[1] शिव परमबह्म हैं एवं उनके कई रूप हैं जो प्रत्यक्ष प्रकृति में दिखाई पड़ने वाली महिमामयी अष्ट विभूतियाँ है। भगवान अष्टमूर्ति की प्रत्यक्ष अष्टमूर्तियाँ हैं– पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र और यजमान।[2] अभिज्ञानशाकुन्लम् में विशेष रूप से इसकी पुष्टि प्रथम श्लोक में हुई है। परमेश्वर इन रूपों में दृष्टिगोचर होता है तथा इस समस्त चराचर विश्व को धारण किये हुए है।

इनकी दृष्टि में नगरों की अपेक्षा तपोवन का जीवन श्रेष्ठ है। व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्व देते हैं। ये प्रत्येक व्यक्ति को लोकहित को ध्यान में रखकर कार्य करने की सलाह एवं परमात्मा से जहाँ तहाँ विश्व कल्याण की कामना करते हैं।[3]

वस्तुतः ये मरण को प्रकृति और जीवन को विकृति मानते हैं।[4] छोटा सा जीवन जो मनुष्य को मिलता है, वह बहुत बड़ा लाभ है, मनुष्य को उसका सदुपयोग करना चाहिए।

इनके नाटकों में नाट्य विद्या का दार्शनिक चमत्कार है। मुनि लोगों का कहना है कि नाट्य तो व्यवहार का मार्ग प्रशस्त कराता है एवं मन को सुहाने वाला शान्त यज्ञ है, स्वयं महादेव ने पार्वती से विवाह करके अपने शरीर में इसके दो भाग किये है, एक ताण्डव और दूसरा लास्य। इसमें सत्व, रज और तम तीनों गुण भी दिखलाये जाते हैं। अनेक रसों में लोगों के चरित्र भी दिखाई पड़ते हैं इसलिए अलग–अलग रुचि वाले लोगों के लिए नाटक ही ऐसा उत्सव है जिसमें सबको एक सा आनन्द मिलता है–

देवानामिदमामनन्ति मुनमः शान्तं क्रतुं चाक्षुषं
रुद्रेणेदमुनाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा।
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारंस दृश्यते
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधकम्।।[5]

इसका ज्ञान क्षेत्र आत्मज्ञान से युक्त एवं दृष्टि दार्शनिक है। इनमें आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों का उल्लेख रहस्यमय ढंग

से पाया जाता है। सांख्य, योग, शैव, न्याय, मीमांसा, वेदान्त, वैशेषिक दर्शनों का सम्यक् रूप से वर्णन इनकी पुस्तकों में दृष्टिगोचर होता है। मनोवैज्ञानिक ढंग से समानता की शिक्षा एवं उसकी भावना तर्क–वितर्क स्वयं प्रस्तुत करते हैं।

त्रिमूर्ति अर्थात ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश को एक ही ब्रह्म का स्थान देते है एवं क्रम से सत्व, रज, तम के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश को स्वीकार करते हैं।[6] मानव जीवन को सफल बनाने के लिए धर्म, अर्थ, तथा काम का सांमजस्य प्रस्तुत करना चाहिए इस त्रिवर्ग में धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है।[7]

त्रिवर्ग सारः प्रतिभाति भामिनी![8]

गीता इस उक्ति को पुष्ट करती है–

धर्माविरुद्धो कामोस्मि लोकेषु भरतर्षभ।

कालिदास वैयक्तिक उन्नति की अपेक्षा सामाजिक उन्नति के पक्षपाती हैं। इनका समाज श्रुति–स्मृति की पद्धति पर निर्मित समाज है। त्याग के लिए धन का संचय, सत्य के लिए परिमित भाषण, यश के लिए विजय की अभिलाषा, प्राणियों तथा राष्ट्रों को पद्दलित करने के लिए नहीं, सन्तान उत्पन्न करने के लिए गृहस्थ जीवन में निरत रहना, काम की भावना की पूर्ति के लिए नहीं, शैशव में विद्याभ्यास, यौवन में ही विषय की अभिलाषा, वृद्धावस्था में मुनि वृत्ति धारण करके सारे प्रपञ्च से मुँह मोड़कर निवृत्ति मार्ग के अनुयायी होने तथा अन्त में योग द्वारा अपना शरीर त्यागकर परमपद में लीन हो जाने की शिक्षा देते हैं।

उपनिषदों में धर्म के तीन स्वरूप प्रतिपादित हैं– यज्ञ, अध्ययन और दान। इनके अतिरिक्त तप की महिमा का वर्णन भारतीय धार्मिक साहित्य में बड़े ही मनोरम ढंग से किया है। साक्षात् ईश्वर को भी तपस्या करने को बाध्य किया[9] गया है और तपस्या द्वारा भगवान को भी खरीदा हुआ दास बना दिया गया है।[10] यज्ञ का महत्व ये भली–भाँति स्वीकार करते हैं। पुरोहित यज्ञ के रहस्यों का ज्ञाता होता है, राजा दिलीप यह अच्छी तरह से जानते है कि वशिष्ठ जी के यथाविधि सम्पादित होम[11] के द्वारा जल की ऐसी वृष्टि होती है जो ताप से सूखे सस्य को हरा भरा कर देती है।

नर राज तथा देवराज दोनों के परस्पर सहयोग से मानवों की रक्षा होती है। नर राज पृथ्वी को दूह कर उससे सुन्दर वस्तुएँ प्राप्त करने हेतु यज्ञ का सम्पादन करता है और देवराज इसके बदले में उत्पन्न होने के लिए आकाश को दूहकर पुष्कल

वृष्टि करता है। इस प्रकार दोनों अपनी सम्पत्ति का विनिमय करके उभयलोक का कल्याण करते हैं।[12] यज्ञ पूत के द्वारा अनेक अलौकिक पदार्थों की सिद्धि इनके काव्य में प्रदर्शित है। इनके ग्रन्थों में दान की महिमा अनेक स्थलों पर पायी गई है।

राजा रघु विश्वजित् यज्ञ में अपना सर्वस्व धन दान में देते हैं।[13] उसी समय वरतन्तु के शिष्य कौत्स गुरुदक्षिणा के आते हैं परन्तु वह अपने स्थान से च्युत नहीं होते।[14] कौत्स की इच्छा पूरी करने के लिए, कुबेर पर आक्रमण करने के लिए वे जिस रथ पर बैठते हैं उसे वशिष्ठ जी ने मन्त्रपूत जल से अभिमंत्रित कर दिया है और उसमें आकाश ही नहीं अपितु पहाड़ आदि विकट तथ विषम मार्गों पर चलने की भी क्षमता है। मन्त्र का सामाजिक कल्याण के लिए महत्वपूर्ण स्थान है। समाज आदान–प्रदान की भित्ति पर अवलम्बित है।[15]

कालिदास के सभी ग्रन्थों में तप–तपस्या का मार्ग प्रशस्त किया गया है। तप धर्म सिद्धि का प्रधान साधन है। तपस्या धर्म का विरोध करने वाला काम भस्म की राशि वन जाता है। शंकर को वश में करने के लिए पार्वती जी तपस्या करती हैं।[16] शरीर तथा हृदयस्थित दुर्वासना जलाए बिना धर्म की भावना जागरित नहीं होती। कालिदास ने काम को जलाकर यही चिरन्तन तथ्य प्रकट किया है। पार्वती की तपस्या इतनी कठोर होती है कि कठिन शरीर से उपार्जित मुनियों की तपस्या भी उसके सामने नितान्त प्रभाहीन तथा प्रभाव विहीन जान पड़ती थी।[17]

प्रकृति के नाना प्रकार के विषय कष्ट को झेलकर पार्वती अपनी काम सिद्धि में सफल होती है। ब्रह्मचारी द्वारा समझाने पर, तपस्या रोकने पर भी तनिक भी विचलित नहीं होतीं। वह अपने रास्ते पर अडिग रहती हैं। पार्वती की तपस्या का लक्ष्य मृत्यु को जीतने वाला महादेव रूपी पति है। जगत के समस्त पति मृत्यु के वश में हैं, मृत्युंजय ही एक ऐसे व्यक्ति है जो मृत्यु को जीतकर स्वतन्त्र स्थिति धारण कर सदा विराजते हैं। आज तक कोई भी कन्या मृत्युंजय को पति रूप में पाने के लिए समर्थ नहीं हुई और वह प्रेम भी कैसा कि शंकर ने पार्वती को अपने मस्तक पर स्थान दिया है, आदर की भी एक सीमा होती है। पत्नी को इतना उच्च स्थान प्रदान करना सत्कार का महान उत्कर्ष है आदर की पराकाष्ठा है।

कालिदास की भारतीय कन्याओं के लिए गौरव की यह साधना अनुकरणीय है। भारतीय समाज में गौरी पूजा का रहस्य

इसी महान स्वार्थ त्याग के भीतर छिपा हुआ है। तपस्या ने गौरी को इतना महान महत्वपूर्ण स्थान दिया है कि तपस्या करने वाले ऋषियों के भीतर विचित्र तेज छिपा रहता है, तब भी वे हमेशा शान्ति का अनुभव करते हैं। सूर्यकान्त मणि की तरह छूने में बड़े कोमल हैं, परन्तु दूसरे तेज के द्वारा अभिभूत होते ही वे जलते हुए तेज वमन करते हैं, वे किसी की धर्षणा सहन नहीं कर सकते है।[18]

कालिदास के ग्रन्थों में तप तपस्या का रहस्य अवर्णनीय है। इनकी दृष्टि में प्रपंच के पचड़े में पड़ने एवं मरने वाला जीव दया का पात्र है। सुख में आसक्त जीव को तापस उसी दृष्टि से देखता है, जैसे तेल मर्दन करने वाले व्यक्ति को स्नान किया हुआ व्यक्ति, अशुचि को शुचि, सुप्त व्यक्ति को प्रबुद्ध और वृद्ध पुरुष को स्वच्छन्द गति वाला पुरुष मानता है।

शिव विश्वात्मा है अखण्ड है:

कालिदास ने शिव की अखण्ड सत्ता का गुणगान सदैव किया है। ये परम वेदान्ती है। उन्हानें शिव को विश्व गुरु कहा है। इसकी पुष्टि उन्होंने अपने काव्यों एवं नाटकों में भली–भाँति की है। इनकी दृष्टि में शिव साक्षात् विश्व गुरु होते हुए विश्वात्मा हैं, तीनों लोकों में वन्दनीय हैं और तमोविकार से अनुपहित हैं। वह शिव किसी की स्तुति नहीं करते, उनकी स्तुति सभी करते हैं। वह जगत का अध्यक्ष एवं मनोरथों का भविष्य हैं। वाणी, मन, बुद्धि की वहाँ पहुँच नहीं है। उसको तत्वतः कौन जान सकता है?

कालिदास ने ब्रह्म के अद्वैत होने का पूर्ण रूपेण समर्थन किया है जो अनन्त पुरुष लोकलोकान्तर का अधिष्ठाता है वही हमारे आत्मतत्व में प्रतिष्ठित है। गीता में जिसे अक्षर कहा गया है उसमें और हृदयदेश में स्थित आत्मेश्वर में कोई भेद नहीं है।[19] गीता का क्षेत्र क्षेत्रज्ञविचार कालिदास को मान्य है। इस शरीर को क्षेत्र कहते है इस क्षेत्र को जो जानता है उसे क्षेत्रज्ञ कहते है। भगवान कृष्ण ने कहा है –हे अर्जुन! सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ मुझे ही समझो, क्षेत्र व क्षेत्रज्ञ का जो ज्ञान है वह मेरा ज्ञान माना गया है।[20]

इस प्रकार गीता का अक्षर, क्षेत्रज्ञ, तद्विद् आदि शब्द भी कालिदास जी ने लिए हैं। जिन्हें योगी लोग अपने शरीर के भीतर बैठा हुआ पाते हैं और जिनके लिए विद्वानों का कहना है कि वे जन्म–मरण के बन्धनों से बाहर हैं। शिव, विष्णु, ब्रह्म का अद्वैत भाव, शिव और कूटस्थ आत्मा का तादात्म और योग द्वारा उस अक्षर पर ब्रह्म का साक्षात्कार ही कालिदास का दार्शनिक मत है। वह कितना महान है, कितना सूक्ष्म है कहना कठिन है जिन तक न तो वाणी ही पहुँच पाती है न तो मन ही पहुँच सकता है।

विश्व को बनाने, पालन करने और अन्त में उसका संहार करने वाले तीनों रूप वे अपने में धारण करते हैं। जैसे एक स्वाद वाला वर्षा का जल अलग–अलग देशों में बरस कर अलग–अलग स्वाद वाला हो जाता है। वैसे ही वह सब प्रकार के विकारों से दूर होते हुए भी सत्व, रज, तम तीनों गुणों को लेकर बहुत से रूप धारण कर लेता है। वह कितना विशाल है कोई माप नहीं सका। परन्तु उसने सभी लोकों को माप डाला है उसे किसी भी प्रकार की कोई इच्छा नहीं है पर वह सबकी इच्छाएँ पूरी करता है। उसे कोई भी जीत नहीं सकता परन्तु वह सभी को जीत कर बैठा है वह किसी को दिखलाई नहीं देता है परन्तु दृश्य सम्पूर्ण विश्व को उसी ने उत्पन्न किया है, सबके हृदय में रहते हुए भी वह सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है।

संदर्भ :

1. रघु0 1/1
2. अभि0 1/1
3. अभि0 7/35
4. रघु0 8/87
5. मालविका0 1/4
6. श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्यसंस्था संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
   यस्योभयं साधु न सशिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितत्य एव।। मालविका 1/16
7. कुमार0 2/3
8. कुमार0 2/6
9. स्वयं विधाता तपसः फलानां केनापि कामेन तपश्चकार। कुमार0
10. अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मिदासः क्रीतस्तपोभिः। कुमार0
11. रघु0 1/8
12. रघु0 5/27
13. रघु0 5/1
14. रघु0 5/2
15. रघु0 5/31
16. कुमार0 5/2
17. कुमार0 5/8
18. अभि0 2/7
19. गीता, श्लोक 8/3
20. गीता 13/9

***

दीनदयाल उपाध्याय और अन्तयोदय योजना

रमेश राम पटेल *

उत्तर प्रदेश के मथुरा से 26 किलोमीटर दूर बसे चंद्रभान गांव में 25 सितंबर 1916 को पंडित दीनदयाल उपाध्याय का जन्म हुआ था। इनके पिता भगवती प्रसाद उपाध्याय रेलवे में सहायक स्टेशन मास्टर थे तथा माता रामप्यारी जो बेहद धार्मिक प्रवृत्ति की गृहिणी थीं। मात्र तीन वर्ष की आयु में ही दीनदयाल जी की माता का निधन हो गया था तथा सात वर्ष की आयु तक पहुंचने से पहले ही इनके पिता स्वर्ग सिधार गए। इतने विकट बचपन से संभलने के लिए प्रयासरत दीनदयाल जी के छोटे भाई भी कम उम्र में ही परलोक सिधार गए। जीवन के शुरुआती पड़ाव पर ही मृत्यु दर्शन का सामना करते हुए दीनदयाल जी अपने नाना-नानी के यहां रहकर अपनी पढ़ाई करने लगे। विलक्षण प्रतिभा के धनी दीनदयाल जी प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक पढ़ाई में बेहतरीन प्रदर्शन करते हुए स्वर्ण पदक, छात्रवृत्ति प्राप्त करते रहे। वर्ष 1937 में बी०ए में पढ़ाई के दौरान दीनदयाल जी के सहपाठी बालुजी महाशब्दे के अथक प्रयासों से दीनदयाल जी 'राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ' के संपर्क में आए। वर्ष 1942 में दीनदयाल जी संघ प्रचारक बने तथा उत्तर प्रदेश के लखीमपुर खीरी जिले से अपने कार्य की शुरुआत की। "भारतीय जनसंघ के प्रथम राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने पंडित दीनदयाल उपाध्याय को भारतीय जनसंघ के प्रथम राष्ट्रीय अधिवेशन कानपुर, उत्तर प्रदेश में दिसंबर 1951 में महामंत्री बनाया। 29 दिसंबर 1967 को कालीकट (कोझीकोड) केरल अधिवेशन में दीनदयाल जी भारतीय जनसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष बने थे जो फरवरी 1968 तक अपने पद पर रहे।" **(संकलनकर्ता-पंडित दीनदयाल उपाध्याय स्मृति समारोह समिति, पत्रिका-दीनदयाल उपाध्याय को जानो, प्रकाशक-पंडित दीनदयाल उपाध्याय स्मृति समारोह समिति, लालकोठी योजना, जयपुर-302015)**

बढ़ती जनसंख्या और कम होते संसाधनों की समस्या से हर कोई परिचित है किन्तु इसके समाधान के लिए सीमित संख्या में ही विद्वान चिंतन, मनन, अध्ययन, योजनाएं बनाते हुए देशहित में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। देश-दुनिया में संसाधनों की उपलब्धता में हो रही कमी से सबसे ज्यादा गरीब लोग प्रभावित हो रहे हैं। क्योंकि अमीर लोग बाजार से अंकित मूल्य से अधिक कीमत अदा करके जरूरत का सामान खरीदते हुए महंगाई बढ़ाने में अपना योगदान दे रहे हैं। गरीबों और जरूरतमंदों की भीड़ में अंतिम व्यक्ति की जरुरतों को पूरा करने का विचार ही 'अंत्योदय' कहलाता है। "अंत्योदय का अर्थ है-समाज की अंतिम पंक्ति के व्यक्ति का उदय, जिसका भावार्थ है पिछड़े लोगों का उत्थान करना। गरीबों और पिछड़े लोगों को समाज के दूसरे वर्गों के समान लाना।" **(www.socialsciencejournal.net, डॉ० राजेश यादव, दीनदयाल उपाध्याय जी की पोषणीय समाज की संकल्पना:एक भौगोलिक अध्ययन)**

मराठी भाषा में एक प्रसिद्ध कहावत है 'आधी पोटोबा मग विठोबा' जिसका अर्थ है कि गरीब आदमी पहले भोजन और फिर भजन की चिंता करता है। इसी तरह हिंदी भाषा में भी कहा गया है कि 'भूखे भजन न होई गोपाला' अर्थात् खाली पेट कभी भजन करना संभव नहीं है। इस संदर्भ में पंडित दीनदयाल उपाध्याय स्पष्ट रूप से कहते थे कि जब तक मानव की भूख नहीं मिटाई जाती है तब तक वह अपने जीवन व समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन नहीं कर पाएगा। नागरिकों को मूलभूत

---

* शोधार्थी, एम. फिल., दिल्ली विश्वविद्यालय

सुविधाएं उपलब्ध कराना राष्ट्र का प्रथम कर्तव्य है। समाज में चारों ओर, बस-रेल में यात्रा करते समय, दफ्तरों में चाय-लंच पर चर्चा करते समय, लंबे अंतराल के बाद मिले दोस्तों-रिश्तेदारों द्वारा मुलाकात के दौरान सामान्यतः देखते हैं कि घर-गृहस्थी की जिम्मेदारियों को पूरा कर रहे व्यक्ति से देश, समाज, धर्म, साहित्य, राजनीति की चर्चा करेंगे तो वह भावुकता और गुस्से में यह लोकोक्ति बयां करते हैं-

भूल गए राग रंग, भूल गए छाकड़ी।
तीन चीज याद रही, नोन, तेल, लकड़ी।।

दुर्भाग्यवश समाज में कुछ लोग जरुर अपनी सीमित सोच का परिचय देते हुए नकारात्मक माहौल बनाए रखने की कोशिश करते हैं और सरकार की हर नीति का विरोध करते हैं। अक्सर समाज में आवाज उठती है कि हमारी सरकारें केवल पूंजीपतियों के लिए नीतियां बनाती हैं जिसमें बड़ी-बड़ी इमारतें, लंबी-लंबी सड़कें, कल-कारखाने लगाने के लिए विशेष छूट या अन्य कोई उद्योग लगाने की घोषणा होती है। किंतु हमारी सरकारें लोगों की कार्यक्षमता, वर्ग-समुदाय की भागीदारी और आर्थिक स्थिति, इन नीतियों के समाज, राष्ट्र पर पड़ने वाले प्रभावों को ध्यान में रखते हुए ही योजनाएं बनाते हैं। जिस प्रकार किसी बड़ी इमारत के निर्माण के लिए बड़ी-बड़ी कंपनियों के नाम टेंडर जारी किए जाते हैं तो उस इमारत के निर्माण में मजदूर वर्ग अपनी कार्यक्षमता के अनुरूप काम करेगा और मेहनताना भी लेगा जिससे अपने परिवार की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा कर सके। दरअसल यही अंत्योदय का मूल मंत्र है कि सबसे अधिक सहायता उसे मिले, जिसको सबसे अधिक जरूरत है। अब कोई सरकार किसी मजदूर वर्ग या यूनियन को करोड़ों-अरबों रुपयों का कोई प्रोजेक्ट तो दे नहीं सकती है क्योंकि यह व्यावहारिक रूप से संभव नहीं होगा। अतः एक प्रोटोकॉल का अनुसरण करते हुए कार्यक्षमता और योग्यता के अनुरूप ही अंत्योदय के विचार को साकार किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, अगर किसी शहर में 16-20 घंटे बिजली की आपूर्ति हो रही है तो वहां 2-3 घंटे अतिरिक्त बिजली सप्लाई करना सरकार की उपलब्धि नहीं होगी बल्कि किसी पिछड़े गांव में पहली बार 8-10 घंटे ही सही, बिजली आपूर्ति की जाए तो यह पहल सरकार की अंत्योदय योजना की विचारधारा को साकार करती है।

बता दें कि दीनदयाल अंत्योदय योजना का उद्देश्य कौशल विकास तथा अन्य उपायों के जरिए आजीविका के अवसरों में वृद्धि करते हुए शहर तथा गांवों में रहने वाले लोगों की गरीबी कम करना है। 'मेक इन इंडिया' जैसे गंभीर एवं उपयोगी कार्यक्रम के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए सामाजिक और आर्थिक बेहतरी के लिए कौशल विकास आवश्यक है। "भारत सरकार ने दीनदयाल अंत्योदय योजना को आवास और शहरी गरीबी उपशमन मंत्रालय के तहत शुरू करते हुए 500 करोड़ रुपए का प्रावधान किया है।" **(India.gov.in , भारत का राष्ट्रीय पोर्टल, दीनदयाल अंत्योदय योजना)**

विदित हो कि यह योजना 'राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन' तथा 'राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन' का एकीकरण है। मानव की मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लक्ष्य पर काम करते हुए इस योजना को शुरू किया गया है। दीनदयाल अंत्योदय योजना तथा राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन योजना का लक्ष्य शहरी गरीब परिवारों की गरीबी और जोखिम को कम करने के लिए उन्हें लाभकारी स्वरोजगार और कुशल मजदूरी रोजगार के अवसर का उपयोग करने में सक्षम करना है, जिसके परिणामस्वरूप मजबूत जमीनी स्तर के निर्माण से उनकी आजीविका में स्थायी आधार पर सुधार हो सके। इसके अलावा इस योजना का उद्देश्य शहरी बेघरों हेतु आवश्यक सेवाओं से युक्त आश्रय प्रदान करना भी होगा। यह योजना शहरी सड़क विक्रेताओं की आजीविका संबंधी समस्याओं को देखते हुए उनकी उभरते बाजार के अवसरों तक पहुंच को सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त जगह,

संस्थागत ऋण और सामाजिक सुरक्षा तथा कौशल के साथ इसे सुविधाजनक बनाने से भी संबंधित है। "इस योजना की विशेषता की बात करें तो शहरी गरीबों को प्रशिक्षित कर कुशल बनाने के लिए 15 हजार रुपए का प्रावधान है, जो पूर्वोत्तर तथा जम्मू-कश्मीर के लोगों के लिए प्रति व्यक्ति 18 हजार रुपए है। इसके अलावा, शहरी गरीबों को बाजारोन्मुख कौशल में प्रशिक्षित करने के लिए भी काम किया जा रहा है।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 12 अगस्त 2021 को 'आत्मनिर्भर नारीशक्ति से संवाद' कार्यक्रम में महिला स्वंय सहायता समूह की महिला सदस्यों से बात की। इस कार्यक्रम में 'दीनदयाल अंत्योदय-राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन' के तहत 4 लाख महिला समूहों के लिए 1625 करोड़ रुपए की राशि जारी की है। पीएम मोदी ने कहा कि अब देश की महिलाओं को रसोई के डिब्बे में पैसे रखने की जरूरत नहीं है। "देश में कुल 42 करोड़ जन-धन खातों में से 55% जन-धन खाते महिलाओं के नाम पर खुले हुए हैं। अब स्वंय सहायता समूह को 10 लाख रुपए की बजाय 20 लाख रुपए का कर्ज बिना गारंटी के मिलेगा। पीएम मोदी ने इन स्वंय सहायता समूहों की तारीफ करते हुए कहा कि पिछले सात वर्षों में इन स्वंय सहायता समूहों में तीन गुना से अधिक की वृद्धि हुई है तथा इस दौरान इन स्वंय सहायता समूहों ने ऋण की राशि लौटाने में अभूतपूर्व काम किया है। जिसके कारण डूबते ऋण का प्रतिशत 9 से घटकर आज दो-ढाई प्रतिशत के बीच रह गया है।" **(13 अगस्त 2021 को छपे राष्ट्रीय संस्करण के विभिन्न समाचार पत्र)**

दीनदयाल अंत्योदय योजना की शुरुआत भारत सरकार द्वारा देश के ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों के गरीबों को कई प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए की गयी है। इस योजना के अंतर्गत गरीब लोगों के कौशल विकास और आजीविका के अवसरों में वृद्धि कर इन गरीब लोगों को रोजगार के अवसर प्रदान कर उनकी गरीबी को दूर किया जाएगा। विदित हो कि दीनदयाल अंत्योदय योजना-राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के अंतर्गत गांवों में रहने वाले गरीब परिवारों को 'स्वंय सहायता समूह' में शामिल किया जाता है। इस मिशन के माध्यम से इन गरीब ग्रामीणों की आमदनी तथा जीवन स्तर में सुधार करने के लिए उन्हें लंबे समय तक सहायता दी जाती है। "स्वंय सहायता समूह की प्रशिक्षित महिलाओं को कृषि सखी, बैंक सखी, बीमा सखी के नाम से जाना जाता है। इस मिशन से जुड़ी हुई ये सखियां ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को घरेलू हिंसा, महिला शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, लैंगिक मुद्दों तथा स्वच्छता के प्रति भी जागरूक करती हैं।" **(rural.nic.in, Ministry of Rural Development, Government of India)** राज्यों के सहयोग से लागू केंद्र सरकार द्वारा प्रायोजित दीनदयाल अंत्योदय योजना-राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के अंतर्गत 'स्टार्टअप ग्राम उद्यमिता कार्यक्रम तथा आजीविका ग्रामीण एक्सप्रेस योजना' के द्वारा लोगों को रोजगार दिया जा रहा है। इसके अलावा, 'सामुदायिक आजीविका' के तहत प्रशिक्षण कार्यक्रम में लेन-देन का हिसाब रखने, क्षमता निर्माण करने, वित्तिय सेवा उपलब्ध कराने जैसी गतिविधियों को शामिल करते हुए ग्रामीण महिलाओं को स्थानीय स्तर पर ही आय के अनेक स्त्रोत उपलब्ध कराए जा रहे हैं। साथ ही, 'महिला किसान सशक्तिकरण परियोजना और मूल्यवर्धन श्रृंखला' में महिला किसानों की कृषि लागत कम करते हुए आमदनी बढ़ाने के लक्ष्य को कृषि, बागबानी, डेयरी, मत्स्य पालन, वन उत्पाद, जैसी छोटी किंतु महत्वपूर्ण गतिविधियों को इस योजना में जोड़ा गया है। 'दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्या योजना' के अंतर्गत ग्रामीण युवाओं को प्रशिक्षण देते हुए उनके कौशल में वृद्धि की जा रही है ताकि उन्हें अधिक वेतन वाले रोजगार मिलते रहें। 'ग्रामीण स्वंय रोजगार प्रशिक्षण संस्थान' के जरिए युवा अपना उद्यम

स्थापित करने के लिए बैंकों से 'पीएम मुद्रा योजना' के तहत आसानी से ऋण प्राप्त कर रहे हैं। इसके अलावा मनरेगा की सहायता से गांवों तथा प्रखंड स्तर पर हाटों (ग्रामीण हाट) की स्थापना की जाएगी। इनके रखरखाव के लिए निर्धारित समिति जिसमें महिला स्वंय सहायता समूह, पंचायती राज संस्थान तथा स्थानीय सरकारी अधिकारी सदस्य होंगे।

11 फरवरी 2021 को पंडित दीनदयाल उपाध्याय की पुण्यतिथि पर 'समर्पण दिवस' कार्यक्रम में पीएम नरेंद्र मोदी ने देश को संबोधित करते हुए कहा था कि सत्ता की ताकत से आपको सीमित सम्मान ही मिल सकता है लेकिन विद्वान का सम्मान हर जगह होता है। दीनदयाल जी इस विचार के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। वैश्विक महामारी कोरोनाकाल में देश ने 'अंत्योदय' की भावना को सामने रखा। जिसके तहत अंतिम पायदान पर खड़े हर गरीब की चिंता की और सहायता भी की।

"वर्ष 2019 में राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद ने संसद के संयुक्त सत्र में कहा कि संघ परिवार तथा बीजेपी के प्रचारक दीनदयाल उपाध्याय के अंत्योदय के विचार के तहत गरीबों के लिए आवास, स्वास्थ्य और शिक्षा की व्यवस्था की जा रही है। जन-धन योजना के जरिए दुनिया में सबसे बड़ा आर्थिक समावेशन किया गया। अब देशभर में बैंकिंग सेवाओं को आसान बनाने का प्रयास किया जा रहा है।" **(navbharattimes.indiatimes.com, 20 जून 2019)**

निष्कर्ष: समाज में गरीबी की मार झेलते हुए दयनीय अवस्था में जीने को मजबूर लोगों की स्थिति को सुधारने के लिए केंद्र सरकार 'दीनदयाल अंत्योदय योजना' लेकर आई है। वैसे तो भारत के संविधान में पिछड़े वर्गों के विकास के लिए विशेष सुविधाएं एवं प्रावधान दिए गए हैं। जिसमें खासतौर पर आरक्षण व्यवस्था हमेशा चर्चा में रहती है। बता दें कि आरक्षण व्यवस्था और दीनदयाल अंत्योदय योजना में काफी अंतर है। दीनदयाल अंत्योदय योजना के माध्यम से पंडित दीनदयाल उपाध्याय का विचार व्यक्ति की सर्वांगीण उन्नति के विविध आयामों का परिचायक था। इसमें पिछड़े वर्गों को विभिन्न सुविधाएं प्रदान करना तो आवश्यक था ही, लेकिन गुणवत्ता के मामले में तथाकथित 'रियायत' प्रदान करके उन्हें मानसिक एवं बौद्धिक रूप से कमजोर व चिर-आलसी बनाकर और पतन के गर्त में धकेलना वे 'पाप' ही मानते थे। दीनदयाल जी का स्पष्ट रूप से मानना था कि आर्थिक योजनाओं तथा आर्थिक प्रगति का माप समाज के ऊपर की सीढ़ी पर पहुंचे हुए व्यक्ति नहीं, बल्कि सबसे नीचे के स्तर पर विद्यमान व्यक्ति से होगा। उनकी अंत्योदय की दृष्टि का सार हर हाथ को काम की संकल्पना के साथ ही है। उदाहरण के लिए, अंत्योदय योजना के तहत गांव में सभी घरों में रोशनी करने के लिए 100-100 वाट के बल्ब देना सही नहीं है बल्कि जो परिवार अंधेरे और निराशा में रहने को मजबूर हैं, केवल उन्हें ही बल्ब बांटे जाने चाहिए। जिस परिवार में पहले से ही 100-100 वाट के 5 बल्ब लगे हुए हों, वहां अतिरिक्त बल्ब देना मतलब किसी अन्य जरूरतमंद का हक छीनना होगा। भारत में ग़रीबी मिटाने का नारा देकर कुछ राजनीतिक दल सत्ता में तो आ जाते हैं किन्तु ठोस रणनीति और इच्छाशक्ति के अभाव में लोगों की गरीबी दूर करने, नागरिकों को मूलभूत सुविधाएं मुहैया कराने जैसे लक्ष्यों पर कोई ध्यान ही नहीं दे पाते हैं। देश में अनेक योजनाएं जनहित को ध्यान में रखते हुए बनाई गई हैं किन्तु सर्वाधिक योजनाओं में जाति, धर्म, समुदाय इत्यादि शर्तों की अनिवार्यता के कारण सम्पूर्ण भारत के जरुरतमंद लोगों का विकास नहीं हो पा रहा है। बिना किसी भेदभाव के जरुरतमंद को बिना किसी ढांचे में फिट बैठने की शर्त के योजनाओं का लाभ पहुंचाने के लिए दीनदयाल अंत्योदय योजना जैसी महत्वपूर्ण योजना वर्तमान समय में लोगों की सहायता करने और आत्मविश्वास बढ़ाने का काम कर रही हैं। देश की एक बड़ी

आबादी जो गरीबी में जीवनयापन कर रही है, उनको एक पोषणीय समाज में सुरक्षित महसूस करवाने के लिए पंडित दीनदयाल उपाध्याय का यह विचार मोदी सरकार की देखरेख में चरितार्थ हो रहा है।

सन्दर्भ :

- संकलनकर्ता-पंडित दीनदयाल उपाध्याय स्मृति समारोह समिति, पत्रिका-दीनदयाल उपाध्याय को जानो, प्रकाशक-पंडित दीनदयाल उपाध्याय स्मृति समारोह समिति, लालकोठी योजना, जयपुर-302015
- www.socialsciencejournal.net, डॉ० राजेश यादव, दीनदयाल उपाध्याय जी की पोषणीय समाज की संकल्पना:एक भौगोलिक अध्ययन
- India.gov.in (भारत का राष्ट्रीय पोर्टल) दीनदयाल अंत्योदय योजना
- 13 अगस्त 2021 को छपे राष्ट्रीय संस्करण के विभिन्न समाचार पत्र
- rural.nic.in (Ministry of Rural Development, Government of India)
- navbharattimes.indiatimes.com, 20 जून 2019
- pmmodiyojana.in, दीनदयाल अंत्योदय योजना 2021: राष्ट्रीय आजीविका मिशन ऑनलाइन आवेदन फॉर्म

***

उपग्रह चैनलों के कार्यक्रमों के प्रति शहरी तथा ग्रामीण नागरिकों के दृष्टिकोणों का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. श्याम बहादुर सिंह *
विवेक कुमार सिंह **

प्रस्तावना

जीवन में मानव को अनेक प्रकार की चिन्ताओं एंव कठिनाईयों से जूझना पड़ता है। सम्पूर्ण मानव जीवन संघर्षों की कहानी प्रतीत होता है। संघर्षों और चिन्ताओं के बीच में रहकर भी मनुष्य कुछ क्षण इनको भूलकर बिताना चाहता है, मन की प्रसन्नता और कार्य क्षमता की वृद्धि के लिए मनोरंजन अत्यन्त आवश्यक है। वास्तव में मनोरंजन थके हुए मन–मस्तिष्क को नई स्फूर्ति प्रदान करता है।

आज मनोरंजन जीवन की एक अभूतपूर्ण आवश्यकता प्रतीत होता है। इसमें भी आज हमारे पास अनेक साधन हैं जिनमें विभिन्न उपग्रह चैनलों द्वारा प्रसारित होने वाले कार्यक्रम मुख्य है। इनमें न केवल मनोरंजन बल्कि अनेक प्रकार के कार्यक्रम प्रसारित होते हैं, जिनसे हमें अनेक महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त होती है।

अध्ययन की आवश्यकता एंव महत्व

जब किसी नई चीज का आविष्कार होता है। तो लोग उसे ग्रहण करने और लाभ बटोरने में अपना सम्मान समझते है परन्तु इसके व्यापक होते ही इसकी अच्छाइयों के साथ–साथ इसकी बुराई या कमियां भी दिखाई पड़ने लगती है। समाज के बुद्धिजीवी वर्ग आलोचना प्रारम्भ कर देते है। यह सत्य है कि तस्वीर के दो पहलु होते है एक अच्छाई को दर्शाते है तो दूसरी बुराई को उजागर करते है किन्तु वास्तविक आलोचना तथा अपरिपक्व आलोचनाओं में एक बहुत बड़ा अन्तर है। विकसित राष्ट्र में आधुनिकता को प्रगति का ठोस आधार माना जाता है। परन्तु विकासशील और अल्पविकसित राष्ट्र में उसी आधुनिकता को असभ्य और संकीर्ण मानसिकता के कारण समाज का पथ भष्ट करने का साधन माना जाता है जो आलोचना का या समस्या चयन का बहुत बड़ा प्रमुख कारण बनती है।

समस्या के उद्देश्य

1. उपग्रह चैनलों के कार्यक्रमों के प्रति शहरी नागरिकों के दृष्टिकोणों का अध्ययन करना।
2. उपग्रह चैनलों के कार्यक्रमों के प्रति ग्रामीण नागरिकों के दृष्टिकोणों का अध्ययन करना।

---

* विभागाध्यक्ष (बी.एड.), एल.बी.एस. महा., गोण्डा
** शोधकर्ता, जे.एल.एन. मेमो.पी.जी. कालेज, बाराबंकी (उ.प्र.)

3. उपग्रह चैनलों के कार्यक्रमों के प्रति शहरी तथा ग्रामीण नागरिकों के दृष्टिकोणों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ–

प्रस्तुत शोध की परिकल्पनाँए निम्नलिखित है–

1. विभिन्न चैनलों के कार्यक्रमों के प्रति शहरी तथा ग्रामीण नागरिकों के दृष्टिकोण में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. विभिन्न उपग्रह चैनलों के मनोरंजक कार्यक्रमों के प्रति शहरी तथा ग्रामीण नागरिकों के दृष्टिकोणों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. विभिन्न उपग्रह चैनलों के शैक्षिक कार्यक्रमों के प्रति शहरी तथा ग्रामीण नागरिकों के दृष्टिकोणों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
4. अतः विभिन्न उपग्रह चैनलों के आर्थिक कार्यक्रमों के प्रति शहरी तथा ग्रामीण नागरिकों के दृष्टिकोणों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
5. अतः शहरी नागरिकों का राजनैतिक कार्यक्रमों के प्रति दृष्टिकोण सकारात्मक है।
6. अतः ग्रामीण नागरिकों का राजनैतिक कार्यक्रमों के प्रति दृष्टिकोण सकारात्मक है।
7. अतः विभिन्न उपग्रह चैनलों के राजनैतिक कार्यक्रमों के प्रति शहरी तथा ग्रामीण नागरिकों के दृष्टिकोणों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
8. अतः शहरी नागरिकों का सास्कृतिक एंव सामाजिक कार्यक्रमों के प्रति दृष्टिकोण सकारात्मक है।
9. अतः ग्रामीण नागरिकों का सास्कृतिक एंव सामाजिक कार्यक्रमों के प्रति दृष्टिकोण सकारात्मक है।
10. अतः विभिन्न उपग्रह चैनलों के सांस्कृतिक एंव सामाजिक कार्यक्रमों के प्रति शहरी तथा ग्रामीण नागरिकों के दृष्टिकोणों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन की परिसीमाएं

परिसीमांकन से तात्पर्य है– ''**अध्ययन की सीमाओं का निर्धारण**'' सीमाओं का निर्धारण निम्न सन्दर्भ के अन्तर्गत किया जाता है–

1. अध्ययन का क्षेत्र जिसके द्वारा निष्कर्ष प्राप्त करना।
2. अध्ययन की प्रक्रिया जिसके अन्तर्गत न्यायदर्शन, प्रदत्तों का संकलन और विश्लेषण एंव उपकरणों का निर्माण तथा अध्ययन में उसकी उपयोगिता सम्भावित है।

सम्बन्धित साहित्य का पुनरावलोकन

1. **फुलेटा, आर0 एस0 (1980) :**

''विद्यालयी दूरदर्शन की सार्थकता व उपयोगिता का दिल्ली के विद्यालयों के अन्तर्गत अध्ययन करना।''

उद्देश्य :

(अ) विद्यालयी दूरदर्शन सेवा की सीमा का अध्ययन करना।

(ब) उन घटकों का अध्ययन करना जो विद्यालयी दूरदर्शन सेवा को प्रभावित करते हैं।
(स) अनेक संस्थाओं के विद्यालयी दूरदर्शन सेवा में सम्बन्ध का अध्ययन।
(द) शिक्षकों के दृष्टिकोणों का विद्यालयी दूरदर्शन सेवा के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन।
(य) विषयों के अनुसार उन्हें प्रसारण सेवा में स्थान देना।

निष्कर्ष :

(क) कार्यक्रमों का प्रसार प्रत्येक कक्षा के लिए पर्याप्त नहीं था।
(ख) शिक्षकों के अनुसार कक्षा शिक्षण व दूरदर्शन शिक्षण में अन्तर नहीं था इसलिये यह बच्चों को नियन्त्रित करने में असक्षम रहा।
(ग) केवल 38 प्रतिशत विद्यालयों को ही यह सुविधा उपलब्ध हो सकी।
(घ) अत्यधिक मंहगे व प्रयोग करने के तरीकों के साधनों में कमी।
(ड़) काफी शिक्षकों ने विद्यालयी दूरदर्शन प्रसारण सेवा को सराहा क्योंकि इसमें शिक्षकों को सहायता मिलती थी।
(च) इस प्रसारण से छात्र व शिक्षक प्रत्यक्ष रूप से लाभान्वित थे।

2. **चौधरी, शिप्रा (1985) :**

''भूगोल शिक्षण में श्रव्य– दृश्य सामग्री की प्रभाविता का अध्ययन''

उद्देश्य :

भूगोल शिक्षण द्वारा विद्यार्थियों में विदेश के निवासियों के प्रति सच्ची सहानुभूति उत्पन्न की जा सकती है। विश्व बन्धुत्व की भावना तथ्ज्ञा मानवता के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करना, भूगोल शिक्षण के महत्वपूर्ण उद्देश्य है। शिक्षक को विद्यार्थियों की मानसिक शक्तियों का विकास करना चाहिए, ज्ञान को वे वाणिज्य व्यवसायों, कृषि तथा उद्योग– धन्धों में उपयोग कर सके। भूगोल अध्ययन द्वारा छात्रों के यात्रा करने की रूचि तथा उसकी प्रिय एंव रूचिकर लगने वाले कार्यों को प्रोत्साहित किया जा सकता है। इस ज्ञान की सहायता से वह दूसरों के प्रति नागरिकता के कर्तव्य भली–भाँति पूर्ण कर सकता है।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत अध्ययन द्वारा कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त हुआ हैं यद्यपि इन निष्कर्षों को हम बहुत विश्वसनीय नही मान सकते है क्योंकि यह अध्ययन एक चुने हुए न्यादर्श पर ही किया है फिर भी यह निष्कर्ष महत्वपूर्ण हैं क्योंकि यह समुदाय के कुछ सदस्यों का प्रतिनिधित्व करते है।

सम्बन्धित साहित्य के कार्य का अध्ययन करने से ही पता चला है कि दृश्य–श्रृव्य सहायक सामग्री की उपयोगिता अत्यधिक है। भूगोल शिक्षण में दृश्य–श्रृव्य में सहायक सामग्री का प्रयोग वांछनीय होगा।

3. **Biswal, B. (1992)** Contributed a paper out lining the research priorities of education redicals. He has rightly visualished the need for traning of educational adminintartion programme

producers, teachers & reseachers the also suggested the need to conducted collaborative reseqarches which would have teams of teachers reseachers & producers.

अनुसन्धान प्रक्रिया :

अनुसन्धान प्रक्रिया की योजना पर कार्य करने के क्रम में अध्ययन के उद्देश्यों तक पहुँचने के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया को अपनाया गया है।

1. शोध विधि
2. जन संख्या
3. न्यादर्श
4. उपकरण
5. उपकरण का वर्णन
6. आंकड़ों का एकत्रीकरण
7. प्रदत्त विश्लेषणों के लिए प्रयुक्त सांख्यिकीय विधियाँ

निष्कर्ष :

1. उपग्रह चैनलों के कार्यक्रमों के प्रति शहरी नागरिकों का दृष्टिकोण सकारात्मक है।
2. उपग्रह चैनलों के कार्यक्रमों के प्रति ग्रामीण नागरिकों का दृष्टिकोण सकारात्मक है।
3. उपग्रह चैनलों के कार्यक्रमों के प्रति शहरी तथा ग्रामीण नागरिकों के दृष्टिकोणों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। लेकिन शहरी नागरिकों का मध्यमान ग्रामीण नागरिकों की तुलना में अधिक है। अतः इससे यह सिद्ध होता है, कि शहरी नागरिकों का विभिन्न कार्यक्रमों के प्रति दृष्टिकोण ग्रामीण नागरिकों की अपेक्षा अधिक सकारात्मक है।
4. उपग्रह चैनलों के **'मनोरंजक कार्यक्रमों'** के प्रति शहरी नागरिकों का दृष्टिकोण सकारात्मक है।
5. उपग्रह चैनलों के **'मनोरंजक कार्यक्रमों'** के प्रति ग्रामीण नागरिकों का दृष्टिकोण सकारात्मक है।

उपलब्धियाँ :

1. उपग्रह चैनलों के कार्यक्रम देखने से नागरिकों तथा छात्रों का नई–नई जानकारियाँ प्राप्त होती है।
2. उपग्रह चैनलों के कार्यक्रम देखने से नागरिकों तथा छात्रों को नवीन तकनीकियों की जानकारी होती है।
3. उपग्रह चैनलों के कार्यक्रमों को देखने से छात्रों की बुद्धि का विकास होता है।
4. उपग्रह चैनलों के कार्यक्रमों को देखने से छात्रों को देश तथा विदेशों की संस्कृति, रीति–रिवाज और परम्पराओं की जानकारी मिलती है।
5. उपग्रह चैनलों के कार्यक्रमों को देखने से छात्रों में सामाजिक–भावानात्मक एकता का विकास होता है।

भावी शोध हेतु सुझाव :

प्रस्तुत अध्ययन में अनुसंधानकर्ती ने उपग्रह चैनलों द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों के प्रति शहरी तथा ग्रामीण नागरिकों के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया है। इस विषय पर निम्न बिन्दुओं के आधार पर अग्रिम अध्ययन किया जा सकता है।

1. उपग्रह चैनलों के कार्यक्रमों के प्रति नागरिकों तथा विद्यार्थियों के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन।
2. उपग्रह चैनलों के कार्यक्रमों के प्रति हिन्दी और अंग्रेजी माध्यम के छात्रों विद्यार्थियों के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन।
3. उपग्रह चैनलों के कार्यक्रमों के प्रति शिक्षकों और विद्यार्थियों के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन।
4. उपग्रह चैनलों के कार्यक्रमों के प्रति शहरी तथा ग्रामीण विद्यार्थियों के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन।
5. उपग्रह चैनलों के कार्यक्रमों के प्रति शिक्षकों और नागरिकों के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

सन्दर्भ :

1. गुप्ता एस. पी. सांख्यिकीय विधियां संस्करण–2002 शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
2. पत्र एवं पत्रिकायें इण्डिया टुडे, दैनिक जागरण, टी0वी0, अमर उजाला आदि।
3. बुच्छ एम. वी. 'फिफ्थ सर्वे आफ एजूकेशनल रिसर्च'।
4. भटनागर और भटनागर शिक्षा अनुसंधान लायल बुक डिपो कालेज रोड, मेरठ। (प्रथम संस्करण)
5. रत्तू के0 के सूचना तंत्र एंव प्रसारण माध्यम।
6. राय पारसनाथ 'अनुसंधान परिचय', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल अस्पताल मार्ग, आगरा। (संस्करण–2004)
7. शुक्ला एस.एम. 'सांख्यिकीय के सिद्धान्त' संस्करण 1990 साहित्य भवन, आगरा।
8. सुखिया ए0पी0 एण्ड मेहरोत्रा शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, संस्करण 1990

***

हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में शिल्प विधान

डॉ. श्यामजी सोनकर *

व्यक्ति अपनी अनुभूति को जिस पद्धति से व्यक्त करता है उसे शिल्प कहा जाता है। रचनाकार की अमूर्त अनुभूतियाँ शिल्प के कारण ही मूर्तरूप धारण करती है। डॉ0 कैलाश बाजपेयी के अनुसार – ''शिल्प विधि रचना की उन प्रमुखताओं का लेखा–जोखा है, जिनके आधार पर रचना मूर्त हो सकी है अथवा विशिष्ट भंगिमा के साथ लेखनी द्वारा अवतरित हुई है।''[1] अपनी अमूर्त अनुभूति को मूर्त करने की पद्धति ही शिल्प है। मधु संधु के अनुसार – ''सार्थक अभिव्यक्ति का कलात्मक मोड़ ही शिल्प कहलाता है।[2] शिल्प का अर्थ ढंग, विधान अथवा तरीका भी होता है। हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार–''शैली अनुभूति विषयवस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है, जो उस विषयवस्तु की अभिव्यक्ति को सुंदर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं।''[3] कुछ विद्वानों ने शिल्प को शैली से अधिक व्यापक अर्थ में ग्रहण करते हुए उसे वस्तु की अंतः संरचना का अनिवार्य प्रतिफलन माना है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि रचना के सृजन में शिल्प का अपना विशेष महत्व होता है।

कहानियों की भाषा–

जिस माध्यम से मनुष्य अपने भावों और विचारों को व्यक्त करता है उसे भाषा कहते हैं। 'भाषा' शब्द संस्कृत की 'भाष' धातु से बना है, जिसका अर्थ है– बोलना या कहना।[4] मनुष्य भाषा के द्वारा ही अपने भावों और विचारों को व्यक्त करता है। डॉ0 अंबादास देशमुख के अनुसार–''मनुष्य अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए वाणी द्वारा जिन ध्वनि संकेतों का प्रयोग करता है, उसे भाषा कहते हैं।''[5] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भाषा मनुष्य के परस्पर विचार–विनिमय का साधन है। इसके साथ ही भाषा मनुष्य के चिंतन का भी साधन है। हिन्दी साहित्य कोष के अनुसार–''यदि वैज्ञानिक और सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो भाषा मनुष्य के विचार–विनिमय का ही साधन नहीं है, विचार का भी साधन है।''[6] डॉ0 सुरेन्द्र उपाध्याय के अनुसार–''आज की कहानी में भाषा का एक और आयाम है जिसे घरेलू परिवेश और संबंधों के आत्मीय स्वरूप को चित्रित करने में अत्यंत सफलता मिली है। उसका साक्षात्कार कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, ऊषा प्रियंवदा, अन्विता अग्रवाल, शांता सिन्हा, सांत्वना निगम, दीप्ति खंडेलवाल, मृदुला गर्ग, सूर्य बाला और सोमवीरा की अनेक कहानियों में विवीक्षित किया जा सकता है।''[7] इससे यह स्पष्ट है कि कथ्य की आंतरिक मांग के अनुसार भाषा में परिवर्तन हो रहा है।

---

* एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी), राजकीय महाविद्यालय, सैदाबाद, प्रयागराज

इस काल की लगभग सभी लेखिकाओं ने सरल और सहज भाषा को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है, लेकिन आवश्यकतानुसार सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग भी किया है, जैसे–तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी।

तत्सम शब्द–

जो शब्द संस्कृत के समान है उन्हें तत्सम शब्द कहा जाता है। अंकुश, अग्रभाग, अग्नि, अभिभावक, अभिनेता, आग्रह, उत्कट, क्रूर, कृत्य, क्षेत्र, जिज्ञासा, ज्वाला, चक्रवात, नगण्य, निर्जन, नीरवता, पटाक्षेप, प्रतिशोध, प्रहार, विद्रूप, समर्पण, स्फटिक, स्वामी आदि। शब्द प्रयोगों के साथ ही कुछ कहानियों के शीर्षक भी तत्सम शब्द रूप में आये हैं। क्षमा, स्वयंवर, स्त्री–सुबोधिनी, स्नेह–बंध, त्रिशंकु, त्रुटि का निवारण वितृष्णा, दिशाहीन, गीत का चुंबन, प्रतिशोध, पितृदाय आदि। इस प्रकार के शब्द प्रयोग के कारण भाषा अधिक सक्षम और प्रेषणीय बनी है।

तद्भव शब्द–

तद्भव शब्द संस्कृत से उत्पन्न शब्द है। लेखिकाओं ने अनेक तद्भव शब्दों का प्रयोग भी किया है, जैसे–आशिरवाद, किरपा, करम, कान्हा, अच्छर, धाम, धरम, दरपन, दरसन, जनक, परेम, परलय, परमारथ, परीच्छा, मारग, सनेह, समुंदर, आधा, काल, खेत, अचरज, जीभ, उजला, काठ, आग, घी, काम, धाम, मोर, हाथ आदि। तद्भव शब्दों के प्रयोग से भाषा में सहजता आई है और भाषा दैनिक जीवन का अंग बनकर उभरी है।

देशज शब्द–

जिन शब्दों का स्रोत पता न हो तथा जो समाज द्वारा समय–समय पर सहज भाव से गढ़े हों वे सभी देशज हैं। अनेक देशज शब्दों का प्रयोग कहानियों में हुआ है, जैसे–धंधा, बादल, बासन, चुटकी, बेटा, नाना, नानी, छाछ, घमंड, उतावला, छरहरा, टालना, ढूंढ़ना, झकझोरना, झिझकना, भटकना, हिनहिनाना, घोंषला, रूई, बैंगन, लड्डू, सकपकाना, आदि। देशी शब्दों के प्रयोग के कारण वातावरण के निर्माण में सहायता मिली है और भाषा स्थानिक संस्कृति से जुड़कर अधिक समृद्ध हुई है।

विदेशी शब्द–

अन्य भाषाओं से आये शब्द विदेश शब्द कहलाते हैं। डा0 भोलानाथ तिवारी के अनुसार–''जो शब्द किसी अन्य भाषा से (देशी या विदेशी) आया हो अर्थात 'भाषा विशिष्ट के क्षेत्र के बाहर का हो, उसे विदेशी कहते हैं। इन्हें विजातीय, आगत या ग्रहीत शब्द भी कहा जाता है।''[8] साठोत्तरी काल लेखिकाओं ने भाषा में सहजता लाने के लिए अनेक विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है।

अंग्रेजी शब्द–

साठोत्तरी कहानी के अधिकांश पात्र शिक्षित मध्यवर्गीय तथा शहरी हैं, उनकी भाषा में अंग्रेजी या अंग्रेजी भाषा का प्रयोग दिखाई देता है। अभिजात्य पात्रों द्वारा निजी परिवेश को वाणी देने के लिए तथा पात्रों की मानसिकता आंतरिकता व्यक्त करने के लिए अंग्रेजी का प्रयोग बहुत किया गया है जैसे–अफेयर, इंटरव्यू, कॅनवस, बेल्ट, बिल्डर, डोजर, ड्रामा, पिक्चर, फिल्म, प्रपोज, टाईप, स्पीड, नोट्स, सोसायटी, यूनियन, जेनरेटर, टॉपर, फुटपाथ, कमिटमेंट, रिमार्क, स्मार्ट, एप्रन, इंजेक्शन, ड्यूटी, यूनीफार्म, डिनरसेट, कामनरूम, थर्मस, ब्रेकर, प्रिंसिपल, डेस्क, टीचर, बायकॉट, फिलोसफी, फिजीकल, मेंटल, स्टेटस, ऑफिस, बॉय–फ्रेंड, गुड, न्यूज।

फारसी शब्द–

साहित्य सृजन में अंग्रेजी शब्दों के साथ–साथ फारसी शब्दों का प्रयोग हुआ है जैसे–आसमान, खिलाफ, चेहरा, चश्मे, दर्द, दस्तखत, दरम्यान, दीवान, नमकीन, नजाकत, नादान, बीमार, बर्फ, बिस्तर, भात, रंजिश, शहर, शादी, शीरा, शीशा, शहनाई, रेगिस्तान, हफ्ता, पेषानी, नालिश आदि कई कहानियों का शीर्षक फारसी शब्द रूप आये हैं जैसे–एक और सैलाब, चश्मे, दरम्यान, सजा, रेगिस्तान आदि।

अरबी शब्द–

कहानियों की भाषा सहज बनाने के लिए अरबी के शब्दों का प्रयोग किया गया है, जैसे – औरत, आदतन, ओहदा, कतार, ऐब, ऐयाष, अखबार, ऐलान, करामत, कसाई, मर्ज, मुस्तैदी, लिहाफ, नशा, फैसला, रिजक, जुंबिश, सिलसिला, शख्त, रियासत, हवस, हाकिम, हिमायत, तालीम, तमीज, दिक्कत आदि जैसे अरबी शब्दों का प्रयोग भी कहानियों की भाषा को सहज बनाते हैं।

मराठी–

साहित्य में परिवेशगत विशेषताओं को व्यक्त करने के लिए मराठी, पंजाबी शब्दों का प्रयोग हुआ है, जैसे– गोटी, नक्की, देवा, भांडण, खोली, पगार, पोरगी, झाड़, रोप, पावली, धरधूसरा, मउसी आदि। मराठी शब्दों के साथ मराठी वाक्यों का भी प्रयोग हुआ है –

''जाऊन मर तिकड़े ! हलकट कुठला।''[9]

''तिकड़े बसली हाय, कायझाला, ममी आली तुझी।''[10]

–विसरलास–पन जाती मैं–आयकयास–पावली का दूध ले आ–''[11]

सुधा अरोड़ा और चित्रा मुद्गल ने अपनी कहानियों में मराठी का प्रयोग किया है।

पंजाबी–

कुछ पंजाबी शब्दों का प्रयोग भी किया गया है, जैसे– कुड़ी, मुंडा, मुंडी, चंगा, मत्था, टेकना, वैण, न्याणे। कई स्थलों पर गीतों का प्रयोग भी किया गया है।

''रूण्डा मनायी ना सूतड़ा जगायी ना,
ले सर्व सुहागन करवरा, ले बीरा–प्यारी करवरा। [12]

''छज्ज परिया होइया लीरा दा, ओय तेरी वे जुदाई विच साडा हाल फकीरां दा–''[13]

मुहावरे और कहावतें–

प्राचीन काल से ही भाषा को सरल और सुंदर बनाने के लिए मुहावरे और कहावतों का प्रयोग किया गया है। इस काल की लेखिकाओं ने अपनी भाषा को सुंदर और प्रभावशाली बनाने के लिए अनेक मुहावरों का प्रयोग किया है, जैसे –आग में घी पड़ना, कलेजा कोयला होना, बेड़ा पार होना, कुंडली मार कर बैठना, कलेजे पर मूंग दलना, लकीर का फकीर, कोल्हू में जोता बैल, जान में जान आना, साँप सूंघना, आँख का तारा, दिमाग पटरी से उतारना, कागज के कीड़े, मन मारना, नमक छिड़कना, लार टपकाना, गांठ बाँधना, घिग्घी बँधना, पल्लू से बांधना, टांग अड़ाना, नाक में दम करना, पीछा छुड़ाना, गर्दन फंसना, खून खौलना।

लेखिकाओं ने कहावतों का प्रयोग करके अपनी भाषा को अधिक सुंदर और प्रभावशाली बनाया है, जैसे–बंदर के गले में मोतियों की माला, सोने के अंडे देने वाली, बिन बादल बिजली गिरना, घूरे पर खिला गुलाब, तू डाल–डाल मैं पात–पात, मरता क्या नहीं करता, खुशियों के गुलगुले पकाना, दूध का जला छाछ भी फूँककर पीता है, चोली–दामन का साथ, चोर–चोर मैसेरे भाई, माँ मरे मौजी जिए, ढाक के तीन पात आदि।

अलंकार–

कथन को अधिक प्रभावी बनाने के लिए अलंकारों का प्रयोग किया जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अलंकारों के प्रयोग को भावोत्कर्ष का साधन माना है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिसके द्वारा अभिव्यक्ति को अलंकृत किया जाता है वह अलंकार है। महिला कथाकारों ने अपनी अभिव्यक्ति को भाषा–भिव्यंजक और प्रभावशाली बनाने के लिए अलंकारों का प्रयोग व्यापक रूप से किया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, भ्रांतिमान, मानवीकरण आदि अलंकारों का प्रयोग अधिक मात्रा में किया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है–पकौड़े सी नाक, बर्फी–सी मीठी, अंडे की तरह सफेद रंग, कल्पना सा शिशु, एहसास की छोटी सी पिन, लचीली गुंथे आटे–सा मन, हल्की सी खुशी, अनाम सही बेचैनी, उड़ती सी नजर,

''सरि, ऐसा झुका हुआ जैसे इनके कुपुत्र के बोझ से हवेली की नीवें लड़खड़ाने लगेगी।[14]

''गली के कुत्ते–सा इधर–उधर मंडराता ध्यान''[15]

''पनचक्की की तरह धक–धक करने लगा लल्लन का कलेजा''[16]
''धरती फटे पॉव की बिवाई–सी तड़क गई थी''[17]
''लड़की की जात–गंदे कपड़े की गठरी''[18]

संदर्भ :

1. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प : कैलाश बाजपेयी, पृ0 19
2. साठोत्तरी महिला कहानीकार : डॉ0 मधु संधु, पृ0 152
3. हिन्दी साहित्य कोश : पृ0 837
4. भाषा विज्ञान : डॉ0 भोलानाथ तिवारी, पृ0 32
5. भाषिक हिन्दी भाषा तथा भाषा शिक्षण : डॉ0 अंबादास देशमुख, पृ0 217
6. हिन्दी साहित्य कोष : पृ0 600
7. कहानी : प्रवृत्ति और विश्लेषण : डॉ0 सुरेन्द्र उपाध्याय, पृ0 323
8. भाषा विज्ञान कोश : डॉ0 भोलानाथ तिवारी, पृ0 638
9. महानगर की मैथिली : सुधा अरोड़ा, पृष्ठ 108
10. महानगर की मैथिली : सुधा अरोड़ा, पृष्ठ 117
11. मामला आगे बढ़ेगा अभी : चित्रा मुद्गल, पृ0 84
12. सफेद कौवा : मंजुल भगत, पृ0 52
13. ओ सोनकिसरी : चन्द्रकान्ता, पृ0 60
14. यात्रा मुक्त : राजी सेठ, पृ0 35
15. दूसरे देशकाल में : राजी सेठ, पृ0 13
16. ललमनियॉ : मैत्रेयी पुष्पा, पृ0 80
17. शोषित और अन्य कहानियॉ : ऊषा महाजन, पृ0 104
18. सोने का बेसर : मेहरून्निसा परवेज, पृ0 16

***

फिल्म संगीत में प्रयुक्त लोकगीतों एवं धुनों पर आधारित रचनायें : वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

श्यामा कुमारी *

फिल्म तथा संगीत का परस्पर सम्बन्ध बहुत ही गहन है। संगीत विहीन फिल्म की कल्पना करना भी आज के समय में असंभव है। वस्तुतः संगीत फिल्म की आत्मा है तथा संगीत के बिना फिल्म निष्प्राण हो जाती है। हम यह भी कह सकते हैं कि यदि किसी फिल्म का संगीत अच्छा न हो तो वह फिल्म सफलता को प्राप्त नहीं कर पाता। सिनेमा भारतीय समाज के लिए मनोरंजन और ज्ञान से भरी एक महत्वपूर्ण देन है। आज सिनेमा एक ऐसा माध्यम है, जिसकी ओर प्रत्येक व्यक्ति आकर्षित होता है। 4 मई सन् 1931 में सर्वप्रथम सवाक् सिनेमा थी जिसमें संगीत का भी प्रयोग किया गया तथा 3 गीतों को इसमें भी सम्मिलित किया गया था। परन्तु धीरे–धीरे सिने–संगीत ने इतना उत्कृष्ट रूप धारण कर लिया कि संगीत के बिना सिनेमा की कल्पना करना आज भी असंभव सा प्रतीत होने लगा है। फिल्म संगीत में शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, ठुमरी, दादरा, टप्पा, चैती, कजरी आदि सभी सांगीतिक विधाओं का उपयोग बहुत ही परिष्कृत रूप में किया जाने लगा। विभिन्न भाषाओं में फिल्म बनने लगीं और विभिन्न भाषाओं में गीतों की रचना गीतकारों और संगीतकारों द्वारा होने लगी। हिन्दी सिनेमा में भी हम विभिन्न भाषाओं अथवा लोकभाषाओं पर आधारित गीतों को आसानी से देख सकते हैं। लोक संगीत पर आधारित गीतों का प्रयोग होने से फिल्मों की लोकप्रियता और अधिक बढ़ी और आम जनता के मध्य अपनी अमिट छाप छोड़ने में सफल हुयी।

भारतीय हिन्दी फिल्म संगीत पर लोकगीतों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। यह प्रभाव आरम्भिक दौर के हिन्दी फिल्मों से लेकर आज तक के फिल्मों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। लोक तत्व जनमानस की गहराई में चेतन, अचेतन, अवचेतन रूप में बसा हुआ है, इससे लोग भले ही अनभिज्ञ रहें, मगर स्मरण में लोगों के सोये हुये राग–विराग गहनतम भावों से जुड़कर उन्हें जगा देता है। भारतीय संस्कृति को सबसे जीवन्त, व्यापक एवं सजीव अभिव्यक्ति भारतीय सिनेमा से होती है। किसी भी संस्कृति की जड़ें और जीवन्तता जीवन से जुड़ी होती हैं और इसी जीवन की सबसे सहज अभिव्यक्ति हमें हमेशा लोक–साहित्य और लोक संगीत से मिलती है। अगर हम हिन्दी सिनेमा के इतिहास पर दृष्टि डालें तो हमें प्राप्त होता है कि पाश्चात्य संगीत के सम्पर्क में आने के साथ–साथ संगीत निर्देशकों ने

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

लोक संगीत के साथ बहुत से नवीन प्रयोग किये तथा लोक धुनों को टटोल कर उनका सिनेमा में प्रयोग करने लगे। सर्वप्रथम संगीत निर्देशक रामचन्द्र बोराल ने भारतीय चलचित्रों में वृन्दावन का प्रयोग किया। इस प्रकार सर्वप्रथम आर्केस्ट्रा का प्रयोग 'पूरन भक्त 1935' में किया गया। इस फिल्म के बाद अन्य संगीतकार जेसे आर0सी0 बोराल, तिमिर बरन और पंकज मलिक इस शैली के मुख्य निर्देशक बन गये। इयी समय झूमर, भटियाली और बंगाली लोकगीतों के प्रकारों को भी हिन्दी फिल्म जगत में लाया गया।

साठ के दशक में श्री एस0डी0 बर्मन साहब का आगमन भारतीय सिनेमा में हुआ और उन्होंने बंगाल की पारम्परिक लोकगीतों की धुनों को फिल्म संगीत में बखूबी प्रयोग किया। एस0डी0 बर्मन को अपने बाल्यकाल से ही बंगाल के भक्ति कीर्तन और भटियाली लोक धुनों एवम् बाउल संगीत के प्रति आकर्षण था जो बाद में उनके संगीत का मुख्य भाग बनकर प्रकट हुआ। जैसे–'आन मिलो आन मिलो घनश्याम (प्यासा), आज सजन मोहे अंग (गाइड), जैसी फिल्मों में स्पष्ट रूप से दिखता है। श्री शान्ताराम ने 'अमर ज्योति, गोपाल कृष्ण आदि फिल्मों में महाराष्ट्र की संगीत शैली का परिचय सिनेमा संगीत से करवाया परन्तु यह शैली कठिन होने के कारण तथा आम जनता द्वारा सरलता से नकल न हो पाने के कारण चल नहीं पाया और लुप्त हो गयी।

फिल्मी संगीत में लोक गीतों की विशिष्टता लेकर, आने वाले एक और महान संगीत हैं–नौशाद। नौशाद साहब ने उत्तर प्रदेश क मैरिस कॉलेज ऑफ हिन्दुस्तान म्यूज़िक से संगीत की पारम्परिक शिक्षा ली तथा विभिन्न स्थानों जैसे जयपुर, बरेली, गुजरात आदि का भ्रमण किया जिससे वे शास्त्रीय संगीत तथा उनके परस्पर उचित संवाद से भारतीय सिनेमा को एक नई उपलब्धि प्रदान की। उनके द्वारा रचित संगीत में शास्त्रीयता तथा लोक लयों का मुख्य स्थान बन गया। फिल्म 'बैजू बावरा' में दिये गये संगीत द्वारा उनकी प्रतिभा सबसे अधिक उभर का आयी इस फिल्म के पश्चात् शास्त्रीयता तथा लोक–धुन उनके गीतों का प्रमुख हस्ताक्षर बन गये। उनके द्वारा तमाम हिट संगीत जैसे–मदर इण्डिया (1957), सोहनी महिवाल (1958) और गंगा जमुना (1961) जैसी फिल्मों में दिया गया जिन्होंने सफलता के शिखर को स्पर्श किया। फिल्म संगीत में बांसुरी, क्लैरोनेट, सितार तथा मेण्डोलिन का संयुक्त प्रयोग किया। बांसुरी जैसे वाद्य के प्रयोग से लोकगीत सुनने वाले की आत्मा तक जा पहुँचता है और उन्हें झूमने पर विवश कर देता है।

इसी प्रकार श्री गुलाम हैदर ने पंजाब शैली को ढोलक के साथ हिन्दी सिनेमा में प्रयोग किया, इनके गीतों की धुनें सरल और मधुर होते हुये भी विशेष प्रकार की सजीवता और अल्हड़पन रखती थी जो कि ताल द्वारा दर्शाया गया। ओ0पी0 नैय्यर का नाम भी हिन्दी सिनेमा के उच्च संगीतकारों की श्रेणी में माना जाता है। उनका संगीत मुख्य रूप से पंजाब के लोकगीतों

व लयों पर आधारित होकर सामने आता था। ओ0पी0 नैय्यर के अति ही भारतीय फिल्म संगीत में पंजाबी लोक–संगीत का बिल्कुल नया दौर शुरू हुआ, जिसकी नींव मास्टर गुलाम हैदर ने रखी। जिस पंजाबी बीट व फोक को नैय्यर ने अपने संगीत का प्रमुख घटक बनाया, उसका सर्वप्रथम उपयोग दल सुख पंचोली की फिल्म 'खजांची' में गुलाम हैदर ही लेकर आये थे।

लोकगीतों में सरह और सरस स्त्री–पुरूष सम्बन्ध, पिया के साथ छेड़–छाड़, तकरार, मन–मनुहार आदि का वर्णन बहुत आनन्ददायी तरीके से होता है, जो मन को हर्षाता और गुदगुदाता है। इन भावों को अपने गीतों में संजोकर हमारे भारतीय सिनेमा में प्रस्तुत करना हमारे संगीतकारों और गीत निर्देशकों का कार्य रहा है। जैसे–मधुमती फिल्म (1958) में बनी जिसमें दैया रे देया चढ़ गयो पापी बिछुआ, पाकीज़ा (1958) का ठाढ़े रहितयो, ओ बाँके यार रे तथा गंगा जमुना (1961) में प्रयोग किया गया 'नैन लड़ जहिहें' ये सभी गीत लोक धुनों को ध्यान में रखकर बनाए गये हैं।

भारतीय सिनेमा में ऐसी अनेक फिल्में बनीं जो कि लोकगीतों एवं लोक धुनों पर आधारित थीं। चित्रपट संगीत ने लोकगीतों का आधार लेकर बहुत उन्नति की तथा उनके द्वारा आम जनता के मन में अपना स्थान बना सकी। लोक गीतों में साहित्य का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रहता है। साहित्यिक भाषाओं पर आधारित अनेक रचनायें चित्रपट संगीत में देखी जा सकती हैं। कई गीतों को उसके रूप में बिना बदलाव के भी लोक प्रयोग किया गया है तो कई गीतों को बदल कर भी प्रस्तुत किया गया है।

उत्तर प्रदेश की भाषा भोजपुरी के लोकगीतों पर चित्रपट संगीत में बहुत से उच्च श्रेणी के कलाकारों ने गीतों को गाया, जिन्हें सुनकर मन में उत्साह, उमंग, छेड़छाड़ चंचलता के भावों की अभिव्यक्ति स्वयं ही हो जाती है, जैसे–

1. **पिपरा के पतवा सरीखे डोले मनवा,**
   कि हियरा में उठत हिलोर

यह गीत 'गोदान' फिल्म जो कि 1963 में बनाई गई का गीत है जिसे मो0 रफी द्वारा बहुत ही सुन्दर रूप में गाया गया। इस फिल्म का संगीत रविशंकर जी द्वारा दिया गया।

2. **बिरज में होली खेलत नंदलाल (मो0 रफी)**
3. **चली आज मोरी पिया की नगरिया (लता)**

ये सभी गीत भोजपुरी लोक धुनों पर आधारित हैं इसी प्रकार फिल्म तीसरी कसम में (1966) –

1. **पान खाये सईयाँ हमार (आशा)**
2. **चलत मुसाफिर मोह लियो रे (मन्ना डे–साथी)**

इसी प्रकार बंगाल लोक धुनों पर आधारित गीत –

1. पूरन भगत (1933) – जाओ जाओ ए मेरे साथी, रहो गुरु के संग
2. सुजाता (1959) – सुन मेरे बन्धु रे, सुन मेरे मितवा

3. बन्दिनी (1963) – मेरे साजन हैं इस पार, मैं मन मार हूँ उस पार

यह तीनों गीत इन फिल्मों में बंगाल की लोकधुनों पर आधारित थे। पूरन भगत फिल्म का संगीत निर्देशन गायन पंकज मल्लिक द्वारा किया गया तथा सुजाता एवं बन्दिनी का गीत–निर्देशन व गायन एस0डी0 बर्मन द्वारा किया गया।

राजस्थानी लोक धुनें :–

1. लम्हे (1991) – मोरनी बागां मा बोले आधी रात मां (लता)
2. लेकिन (1991) – यारा सिली सिली बिरहा की (लता)

इन फिल्म में संगीत शिव–हरि तथा हृदय नाथ मंगेशकर द्वारा दिया गया तथा गीत लता मंगेशकर द्वारा गाया गया जो कि आज तक सभी के होठों पर गुनगुनाया जाता है।

आसाम की लोक धुनें :–

रूदाली (1993) – दिल हुम हुम करे (लता)

यही लता मंगेशकर द्वारा गाया गया तथा इसका संगीत भुपेन हज़ारिका द्वारा दिया गया था।

गढ़वाली (कुमाऊँ) की लोक धुन :–

मधुमती – ओ दइया रे दइया रे चढ़ गयो पापी बिछुआ (लता, रानाडे)

यह गीत लता मंगेशकर, मन्नाडे तथा सखियों द्वारा गाया गया। जिसका संगीत सलील चौधरी जी द्वारा दिया गया। इस गीत में गढ़वाल की लोक धुन का स्पष्ट रूप में आभास किया जा सकता है।

पंजाब की लोक धुनें :–

प्रतिज्ञा – उठ जाग नींद से मिरजया (रफ़ी, लता)

मेजर साहब – इक पंजाबन दिल चुराके लै गई (जसपिन्दर नरूला–अमिताभ)

दाग – अब चाहे मा रूठे या बाबा

यही तीनों फिल्मों पंजाब के लोक संगीत से प्रभावित गीतें लेकर आयी, फिल्म प्रतिज्ञा के संगीतकार लक्ष्मीकांत प्यारेलाल जी, मेजर साहब का संगीत श्री आदेश श्रीवास्तव द्वारा तथा दाग का संगीत श्री लक्ष्मी कांत प्यारेलाल द्वारा दिया गया।

महाराष्ट्र की लोक धुनें :–

मेरा साया – झुमका गिरा रे (लावणी) (आशा)

हम आपके हैं कौन – लो चली मैं (लता)

इन दोनों गीतों में महाराष्ट्र को लोक संगीत का भाग लावणी को आधार मानकर संगीतकार मदनमोहन तथा संगीत निर्देशक–राम लक्ष्मण द्वारा रचना की गयी।

गुजरात की लोक धुनें –

सुहाग – हे नाम रे सबसे बड़ा (रफ़ी/लता)

सुहाग फिल्म से इस गीत का संगीत श्री लक्ष्मीकान्त प्यारे लाल जी द्वारा दिया गया, जिसमें गुजरात के लोक संगीत गरबा की छवि स्पष्ट रूप से दिखती है।

इस प्रकार चित्रपट संगीत में प्रथम संगीत आधारित फिल्म से लेकर आज 20वीं शताब्दी तक की फिल्मों का अध्ययन करने पर लोक संगीत की देन का ज्ञान हमें बहुत ही सहजता से प्राप्त हो जाता है तथा लोक धुन और संगीत की धरोहर के बिना हमारा संगीत अधूरा है यह भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। हमारी भारतीय हिन्दी सिनेमा का आगमन 1890 में हो चुका था तथा आज 2019 तक अनेक ऐसी फिल्में बनीं जो कि लोकगीत, लोकधुन तथा लोकनृत्यों पर आधारित थीं। लोक संगीत लोगों से जुड़ा होता है जो कि सबके हृदय में आसानी से स्थान बना लेता है। दशक तथा 20, 21 के दशक की फिल्मों में भी आसानी से लोक संगीत दृष्टिगोचर होता है। जैसे :–

फिल्म	**गायक**	**लोकगीत रचना पर आधारित गीत**
पिंजर	वडाली ब्रदर्स	सूफी
तनु वेड्स मनु (2016)	वडाली ब्रदर्स	ए रंगरेज (पंजाबी सूफी तथा लोकधुन)
काई पो चे		हे शुभारंग (गुजराती लोक)
रामलीला		नगाड़ा संग ढोल
पद्मावत		होली आयी रे (राजस्थानी,)
बाजीराव मस्तानी		पिंगा, दीवानी मस्तानी (लावणी)
गैंग्स ऑफ वासेपुर		तार बिजली से (शादी के लोकगीत)
इंग्लिश विंग्लिश		नवराई मांझी–महाराष्ट्र लोक धुन
बैंडिट क्वीन		छोटी सी उमर (राजस्थानी)
खूबसूरत		इंजन की सीटी (राजस्थानी)
हैप्पी एण्डिंग		खम्मा गड़ी (राजस्थानी)
कॉकटेल		जुग्नी (पंजाबी लोकधुन)
लम्हे		मोरनी बागा मा (राजस्थानी)
हम दिल दे चुके		राजस्थानी लोक संगीत

सनम		
मिशन कश्मीर		भूमरो भूमरो (कश्मीरी)
पीके		ठरकी छोकरो (राजस्थानी)
पारचर्ड		माई री माई (अवधी)
मुक्काबाज,खूश्बू राज		साढ़े तीन बजे (भोजपुरी)
हीर रांझा		नाचे अंग वे (पंजाबी)

सन्दर्भ :

1. विकिपीडिया से प्राप्त स्रोत
2. गूगल बुक्स–आकाशवाणी, Vol. XXV No. 18, 1 May 1960
3. द गेटेस्ट एरा ऑफ हिन्दी फिल्म सिनेमा एण्ड म्यूजिक–2011, यू–ट्यूब
4. दताराम रिमिन्से डाक्यूमेन्ट्री–2010, यू–ट्यूब
5. History of Indian Cinema Documentary by -Abhishek Mohanty, 2020, youtube.

***

भारत में वृद्धावस्था की चुनौतियाँ तथा समाधान

*डॉ. कौलेश्वर **
*डॉ. संतन कुमार राम ***

भारत की बढ़ती हुई युवा आबादी भारत को कितनी जल्दी विश्व का आर्थिक अगुआ बना देगी या रोजगार के अवसर नहीं होने के कारण वही युवा आबादी अर्थव्यवस्था पर कितना बोझ बन सकती है इस बात पर बहस चल रही है। भारत के जनांकिकीय लाभांश की बहुत चर्चा हो रही है- 15 वर्ष आयु के कम बच्चे ,वृद्ध, दिव्यांग ,हाशिए पर पड़े समूह ,असंगठित श्रमिक इत्यादि पर आय का एक बड़ा हिस्सा खर्च हो रहा है।लोकतांत्रिक सरकार का यह दर्शन सर्वविदित है कि , वह अपनी जनता की समस्याओं की अनदेखी नहीं कर सकती। अपने कमजोर वर्गों की समस्याओं का समाधान करना किसी भी देश की सरकार का कर्तव्य है । इसलिए सुशासन में सामाजिक सुरक्षा आवश्यक तत्व है । अमेरिकी राष्ट्रपति जॉन एफ कैनेडी ने कहा था " यदि कोई स्वतंत्र समाज ढेर सारे गरीबों की मदद नहीं कर सकता वह गिने-चुने अमीरों को भी नहीं बचा पाएगा " गरीबों के तथा गरीबों के लिए शासन में विश्वास रखने वाले सरकार को संवेदनशील वर्गों की सामाजिक सुरक्षा के लिए नीतियां और कार्यक्रम तैयार करने और उन्हें अमल में लाने के अनेक उपाय बनाने होते हैं।

आजादी के समय भारत में औसत आयु 32 वर्ष के लगभग थी और 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की औसत आयु 67 वर्ष तक पहुंच गई है पिछले 70 सालों में भारत में खाद्य सुरक्षा अर्थव्यवस्था चिकित्सा इत्यादि के क्षेत्र में उल्लेखनीय उन्नति की है, जिसका यह सकारात्मक परिणाम हमारे समक्ष दिखाई पड़ता है । यद्यपि बढ़ती हुई इस विकराल जनसंख्या ने अनेक चुनौतियों को प्रस्तुत किया है तथापि इसी जनसंख्या ने विश्व में भारत के लिए अनेक आर्थिक अवसर भी उपलब्ध कराएं हैं। भारत में 60 साल से ज्यादा के 10.4 करोड़ लोगों के लिए भोजन ,आवास ,स्वास्थ्य सुविधाएं ,बीमा सामाजिक सुरक्षा आदि के मुद्दों की खातिर जूझने का दौर है। यह चुनौतियां ग्रामीण क्षेत्रों में स्वाभाविक रूप से ज्यादा बढ़ जाती हैं क्योंकि वहां अधोसंरचना एवं जागरूकता का स्तर निम्न है। भारत जैसे विकासशील देशों में बुजुर्गों से जुड़े मुद्दों की प्रकृति, गरीबी ,बेरोजगारी, पर्याप्त अवसर ना होने और बड़े स्तर पर अनौपचारिक कार्य क्षेत्र जैसे कारकों के कारण बहुत ज्यादा असमानता है।

1970 के दशक में बुजुर्गों की संख्या कुल जनसंख्या का 7% थी जो 2011 में बढ़कर 14% हो गई है अर्थात वह परिस्थिति जो यूरोपीय समाज में 100-120 वर्षों में पैदा हुई भारत में मात्र 35 सालों में ही उत्पन्न हो गई। इसका प्रमुख कारण स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार एवं मृत्यु दर में तेजी से कमी रहा है। 2026 ई. तक यह प्रतिशत और बढ़ेगा और लगभग 17.3 करोड़ बुजुर्ग भारत में निवास कर रहे होंगे जिसका बड़ा हिस्सा गरीब वंचित और महिला वर्ग से आएगा जिससे वित्तीय या मनोवैज्ञानिक सहायता की आवश्यकता होगी। वरिष्ठ नागरिकों को वाकिंग स्ट्रीट, कोहनी सहायक, वाकर , ट्राइपाड/ क्वापाड, श्रवणयंत्र ,व्हीलचेयर, कृत्रिम दांत व चश्मे की आवश्यकता पड़ेगी।

भारतीय पौराणिक ग्रंथों में एक कथा आती है एक राजा थे देहाती जिन्होंने अपने वृद्धावस्था में पुनः यौवन प्राप्त करने के लिए अपने पुत्रों से उनकी आयु मांग ली । कथाओं में तो संभव है पर

* एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय पथरदेवा, देवरिया, यू. पी
** असिस्टेन्ट प्रोफेसर, भूगोल, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर, यू. पी.

वास्तविक जीवन में वृद्धों को सुविधाएं तो मिल सकती हैं पर उन्हें यौवन प्राप्त नहीं हो सकता। भारत की गांव का देश है और हमारे बुजुर्ग आबादी भी ज्यादातर ग्रामीण क्षेत्रों में ही निवास करती है भारत के 71% बुजुर्ग ग्रामीण क्षेत्रों में और 29% बुजुर्ग शहरी क्षेत्रों में निवास करते हैं। विकट समस्या यह है पुरानी शराब उम्र बढ़ने के साथ-साथ महंगी होती जाती है परंतु आदमी की उत्पादकता और आर्थिक क्षमता दोनों ही घटती जाती है इसलिए सस्ता होता जाता है।दक्षिणी तमिलनाडु में एक प्रथा है तलाईकुत्तल जिसमें वृद्ध एवं अशक्त लोगों को उनके परिवार के सदस्य हैं, उन्हें ठंडे पानी से नहला कर उनकी हत्या कर देते हैं क्योंकि वह चल फिर पाने में असमर्थ होते हैं और उनका परिवार और ज्यादा खर्च वहन नहीं कर सकता। वर्तमान में इन हत्याओं के लिए एक प्रकार के अर्द्ध प्रशिक्षित डॉक्टरों का प्रयोग किया जाता है जिन्हें क्वैक कहा जाता है।

Case study 1.नाम शिवमूर्ति राजभर स्थान डिभवां थाना नगरा बलिया उम्र 71 साल पारिवारिक स्थिति विधवा आय का साधन कोई नहीं सामाजिक सुरक्षा पुत्र के साथ निर्वहन। तीन पुत्रों में सबसे छोटे पुत्र के साथ यह रह रहे हैं पुत्र कमाने के लिए हिमाचल प्रदेश गया हुआ है उसकी आए इतनी पर्याप्त नहीं है कि इनके मोतियाबिंद का ऑपरेशन करा सके और इनकी पैरालिसिस का नियमित दवा कर सकें।

Case studt No.2 नाम मुंद्रिका राम उम्र 65 साल सामाजिक स्थिति पेंशन भोगी वर्तमान में काश्तकारी एवं सक्रिय कृषक जीवन का निर्वहन पुत्र के साथ पैतृक आवास में रहते हैं.

Case study 3.गुलाब चंद कुशवाहा उम्र 77 साल, ग्राम- गहनी थाना रतनपुरा ,मऊ पेंशनभोगी चलने फिरने में असमर्थ पुत्र के साथ रहते हैं तथापि मनमुटाव के कारण अनेक बार इन्हें दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ता है रिटायरमेंट के बाद समस्त पूंजी एवं जमीन इकलौते पुत्र के नाम से ट्रांसफर कर चुके हैं।

Case students 4.नाम व का उल्लाह सिद्दीकी उम्र 74 साल पैसा रिटायर्ड पुलिसकर्मी ग्राम सरैया धानापुर थाना चंदौली एकमात्र पुत्र के साथ रहते हैं पुत्र काम करने के लिए खाड़ी के देश ओमान गया हुआ है बड़ा पुत्र चंद्रपुर में महाराष्ट्र में नौकरी करता है छोटी पुत्रवधू और पोती के साथ रहते हैं पुत्रवधू मात्र इंटर पास है पैसा होने के बावजूद अपनी याददाश्त को लेने के कारण संयमित व्यवहार नहीं कर पाते हैं कई बार भटक जाते हैं और पुत्रवधू के लिए इन्हें खोजना बेहद कठिन हो जाता है अनेक बार जब यह बीमार पड़ते हैं या इमेज कहीं चोट लग जाती है तो घर पर साधन होने के बावजूद इन हॉस्पिटल तक पहुंचाने में बहुत कठिनाई होती है क्योंकि गांव में स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध नहीं है और दूर ले जाने के लिए तत्काल कोई रिश्तेदार या मित्र उपलब्ध नहीं होता है

समस्याएँ:1. गांव में अभी भी संयुक्त परिवार बुजुर्गों की सुरक्षा का विश्वसनीय स्रोत है परंतु पेशेगत बदलावों, शहरीकरण, परिवारों के विखंडन, महिलाओं के कामकाजी होने और बच्चों के अपनी दुनिया में व्यस्त रहने के कारण यह रक्षा कवच टूट रहा है।

2. औसत रूप से गांव में पुरुषों की आयु 60 +17 एवं महिलाओं की आयु 60 प्लस 19 तक पहुंच गई है परंतु अभी भी ज्यादातर लोग इसके लिए तैयार नहीं होते हैं क्योंकि पहले 30 35 साल की उम्र मैं ज्यादातर गरीब जनसंख्या मर जाते थे अर्थात वह काम करने की उम्र में ही चल बसते थे तो उन्हें ओल्ड इस प्लानिंग की जरूरत ही नहीं पड़ती थी परंतु आप सुधीर वृद्ध जीवन के लिए इस प्रकार की कोई भी तैयारी को पहले से नहीं कर पा रहे हैं।

3. तेजी से परिवर्तित हो रही अर्थव्यवस्था ने ग्रामीण जीवन में उथल-पुथल मचा दी है अब सुनिश्चित आए को प्राप्त करने के लिए तथा अपने जीवन स्तर को ऊंचा बनाए रखने के लिए ग्रामीण युवा लगातार रोजगार की तलाश में शहरों की ओर भाग रहे हैं जिसके कारण उन्हें एक संयुक्त परिवार के रूप में रहने

का अवसर नहीं मिल रहा है जिसका नुकसान यह हो रहा है कि बुजुर्ग जनसंख्या सामाजिक रूप से और सुरक्षित होती जा रही है ज्यादातर गांव में खासकर उत्तर प्रदेश बिहार उत्तराखंड मध्यप्रदेश इत्यादि में गांव में सिर्फ वृद्ध महिलाएं और बच्चे ही जा रहे हैं बाकी सभी लोग काम करने के लिए बाहर क्यों निकल ले रहे हैं।

4. एक नई चुनौती इस समय अर्ध शहरी क्षेत्रों में या पहली पीढ़ी के नौकरी सुधा लोगों के बीच उत्पन्न हो रही है कि जिस समय उनके पिता 70 से 75 वर्ष की आयु में पहुंच रहे हैं आर्थिक रुप से अनुत्पादक हो जा रहे हैं उस समय खुद पुत्र की आयु भी 50 वर्ष के आसपास तक पहुंच जा रही है जिस कारण उसके अपने चुनौतियां हैं घर बनाने की बच्चों की शादी विवाह करने की उम्र सेटल कराने की खुद अपने बुढ़ापे की पेंशन की चिंता करने की उसके पास अपनी पुरानी पीढ़ी पर खर्च करने के लिए अवसर अत्यंत सीमित हैं

5. जिन लोगों ने अत्यधिक मोह में पड़कर अपने समस्त संपत्ति एवं पूंजी अपने किसी प्रियजन के नाम कर दी है सबसे बुरी दुर्ग ग्रामीण क्षेत्रों में उन्हीं लोगों की हुई है क्योंकि लोग के का कोई कारण ना होने के वजह से उनका मान-सम्मान एवं खातिरदारी अत्यंत निम्न स्तर की रह गई है।

6. परंपरागत सांस्कृतिक मूल्यों की वजह से भी वृद्ध जनसंख्या की असुरक्षा बड़ी है ग्रामीण क्षेत्रों में लोग अपनी पुत्री और दामाद को अपनाने या उनके यहां जाने की वजह इसी क्रम परिचित अपने खानदान के व्यक्ति को अपना वारिस चुनते हैं जो उनकी मजबूरी का फायदा उठाता है और बेटियों के साथ साथ उन्हें भी संपत्ति से बेदखल करता है।

7. नौकरी सुधा लोगों के पास एक सम्मानजनक पेंशन आए है परंतु असंगठित क्षेत्र में कार्य कर चुके लोगों या कृषकों के पास ऐसा कोई भी निश्चित आय का जरिया नहीं है जो पेंशन की राशि सरकार की तरफ से मिलती है वह अत्यंत ही कम है जिसमें गुजारा कर पाना आधुनिक समय में बहुत ही ज्यादा कठिन हो गया है सरकारें नई नियुक्तियों में भी पेंशन जैसी बुढ़ापे के सहारे को खत्म कर चुकी हैं यह विडंबना ही है मात्र शपथ भर ले लेने से सांसद और विधायक पेंशन के हकदार हो जाते हैं जबकि 30 से 35 साल तक काम करने वाले कर्मचारी अब पेंशन से मरहूम रहेंगे क्योंकि इससे सरकार के बजट पर रोज पड़ता है।

9. ग्रामीण क्षेत्रों में सामान्य से सुविधा अर्थात पेंशन आवास कल्याणकारी योजनाओं का लाभ लेने के लिए भी अत्यधिक बड़ी संख्या में कागजी कार्यवाही करानी पड़ रही है साथ ही इस प्रक्रिया को पूरा करने के लिए ब्लॉक मुख्यालयों और जिला मुख्यालयों तक की दूरी नापने पड़ती है जोकि वृद्धजनों के लिए खासकर निर्बल लोगों के लिए अत्यंत दुरूह कार्य है।

10. ग्रामीण क्षेत्रों में सर्वेक्षण के दौरान यह तथ्य प्रकाश में आया की महिलाओं की उत्तरजीविता पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा है इसका सीधा सा सामाजिक प्रभाव यह है की महिलाओं वृद्ध महिलाओं ज्यादातर वृद्धा विधवा हैं और पूरी तरह अपने अन्य संपत्तियों पर निर्भर हैं चौकी पिछले पीढ़ी कि ज्यादातर महिलाओं ने सरकारी सेवा में अपना योगदान नहीं किया है तो सुनिश्चित पेंशन जैसी कोई भी आर्थिक सहायता उनके पास नहीं है जिन घरों में ऐसी सुविधाएं हैं वहां तो कमोबेश ठीक-ठाक स्थिति बुजुर्ग महिलाओं के साथ है परंतु जो ऐसे विशेषाधिकार से संपन्न नहीं है उनका जीवन अत्यंत कष्टप्रद हो गया है।

10. भारत में बुजुर्ग यूरोप की तरह छुट्टियां मनाने मौज करने अच्छा भोजन इत्यादि को प्राथमिकता नहीं देते हैं बल्कि यहां सामाजिक कार्यों से जुड़े अवसरों को ज्यादा तवज्जो देते हैं भारत में बुजुर्ग प्रसिद्धि नाम पैसा संपत्ति नहीं बल्कि सम्मान के आकांक्षी हैं।

11. तेजी से परिवर्तन के कारण हमारे मूल्यों में भी बदलाव आ रहा है बुजुर्गों का त्याग आधारित जीवन वाला प्राचीन नजरिया बदल रहा है और आधुनिक वैज्ञानिक सांसारिक और व्यक्तिपरक नजरिया का रास्ता तैयार हो रहा है।

12. नौकरीपेशा लोग अब शहरों में बस रहे हैं जिससे गांव में बुजुर्ग जनसंख्या के अनुभव और जागरूकता से वंचित लोग रह जा रहे हैं साथ ही नई पीढ़ी गांव आने की वजह शहरों में निवेश कर रही है जिससे गांव की समृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है पहले लोग छुट्टियां मनाने के लिए गांव अपने परिवार के साथ चले जाते थे जिससे सामाजिक जुड़ाव मजबूत होता था परंतु अब लोग छुट्टियां दिया वीकेंड बाहर प्लान करते हैं जिससे गांव की समृद्धि तो खत्म हो ही रही है साथ ही साथ सामाजिक सरोकार भी कटते जा रहे हैं।

13. ग्रामीण क्षेत्रों में बुजुर्गों को सक्रिय रखने के लिए प्रेरित नहीं किया जाता तथा जड़ रूप से बुद्धि सामाजिक संरचना में कठिनाइयां ज्यादा हैं बुजुर्ग अपने दुख निराशा मोहन यहां तक कि विश्वासघात के अनुभव बताते हैं साथ ही जातिगत भेदभाव और भ्रष्टाचार से जुड़ी कठिनाइयों से विशुद्ध रूप से अवगत कराते हैं।

14. अशिक्षित गरीब बुजुर्गों के द्वारा कल्याणकारी योजनाओं के लिए अपनी पात्रता साबित करना बेहद कठिन कार्य है इनके लिए अपनी पहचान उम्र गरीबी रेखा से नीचे रहने के लिए BPL कार्ड जनप्रतिनिधियों के रिकमंडेशन लेटर बड़ी मुश्किल से मिलते हैं साथ ही रिश्वत, बिचौलिए, भ्रष्टाचार एवं जातिगत पक्षपात का सामना करना पड़ता है।

15. ग्रामीण क्षेत्रों में सरकार द्वारा चलाए जाने वाले विविध प्रकार के कल्याणकारी योजनाओं की कोई जानकारी नहीं है यदि कुछ लोग पेंशन इत्यादि के बारे में जानते हैं परंतु अन्य अनेक प्रकार की कल्याणकारी योजनाएं उन तक नहीं पहुंच पा रही हैं।उदाहरण के लिए 1 अक्टूबर 2007 से श्रम एवं रोजगार मंत्रालय ने गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले वरिष्ठ व्यक्तियों को राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के तहत सुरक्षा प्रदान करने का कार्यक्रम बनाया जिसके अंतर्गत ₹30 के रजिस्ट्रेशन पर 30,000 सालाना तक की स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता है परंतु सर्वेक्षण के दौरान मुझे एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिला जो इस योजना का लाभ उठा रहा हो। इसी के साथ 2017-18 के बजट में स्मार्ट कार्ड बनाने की योजना बनाई गई है परंतु गांव के कितने बुजुर्ग तक स्मार्ट हो पाए हैं यह अभी भी एक बड़ा प्रश्नवाचक चिन्ह है?

16. सैम सरकार के द्वारा भी इस प्रकार की योजनाओं को लेकर गंभीर प्रयास नहीं किए जा रहे हैं पिछले 10 सालों में संसद में एक भी बहस बुजुर्ग जनसंख्या के मुद्दे पर नहीं की गई है , 2011 में मोहिनी गिरी समिति की सिफारिशें जो बुजुर्ग जनसंख्या के कल्याण के लिए अनेक महत्वपूर्ण सुझाव देती हैं को अमल में नहीं लाया गया है, विगत 17 सालों में कोई भी संसदीय कमेटी बुजुर्ग जनसंख्या के लिए नहीं बनाई गई है।उदाहरण के लिए वर्तमान सरकार की असंगठित क्षेत्र के लिए महत्वकांक्षी योजना: अटल पेंशन योजना में मजदूरों के कंट्रीब्यूशन पर ब्याज दर मात्र 7% रखी गई है जबकि शर्म सरकारी कर्मचारियों के पेंशन इत्यादि की बचत योजनाओं पर यह दर 8% से अधिक है ऐसे ही इसी स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर प्रधानमंत्री जी द्वारा घोषित आयुष्मान भारत में 500000000 जनसंख्या को सम्मिलित करने का लक्ष्य रखा गया है परंतु उसके लिए अत्यंत कम राशि 12000 करोड आवंटित की

गई है जिसमें प्रति व्यक्ति मात्र ₹24 प्रति वर्ष के हिसाब से खर्च हो पाएगा तो क्या ₹2 में आप अपनी दवाई महीने भर के लिए खरीद सकते हैं?

16. भारत में मात्र 18% गरीब ही वृद्धि पेंशन योजना का लाभ ले पाते हैं अर्थात 82 प्रतिशत लोग इस योजना से बाहर हैं ,सिर्फ 3.5% अन्नपूर्णा योजना के दायरे में हैं और मात्र एक चौथाई महिलाओं को ही विधवा पेंशन का लाभ मिल पा रहा है।

विकल्प :1. बुजुर्गों को कल्याणकारी योजनाओं का लाभ देने के लिए सिंगल विंडो सिस्टम लागू किया जाए जो ग्राम पंचायतस्तर पर ही न्यूनतम कागजी कार्यवाही और लालफीताशाही के हस्तक्षेप के बिना इन्हें सुविधाएं प्रदान करें वैसे शुक्ल जी ने अपनी किताब राग दरबारी में लंगर के माध्यम से भारतीय ग्रामीण प्रशासनिक व्यवस्था और निशक्त समुदाय के बीच चूहे बिल्ली के खेल को बहुत बेहतर तरीके से दिखाया है।

2. बुजुर्गों की आवष्यकताओं को देखते हुए एक कानूनी प्रावधान सिंगापुर की तरह यहां भी विकसित किया जाना चाहिए जिसमें बच्चों की आय का 10% स्वत: ही उनके माता-पिता को खर्च के लिए सांस्थानिक स्तर पर है प्रधान कर देना चाहिए।

3. यद्यपि इंडिया इज वन का नारा सुनने में बेहद लुभावना है लेकिन हर क्षेत्र का अलग वहां भारत है और उस महाभारत के लिए हर बार कृष्ण का रंग भी अलग अलग होगा स्थानीय जरूरतों के हिसाब से कार्यक्रम और नीतियां बने और उनका धरातल पर क्रियान्वयन हो।

4. एक गंभीर चुनौती जो इस समय सामने आ रही है की युवा दंपती अपने माता पिता को अपने साथ नहीं रखना चाह रहे ऐसे दंपत्तियों का सामाजिक तौर पर बहिष्कार होना चाहिए खासकर जब सास-ससुर की बात आती है तो महिलाएं प्रतिरोध कर उठते हैं यदि उनके मायके पक्ष से यह बात उन्हें समझाई जाए कि हमारे साथ भी ऐसा ही हो सकता है जैसा तुम अपने सास ससुर के साथ कर रही हो तो सामाजिक दबाव ज्यादा काम करेगा लेकिन इसके लिए समाज की मूल चेतना में बदलाव की आवश्यकता है और यह निरंतर चलने वाली प्रक्रिया में से एक है

5. तेजी से बढ़ रही आयु के कारण वृद्धावस्था की परिभाषा में व्यापक बदलाव होना चाहिए क्योंकि अब लंबे समय तक लोग जी रहे हैं और क्रियाशील भी रह पा रहे हैं ऐसे क्रियाशील लोगों के अनुभव का ज्ञान का प्रयोग करने के लिए संस्थाओं के निर्माण किए जाने की आवश्यकता है

6. इस भाग दौड़ भरी जिंदगी में ना तो युवाओं के पास बुजुर्गों के लिए समय है और ना ही अब कामकाजी लोगों के पास अपने बच्चों के लिए ऐसे में बुजुर्ग और बच्चे एक दूसरे के निकट आ सकते हैं और परस्पर संवाद तथा विश्वास कायम कर एक दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति भी कर सकते हैं अगर ओल्ड एज होम या डे रिक्रिएशन सेंटर फ्रेश के बगल में हूं तो बच्चों को अभिभावक मिल जाएंगे और दादा दादी को खेलने के लिए खिलौने।

7. आर्थिक जरूरतों को देखते हुए यूनिवर्सल पेंशन स्कीम लागू की जानी चाहिए तथा जिस भी व्यक्ति को जरूरत हो उसको पर्याप्त पेंशन उपलब्ध रहने चाहिए

8. बुजुर्गों को भी अत्यधिक मोह माया में ना पढ़कर बुद्धिमतापूर्ण कार्य करना चाहिए और अंतिम अवस्था तक अपनी संपत्ति घर जमीन जायदाद पर अपना पूर्ण नियंत्रण रखना चाहिए जिससे कि उनकी शक्तियां या उनके सेवादार कम से कम उसी लालच में उनसे जुड़े तो रहें अगर अन्यथा मुंह में पढ़ने के बड़े घातक दुष्परिणाम होते हैं एक व्यक्ति मरने के बाद सांप बन गया मेंढक बन गया नेवला बन गया की कहानी सुनानी है।

9. तेजी से बढ़ रही वृद्ध जनसंख्या के लिए स्वास्थ्य के क्षेत्र में बहुत धीमी रफ्तार से काम हो रहा है MBBS के पाठ्यक्रम में संयुक्त राष्ट्र संघ फैमिली प्लानिंग की रिपोर्ट के बाद वृद्धावस्था पर एक चैप्टर सम्मिलित किया गया है मोहिनी गिरी समिति ने प्रत्येक जिला अस्पताल में जरिया ट्रिक विभाग स्थापित करने का सुझाव दिया था जिसे अमल में नहीं लाया गया है साथ ही देश के 656 जिलों में सभी जगह कम से कम एक पूर्ण सरकारी ओल्ड एज होम स्थापित करने का लक्ष्य सरकार ने रखा था लेकिन 8 साल बीत जाने के बावजूद भी किसी एक भी जिले में एक भी ओल्ड एज होम स्थापित नहीं हो पाया है अगर हम बाल ग्रहों के बगल में या नारी निकेतनों के बगल में ओल्ड एज होम स्थापित कर सकें तो बृजेश ठाकुर और गिरजा त्रिपाठी जैसे समाज के आतंक और राक्षसों पर प्रभावी नियंत्रण रखा जा सकता है।

10. सरकार कॉरपोरेट सेक्टर NGO और समाज को मिलकर एक प्रभावी तंत्र निर्मित करना चाहिए जिस में वृद्धों की जरुरतों के हिसाब से कार्य किया जा सके वित्त मंत्री अरुण जेटली जी ने संसद में बताया कि भारत में लगभग 15000 करो रुपए अंकल एंड मनी के रूप में उपलब्ध है जिसका कोई दावेदार नहीं है और इस पैसे का वृद्धों के लिए एक कोष बनाने पर विचार किया जा रहा है यह एक अत्यंत उपयोगी सुझाव है और इस पर त्वरित गति से कदम उठाए जाने की आवश्यकता है।

References:

1. http://transgenerational.org/aging/demographics.htm
2. http://www.ldoceonline.com/dictionary/senior-citizen
3. Gary McCleane and Howard Smith, editors, *Clinical Management of the Elderly Patient in Pain* (CRC Press, 2006).
4. Erikson, Erik H.; Erikson, Joan M. (1998). *The Life Cycle Completed: Extended Version*. W. W. Norton.
5. http://www.ohchr.org/EN/Issues/OlderPersons/Pages/OlderPersonsIndex.aspx

***

स्त्री-पुरूष संबंधों का बदलता स्वरूप

मो. इखलाक खान *

शोध सारांश

मनुष्य अनादि काल से इस धरा पर रहता आया है परंतु वह अकेला नहीं रहा है। अरस्तु के अनुसार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, सामाजिक प्राणी के रूप में वह सामाजिक संबंधों से सदैव घिरा रहा है। मनुष्य रूप में उसकी बहुत सारी आवश्यकताएं रही हैं इन आवश्यकताओं की पूर्ति वह दूसरों के सहयोग से करता रहा है। इसी सहयोग की पूर्ति के लिए उसने परिवार बनाया, इस रूप में उसने स्त्री को अपनी सहचरी के रूप में स्वीकार किया,आगे चलकर विवाह जैसी संस्था का जन्म हुआ। स्त्री पुरुष दोनों ही एक दूसरे के लिए आवश्यक अंग बन गए एक के बिना दूसरे का जीवन अधूरा हो गया। प्रारंभिक काल में दोनों की लगभग समान आवश्यकताएं थीं। मार्क्स के अनुसार यह अवस्था आदिम साम्यवाद की थी परंतु संसाधनों पर स्वामित्व की कड़ी में मनुष्य ने औरतों पर भी अपना अधिपत्य जमाना शुरू किया। फलस्वरूप समाज का स्वरूप बदला। अब स्त्रियां सामाजिक स्तरीकरण में पुरुषों के सापेक्ष दूसरे दर्जे की हो गई वर्तमान में भी कमोबेश प्रत्येक समाज की यही स्थिति है परंतु अभी भी कबीलाई समाज में स्त्रियों की स्थिति वर्तमान सभ्य समाज से कहीं बेहतर है आज इस बदलते स्वरूप में स्त्री-पुरुष संबंधों को फिर से नए आयाम देने की जरूरत है। ऐसा समय की मांग और समाज की आवश्यकता है।

प्रस्तावना

वर्तमान समाज निरंतर प्रगतिशील है, इस समाज में जहां पुराने नैतिक मूल्य बदले हैं वहीं नए नैतिक मूल्य भी स्थापित होते जा रहे हैं। वर्तमान समाज में परिवर्तन की यह प्रक्रिया काफी तेज है, महिला आंदोलनों एवं नारीवादी विचारकों ने महिलाओं को समान अधिकार दिलाने के लिए जो बीड़ा उठाया है उसने समाज को अंदर से झकझोर दिया है। इस विचारधारा ने एक नए समाज की स्थापना पर बल दिया है। आज स्त्री हो या पुरुष सभी अपने अधिकारों के लिए सचेत हैं, आज जब पूरा विश्व वैश्वीकरण और आधुनिकता के दौर से गुजर रहा है तब समाज की परंपरागत संरचना में परिवर्तन एक नैतिक दायित्व बनता जा रहा है। इस नए समाज में परंपरागत नैतिक मूल्यों को भी बदले जाने की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

इस्लाम के आगमन के साथ ही पर्दा प्रथा की शुरुआत हो गई और स्त्री-पुरुष संबंधों में पुरुषों का वर्चस्व पूरी तरह से हावी हो गया। उधर हिंदू समाज की स्त्रियों में संकीर्ण मनोवृत्ति ने जन्म लिया, सभी नैतिक नियम स्त्रियों पर लाद दिए गए इसके पीछे का मनोविज्ञान भी यही था कि स्त्री के ऊपर पूरे घर परिवार की जिम्मेदारी डाल दी गई, पुरुष के बिना तो कोई परिवार चल भी सकता है पर स्त्री के बिना घर परिवार की कल्पना ही कठिन कर दी गई। अतः सभी नैतिक मानदंड धीरे-धीरे महिलाओं के ऊपर थोप दिए गए , चूंकि नैतिकता के पीछे समाज की शक्ति होती है ; क्योंकि यह समाज के खुद की उत्तरजीविता का प्रश्न है अतः उसने महिलाओं पर तमाम नैतिक नियम आरोपित करने शुरू कर दिए और इन नैतिक नियमों पर धार्मिकता , डर और दंड का लबादा भी पहना दिया गया।

---

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर

नैतिकता को परिभाषित करते हुए मैकाइवर एवं पेज ने कहा है कि "नैतिकता का तात्पर्य नियमों की उस व्यवस्था से है जिसके द्वारा व्यक्ति का अंतः करण अच्छे और बुरे का बोध प्राप्त करता है।" तात्पर्य यह है कि नैतिकता एक तरह की अंतः प्रज्ञा या विवेक दृष्टि है पर इसमें एक महत्वपूर्ण तत्व गायब है और वह है उन नियमों की समाज स्वीकार्यता,जब समाज खुद को स्थिर व व्यवस्थित करने के लिए उन नियमों निर्देशों को व्यक्ति के संस्कार का अंग बना दे, जो उसे सुचारू रूप से चलाने के लिए आवश्यक है उसे ही नैतिक मूल्य कहा जाएगा। मूल्य वस्तुत: समाज सापेक्ष होते हैं । समाज सापेक्षता का तात्पर्य समाज के अनुसार उनके रूपांतरण तथा उनकी सार्थकता से है जैसे-जैसे भौगोलिक परिवेश तथा सामाजिक परिवर्तन होता है वैसे वैसे मूल्यों का संक्रमण भी दिखाई पड़ता है । बदलता हुआ समाज नैतिक नियमों तथा मूल्य में भी बदलाव लाता है । यह स्पष्ट है कि मूल्य कोई स्थैतिक परिकल्पना नहीं बल्कि एक सतत गतिशील प्रक्रिया है।

स्त्री और पुरुष किसी भी समाज के दो पहिए होते हैं, जिनसे वह समाज गति करता है । दोनों के संबंध जितने संतुलित होंगे, समाज का विकास उतनी ही व्यवस्थित ढंग से संचालित होगा । पर इतिहास की गति इतनी सीधी और सपाट नहीं होती, इतिहास में हमें समाज के भयंकर उथल-पुथल के चिन्ह दिखाई पड़ते हैं। इस उथल-पुथल का परिणाम स्त्री-पुरुष के संबंधों पर भी पड़ता है, क्योंकि समाज के दो आधार स्त्री और पुरुष (अथवा नर एवं मादा ही हैं) और नैतिकता के वाहन का भार भी इन्हीं के कंधों पर होता है; इस दृष्टि से स्त्री-पुरुष संबंधों तथा बदलते हुए नैतिकता का एक ऐतिहासिक विहंगावलोकन कर लेना भी अनुचित नहीं होगा। भारतीय संदर्भ में देखें तो सिंधु सभ्यता में स्त्री पुरुष के अधिकार समान होने के प्रमाण मिलते हैं ऐसे ही पूर्व वैदिक काल की कबीलाई संस्कृति में स्त्री पुरुष दोनों को लगभग समान अधिकार प्राप्त है और नैतिक नियम दोनों पर लागू होते थे । उस समय की नियोग प्रथा जायज मानी जाती थी, शारीरिक शुद्धता को लेकर एक खुली समझ स्त्री और पुरुष दोनों में थी । पर उत्तर वैदिक काल तक आते-आते समाज में पुरुषों की स्थिति मजबूत होती दिखाई देती है। सामंतवाद के प्रादुर्भाव के साथ ही स्त्रियों की स्थिति में बहुत गिरावट देखी गई। भूमि का महत्व बढ़ जाने और भूमि पर अधिकार की इच्छा में सामंतवाद की प्रवृत्ति को प्रबल किया। शक्ति और अधिकार की चाहत में शारीरिक रूप से सक्षम पुरुष का समाज पर वर्चस्व स्थापित कर दिया । गुप्त वंश के समुद्रगुप्त द्वारा अपनी विजय नीति में कन्योपायन[1] नीति का प्रयोग यह दर्शाता है कि अब स्त्रियां धीरे-धीरे संपत्ति समझी जाने लगी थी, जो अपने विजेता को प्रसन्न करने के लिए भेंट स्वरूप दी जाने लगीं ।

भारत में अंग्रेजों के आगमन के साथ आधुनिकता का आगमन हुआ । इसके साथ ही समाज में धर्म, आस्था ,भगवान की जगह वैज्ञानिक तर्क मानव केंद्र में आया । इन्हीं घटनाओं का परिणाम 19वीं शताब्दी में पुनर्जागरण आंदोलन के रूप में आया । वस्तुतः यह पुनर्जागरण भारतीय संस्कृति और पश्चिमी संस्कृति के द्वंद का परिणाम थी जिसने महिलाओं के प्रति उदारवादी सोच को बढ़ावा दिया। पुरुषों के समानांतर सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से महिलाओं को आगे लाने का प्रयास किया गया। पर इसमें भी स्त्री की सोच और उसकी खुद की उपस्थिति नगण्य थी स्त्रियों के बारे में सोचने का कार्य पुरुषों ने अपने जिम्मे ले लिया था।

इसी समय पश्चिमी जगत में हो रहे स्त्री आंदोलनों के दृष्टिकोण पर नजर डालना भी जरूरी है । पश्चिम में बीसवीं सदी महिलाओं के जबरदस्त परिवर्तन की साक्षी रहा, उसमें भी सबसे महत्वपूर्ण था अमेरिकी नारीवादी आंदोलन । महत्वपूर्ण बात यह है कि इसका स्वरूप पूर्व की नारीवादी सोच और प्रकृति से पूर्णत: भिन्न था । सही अर्थों में स्त्री सशक्तिकरण जैसा अभियान यही व्यवहार में दिखाई देता

है जब महिलाएं खुद को सामाजिक आर्थिक राजनैतिक रूप से सशक्त करने के लिए आंदोलन करती है प्रसिद्ध अमेरिकी नारीवादी बेट्टी फ्रीडन ने मां और गृहणियों के रूप में महिलाओं की सीमित भूमिका की कड़ी आलोचना की । इसके अलावा भी अन्य पश्चिमी नारीवादियों ने स्त्री के साथ लैंगिक जैविक आधार पर होने वाले शोषण और उन्हें तमाम अधिकारों से वंचित किए जाने का प्रबल विरोध किया । सीमोन द बुआ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक" द सेकंड सेक्स" में लिखा है कि 'स्त्री पैदा नहीं होती, उसे बनाया जाता है।[2] धीरे-धीरे स्त्री शोषण का मुख्य कारण उसका जेंडर जैविक बनावट को माना जाने लगा और विचारकों ने तार्किक रूप से इसकी भाषिकी भी गढ़ी । प्रसिद्ध जर्मन नारीवादी चिंतक एलिस स्वार्त्सर ने यहां तक कहा कि 'सेक्स आदमी और औरत के बीच होने वाला एक पावर प्ले है।'[3]

भारत के संबंध में बात करने के लिए इस पश्चिमी सिद्धांतों को बीच में लाना इसलिए जरूरी था क्योंकि इन नारीवादी आंदोलनों ने भारत को भी प्रभावित किया । स्वतंत्रता के बाद स्त्री शिक्षा का प्रसार, स्त्रियों के रोजगार के मौके की उपलब्धता ने उन्हें स्वावलंबी बनाया । उनके सामाजिक हैसियत को बढ़ाया और स्त्री पुरुषों के संबंध ज्यादा मानवीय और प्राकृतिक बने इस सामाजिक बदलाव ने पश्चिमी प्यूरिटन नैतिकतावादी रवैये में काफी ढील दी।

भारत में विगत 25 वर्षों अर्थात आर्थिक उदारीकरण और संचार क्रांति की शुरुआत के साथ स्त्रियों की स्थिति और इसके फलस्वरूप स्त्री-पुरुष संबंधों में क्रांतिकारी बदलाव आया है। इस बदलाव ने पारंपरिक नैतिक समझ को भी तोड़ कर रख दिया है । स्त्रियों की उच्च शिक्षा के अवसर मिले जिसका लाभ उठाकर स्त्रियां बहुराष्ट्रीय कंपनियों में अच्छे पैकेज पर अपने गांव घर से दूर नौकरी के लिए नियुक्ति पाने लगीं आर्थिक आजादी स्वतंत्र जीवन की चाह और विदेशी आंदोलनों सिद्धांतों के प्रभाव के कारण अपनी आंगिक बनावट के कारण होने वाली हीन बोध से मुक्त होकर स्वतंत्रता पूर्वक पहनने, खाने, रहने की सहूलियत प्राप्त करके स्त्री एक मॉडर्न वुमन या आधुनिक महिला के रूप में सामने आती है । स्वतंत्र जीवन शैली ने उन्हें पुरुषों की तरह जीवन जीने के लिए प्रेरित किया है ।

निष्कर्ष

इस तरह हम देखते हैं कि बदलती हुई सामाजिक ऐतिहासिक परिस्थितियों में स्त्री-पुरुष संबंधों में आमूलचूल बदलाव किया है और उसी अनुपात में नैतिकता के मानदंड और नैतिक मूल्य बदलते गए । कुछ नैतिक मूल्यों को समाज ने स्वयं बदल दिया, कुछ कानून के द्वारा बदले गए और कुछ समाज के एक तबके द्वारा अस्वीकार्यऔर दूसरे तबक के द्वारा स्वीकार्य के द्वंद में फंसे हुए हैं । अब ऐसी स्थिति में या प्रश्न उठता है कि क्या पारंपरिक मूल्य सर्वथा त्याज्य हैं या अभी उसमें कुछ ग्रहण करने योग्य तत्व बचे हुए हैं । साथ ही यह भी बड़ी शंका है कि आधुनिक भाव बोध के अनुसार अगर नैतिक मानदंड ना बदले गए तो कहीं हम आधुनिकता की दौड़ में पीछे ना रह जाएं। भारतीय समाज परंपरा और सर्वकालिक नैतिक मूल्यों को बहुत महत्व देता है । कुछ नैतिक मूल्य ऐसे होते हैं जो एक व्यवस्थित समाज के लिए शाश्वत होते हैं । परिवार भावना,स्नेह ,परोपकार ,सहकार भावना यह सब मूल मानवीय नैतिक गुण हैं । भारतीय समाज शुरू से ही इन्हें महत्त्व देता आ रहा है। नैतिकता को केवल स्त्री पुरुष देह तक या स्त्री पुरुष की स्वच्छंदता तक सीमित कर देना समाज को तोड़ कर रख देगा स्वतंत्रता जरूरी है पर इस हद तक नहीं कि वह निरंकुशता में बदल जाए या उच्श्रृंखलता में। मानव समाज के लिए स्त्री की जरूरत केवल भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नहीं बल्कि यह हमारी रूहानी जरूरतों भावनात्मक संवेदना ओं के लिए भी अनिवार्य है। बदलते हुए स्त्री-पुरुष संबंधों की आड़ में नैतिक मूल्य पूरी तरह उड़ा देने वाली चीज नहीं है ।जरूरत है इन मूल्यों के प्रति एक स्वस्थ विचार दृष्टि की, एक

बेहतर समझ के जिससे इन मूल्यों को डर या दंड का लबादा ना पहनाना पड़े,बल्कि समाज में व्यवस्था और संतुलन के लिए इन मूल्यों की अनिवार्यता को समझ कर व्यक्ति द्वारा आत्मानुशासन के तौर पर इन नैतिक मूल्यों को अंगीकृत कर लिया जाए तभी मानव समाज की सच्चे अर्थों में सार्थकता सिद्ध होगी।

---

[1] कन्योपायन - ये राजा आत्मनिवेदन, कन्योपायन, दान, गरुड़ध्वज से अंकित आज्ञापत्रों के ग्रहण आदि उपायों से सम्राट समुद्रगुप्त को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते थे। आत्मनिवेदन का अभिप्राय है, अपनी सेवाओं को सम्राट के लिए अर्पित करना। कन्योपायन का अर्थ है - कन्या विवाह में देना। राजा लोग किसी शक्तिशाली सम्राट से मैत्री सम्बन्ध बनाये रखने के लिए इस उपाय का प्रायः प्रयोग करते थे।

[2] One is not born, but rather becomes, a woman. De Beauvoir argued that women have historically been treated as inferior – and secondary – to men for three reasons. She explained that society teaches women – one, to fulfill a male's needs and therefore exist in relation to men – and two, to follow external cues to seek validation of their worth. Her third point was that females have historically had far fewer legal rights, and therefore less public influence.

[3] Inequalities ***between men*** and ***women*** are one ***of*** the most persistent patterns ***in*** the distribution ***of power***.

References :

R.M. MacIver R.M. and Page Charles H. (1962); Society: An Introductory Analysis Holt, Rinehart and Winston Publication California U.S.A

Beauvoir Simone de (1949) *The Second Sex*, , translated by H M Parshley, Penguin 1972

वी. गीता (2018), जेण्डर विमर्श, प्रकाशन संस्थान पब्लिकेशन

सुजाता (2019), स्त्री निर्मिति सामयिक प्रकाशन

अंजना श्रीवास्तव(2016), भारतीय समाज में लैंगिक भेदभाव, राखी प्रकाशन आगरा

***

महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण में वार्णित प्राकृतिक पर्यावरण : एक अवलोकन

राकेश कुमार *
डॉ. श्याम नारायण सिंह **

आदिकवि वाल्मीकि की पर्यावरणीय वर्णन बहुत उदात्त है। इनकी पर्यावरणीय चेतना से प्रेरणा लेकर संस्कृत के कवियोंने भी अपने काव्यों में प्रकृति के अनेक रुपों का वर्णन किया है।

पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना है। परि+आवरण जिसका अर्थ है चारों ओर से घिरा हुआ। हमारे चारों ओर घिरा हुआ जैविक तथा अजैविक पदार्थ पर्यावरण कहलाता है। इन दानों का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। प्राचीन काल में मनुष्य नें पर्यावरण को अपने विकास में सहयोगात्मक रुप में देखा,परन्तु मनुष्य धीरे–धीरे प्राकृतिक पर्यावरण का दोहन करना प्रारम्भ कर दिया। जिससे वर्तमान काल में यह स्थिति आ गया है कि मनुष्य उसका दुश्मन बन गया है। औद्योगीकरण और विकास की छोड़ तथा अविवेकपूर्ण दोहन के कारण पर्यावरण असन्तुलन जैसी विस्फोटक समस्या उत्पन्न हो गया है।

आज विश्व स्तर पर प्राकृतिक पर्यावरण समस्या से उबरने की महति आवश्यकता आ पडी़ है। जीवन की सुरक्षा प्राकृतिक पर्यावरण पर ही निर्भर है। पर्यावरण को सतुलित व समृद्ध बनाने के लिए हमें फिर से अपनी संस्कृति से जुड़ना होगा क्योंकि अन्य समस्याओं की तरह इस समस्या में भी हमारी संस्कृति का बहुत योगदान हैं।

हमारी संस्कृति में प्रकृति और पुरूष को अभिन्न अंग माना है प्रकृति और मानव के बीच सहनुकूलन व सह– अस्तित्व ही पर्यावरण का आधार हैं। इस पर्यावरण को संतुलित बनाने में हमारे –वेद, रामायण, महाभारत ने पर्यावरण शिक्षा, धार्मिक शिक्षा व नैतिक शिक्षा के रुप में वैदिक काल से ज्ञान दी गई है। जैसे अर्थवेद में कहा गया है–

"माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः"
"माते मर्म विभ्रश्वरि माते हृदयमपि यम"।[1]

अर्थात पृथ्वी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ, हे पवित्र करने वाले भूमि ! मैं तेरे हृदय को आघात न पहुँचाऊँ । इन मन्त्रों से स्पष्ट है कि उस

---

* शोध छात्र, सहकारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मिहरावाँ, जौनपुर (समबद्ध पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर)
** शोध निर्देशक, सहकारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मिहरावाँ, जौनपुर (समबद्ध पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर)

समय पर्यावरण की रक्षा करना व्यक्ति का धर्म माना जाता था। अथर्ववेद में पुनः कहा गया है–

"यावत् तेभिपश्यामि भूमे सूर्यो मेदिना।
तावन्मेचक्षुम मेष्टोतरामतुरां समाम।"[1]

अर्थातः हे भूमि! प्रकाशित सूर्य के साथ जब तक तेरी ओर देखता रहूँ तब तक वर्ष –वर्षान्तर तक मेरी दृष्टि क्षीण न हो। भारतीय संस्कृति में प्राकृतिक शक्तियों को वन्दनीय मानकर उन्हें हानि पहुँचाना धर्म विरोधी आचरण माना गया है।

भूमि की तरह जल को भी जीवन का आधार मानकर जल स्रोतों को पवित्र माना गया हैं। **"शुध्दा न आपस्तनवे क्षरन्तु।"** अर्थात हमारे शरीर के लिए शुध्द जल सदैव प्रवाहित होता रहे।

पर्यावरण का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप में व्यक्ति के जीवन पर पड़ता हैं–

1. **भौतिक घटक–जैसे –भूमि, जल तथा वायु।**
2. **जैविक घटक –जैसे –प्राणी तथा वनस्पति**

पृथ्वी पर दोनों वर्ग का प्राकृतिक पर्यावरण जीवनाधार की भूमिका निभाते हैं। ये घटक विभिन्न रूपों में जीवन के अस्तित्व के लिए मूलभूत आवश्यकताएँ है।

रामायण और महाभारत हमारी भारतीय संस्कृति के ह्रदय हैं। इनमें प्राकृतिक पर्यावरण का वर्णन पर्याप्त रूप में दृष्टिगोचर होती है। रामायण में श्रीराम के वनगमन के समय प्रकृति के मनोरम दृश्यों, हरे, भरे जंगल, रमणीय पर्वत, जलाशय में पुष्पित कमलदल तथा पशु–पक्षियों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

महर्षि वाल्मीकि अपने आदि काव्य में पर्यावरण का वर्णन बड़े स्वाभाविक ढंग से किया है। वाल्मीकि ने कथानक के माध्यम से प्रकृति मानव के सहचरी के रुप में दिखायी पडती है। कहीं जल, कहीं वायु, कहीं पृथ्वी, कहीं वनस्पतियों का वर्णन किया है। जो प्राकृतिक पर्यावरण की ओर संकेत करती है।

महर्षि वाल्मीकि ने रामायण के लगभग सभी काण्डों में जल, वायु, पृथ्वी तथा वनस्पति का वर्णन है।

जल–

शसरीरा गता स्वर्ग भर्तारमनुवर्तिनी।
कौशिकी परमोदारा प्रवृत्ता चमहानदी।।[1]

अर्थात अपने पति का अनुसरण करने वाली सत्यवती शरीर सहित स्वर्ग लोक को चली गयी थी। वही परम उदार महानदी कौशिकी के रुप में भी प्रकट होकर इस भुमी पर प्रवाहित है।

ह्लादिनी पावनी चैव नालिनी च तथैव च।
तिस्तः प्रार्ची दिशं जग्मुर्गगंगाः शिवजलाः शुभाः।।[1]

ह्लादिनी, पावनी, और नालिनी ये कल्याणमय जल से सुशोभित गंगा की तीन मंगलमयी धाराए पूर्व दिशा की ओर चली गयी।

सुचक्षुश्चैव सीता च सिन्धुश्चैव महानदी।
तिस्रश्चैता दिशं जग्मुः प्रतीचीं तु दिशं शुभाः।।[1]

सुचक्षु, सीता और महानदी सिन्धु ये तीन शुभ धाराएँ पश्चिम दिशा की ओर प्रवाहित हुई।

सप्तमी चान्वगात् तासां भागिरथं तदा।
भागिरथोऽपि राजार्षिदिव्यं स्यन्दनमास्थितः।।
प्रायादग्रे महातेजा गंगा तं चाप्यनुव्रजत्।
गगनाच्छंकरशिरस्ततो धरणिभागता।।[1]
ताः सर्वा गुणसम्पन्ना रूपयौवन संयुताः।
दृष्टा सर्वात्मको वायुरिदं वचनमब्रवीत्।।[1]
त्व पद्यमिव वातेन संनता प्रियदर्शना।
उरस्तऽभिनिविष्ट वै यावत् स्कान्धात् समुन्नतम्।।[2]
अयं तु मामात्म भवस्तवार्शनमारूतः।[2]

अर्थात तुम्हें न देख पाने कर सम्भावना ही वायु बनकर इस अग्नि को उदीप्त कर रही है।

महावातसमुद्भूतं यन्मामवकरिष्यति।
रजो रमण तन्मन्ये पराध्यमिव चन्दनम्।।[2]

अर्थात सुमन्त्र ने उसमें जुते हुए वायु के समान वेगशील उत्तम घोंड़ों को हाँका

न वाति पवनः शीतो।[2]
शिवः सर्वेषु कालेषु काननेभ्यो विनिस्सृतः।
राघवं युक्तशीतोष्णः सेविष्यतिः सुखोऽनिलः।।[2]
एते मृगगणा भान्ति शीघ्रवेगाः प्रचोदिताः।
वायुप्रविद्धा शरदि मेघजाला इवाम्बरे।।[2]

अर्थात सैनिकों के खदेड़े हुए ये मृगों के झुण्ड तीब्र वेग से भागते हुए, वैसे ही शोभा पा रहे हैं जैसे शरद काल के आकाश में हवा से उड़ाये गये बादलों के समूह सुशोभित होते हैं।

गुहासभीरणो गन्धान् नानापुष्पभवान् बहून्।
घ्राणतर्पणमभ्येत्य कं नरं प्रहर्षयेत्।।[2]

गुफाओं से निकली हुई वायु नाना प्रकार के पुष्पों को प्रचुर गन्ध लेकर नासिका को तृप्त करती हुई किस पुरूष के पास आकर उसका हर्ष नहीं बढ़ा रही है।

प्रकृत्या शीतलस्पर्शो हिमविद्धश्च साम्प्रतम्।
प्रपाति पश्चिमों वायु काले द्विगुणशीलः।।[3]

स्वभाव से जिसका स्पर्श शीतल है वह पछुआ हवा इस समय हिमकणों से ब्याप्त हो जाने के कारण दूनी सरदी लेकर बड़े वेग से बह रही है।

सुखानिलोऽयं सौमित्रो कालः प्रचुरमन्मथः।[4]

अर्थात हे सुमित्रानन्दन ! इस समय मन्द–मन्द सुखदायिनी हवां चल रही है। जिससे कामना का उद्दीपन हो रहा है।

(3) पृथ्वी–

स्निग्धोऽनुनादः संजज्ञे ततो हर्षसमीरितः।
जनौघोदघुष्टसंनादो मेदिनीं कम्पयन्निव।।[2]

अर्थात् समस्त जनसमुदाय की स्नेहमयी हर्षध्वनि सुनायी पड़ी। वह इतनी प्रबल थी कि समस्त पृथ्वी को कपाती हुई–सी जान पड़ी।

लोकपालोपमं नाथमकामयत मेदिनी।[2]

श्री राम को पृथ्वी की जनता अपना स्वामी बनाना चाहती है।

तया तान्यपविद्धानि माल्यान्याभरणनि च।
अशोभयन्त वसुधां नक्षत्राणि यथा नभः।।

जैसे छिटके हुए तारे आकाश की शोभा बढ़ाते है।
उसी प्रकार फेके गये वे पुष्पाहार और आभूषण वहाँ भूमि की शोभा बढ़ा रहे हैं।

वसुधासक्तनयनो भन्दमश्रूणि मुञ्चति।[2]

अर्थात– पृथ्वी की ओर दृष्टि किये धीरे –धीरे आँसू क्यों बहा रहे हो।

पृथ्वी सस्यमालिनी।[34]
सफेन रूधिरं मेदिनी पातुमिच्छति।[4]

(4) वनस्पति– **मुक्तशापं वनं तश्च तस्मिन्नेव तदाहनि।**
रमणीयं विबभ्राज यथा चैत्ररथं वनम्।।[1]

वह वन शाप मुक्त होकर रमणीय शोभा से सम्पन्न हो गया और चैत्ररथ वन की भाँति अपनी मनोहर छटा दिखाने लगा।

चैत्रः श्रीमानयं मासः पुण्यः पुष्पितकाननः।[2]

यह चैत्रमास बडा सुन्दर और पवित्र है इसमे सारे वन–उपवन खिल उठे हैं।

द्रुमाः कष्टकिनश्चैव कुशाः काशाश्च भामिनि।
वने व्याकुल शाखा ग्रास्तेन दुःखमतो वनम्।।[2]

वन में काँटेदार वृक्ष कुश और कास होते हैं जिनकी शाखाओं के अग्रभाग सब ओर फैले होते हैंइसलिए वन विशेष कष्टदायक होता है।

कञ्चित तीररूहैवृक्षैर्मालाभिरिव शोभिताम्।
कञ्चित् फुल्लोत्पलच्छनां कञ्चित् पधवनाकुलाम्।।[2]
मनोज्ञोऽमं गिरि सौभ्य नाना द्रुमलतायुतः।
बहुमूल फलों रम्यः स्वाजीवः प्रतिभाति मे।।[2]

सौम्य! यह पर्वत बडा मनोहर है। नाना प्रकार के वृक्ष और लगाएँ इसकी शोभा बढाती हैं। यहाँ फल –फूल भी बहुत हैं यह रमणीय हैं। मुझे जान पडता हैं कि यहाँ बडेसुख से जीवन नीर्वाह हो सकता हैं।

लता वल्लीश्च गुल्मांश्च स्थणूनश्मन एव च।
छिन्दन्तो विविधान् द्रुमान ।।[2]
आम्र जम्बुसनैर्लोध्रैः प्रियालैः पनसैर्धवैः ।
अङ्कोलैर्भव्यति निशैर्बिल्वतिन्दुकवेणुभिः।।[2]
काश्मर्यारिष्ट वरणैर्मधू कैस्तिलकैरति।
बदर्यामल कैनीपैवेंत्र धन्वन बीज कैः।।[2]

आम्.जामुन . असन .लोध प्रियाल .कटहल .धवअंकोल भव्य तिनिश बेल तिन्दुक बाँस काश्मरीअरिष्ट (नीम) वरण महुआ तिलक बेर आँवलाकदम्ब बेत धन्वन बीजक (अनार) आदि।

अगुरुणां च मुख्याना वनान्युपवनानि च।
पुष्पाणि च तमालस्य गुल्मानि मरिचस्य च ।।[3]

सन्दर्भ :

जल

1. **बालकाण्ड के–** 34/8, 41/19, 20, 43/12, 13, 14, 26, 27,63/ 24, 70 /23, 73/29 स्थलो पर जल का वर्णन है।
2. **अयोध्याकाण्ड के–** 5/17, 6/1 , 27, 7/3, 15 , 12/13 102, 14/34 15/5,8, 17/22, 20/49, 22/28, 27/19 28/9, 44/27, 46/10 47/17, 48/9,14,37,49/10,12,50/12,18.22, 54/6,42, 55/21,56/17, 48/9,14, 37,49/10,12,50/12,18,22,54/6,42,55/215/3568/12,14,17,20 71/14, 6,14,15, 80/11, 120 87/18,91/41 94/13, 95/5,9,13 14,110/3 आदि स्थानों पर जल का वर्णन है।
3. **अरण्यकाण्ड के**–8/14,11/2,5,11,15/4,55/12,73/16,17,21 36,37,40,74/25,75/14 आदि स्थरनों पर जल का वर्णन है।
4. **किष्किन्धा काण्ड के**–14/7,25/37,26/14,16,44,28/2, 3, 18, 35,30/11,33/6040/20, 21, 41/13, 14,41/16 43/39, 40, 47/2 आदि स्थलो पर जल का वर्णन है।
5. **सुन्दर काण्ड के**–– 2/2, 13/4, 14/2, 23,54/49 आदि में जल का वर्णन है।
6. **उत्तर काण्ड कें**– 4/11, 12/25, 26, 18/23 आदि मे जल का वर्णन है

वायु :

1. **बालकाण्ड के**– 30/30, 31/13, 32/15, 36/17, 52, 53/24, 63/23 मे वायु का वर्णन है।

2. **आयोध्याकाण्ड के–** 9/41,12/54, 15/34, 20/16, 24/6, 25/13,14 30/13, 34/2, 39/5, 40/17, 41/13,18 44/9, 56/34, 93/12,15,91/24, 94/14, 95/10, 97/24,106/27, 28,114/7, 119/6 आदि स्थलो वायु का वर्णन है।
3. **अरण्यकाण्ड के** -2/14, 15,3/11, 11/12, 13/6, 16/15, 31/7,35/8, 26,46/6, 48/8,51/2, 52/10,34, 63/17,64/27,67/7,8,आदि स्थलों पर वायु का वर्णन हैं।
4. **किष्किन्धा काण्ड** के 1/10, 12,14, 15, 18, 36, 54, 58, 72, 74, 84, 104, 124, 2/22, 13/19, 14/4, 22, 26/16, 27/6, 12, 28/6, 8, 15, 45, 30/43, 51, 53, 60/12, 66/25, 26, 67/9 आदि में वायु का वर्णन हैं।
5. **सुन्दरकाण्ड** के 1/39, 53, 58, 64, 84, 174, 175, 3/5, 13/63, 51/14, 53/32, 54/21, 22,57/27 आदि में वायु का वर्णन हैं।
6. **युध्दकाण्ड के** 1/3, 4/46, 75, 76, 5/6, 20/10, 24/12, 344/4, 57/21, 35, 7/41, 95/14, 96/4, आदि में वायु का वर्णन हैं।
7. **उत्तरकाण्ड के** 4/27,26/11,33/3, आदि में वायु का वर्णन है।

वनस्पति :

1. **बालकाण्ड के** 26/35,34/15,51/24,52/5,16,7/3,4, आदि में वनस्पति का वर्णन है।
2. **अयोध्या काण्ड के** –3/4, 8, 9, 7/2, 9/12, 13,21, 10/13, 14, 13/10, 19/11, 19/33, 28/10, 28/22, 48/10, 50/20, 21, 50/23, 55/8, 55/24, 56/6, 7,14,78/12,80/6,7,91/30,94/8,10, आदि में वनस्पति का वर्णन है।
3. **अरण्यकाण्ड के** 11/42, 11/75, 76, 15/5, 16, 18, 35/13, 22, 60/12, 22, 69/2, 3, 73/2, 5, 75/16,21,75/23,25 आदि मे वनस्पति का वर्णन है।
4. किष्किन्धाकाण्ड के 1/1, 4, 9, 77, 83, 16/6, 57, 14/14, 27/10, 17, 19, 27/24, 30/34, 240/45, 56,42/33,40,41,43,44,46,46/17,47/567/40, आदि स्थनो पर वनस्पति का वर्णन है।
5. **सुन्दरकाण्ड के** 1/3, 13,21, 45,16, 204, 2/6, 10, 2/13, 14/3, 4, 14/7, 10, 26,36,37,15/10,56/25,26,56/34, आदि स्थानो पर वनस्पति का वर्णन है।
6. **युद्धकाण्ड के** 4/70, 4/77, 81, 22/56, 59, 39/10, 11, 74/43, 124/19, 20, 128/103 आदि स्थानों पर वनस्पति का वर्णन है।
7. **उत्तरकाण्ड के** 15/38,26/46,42/1,7,42/9,10 आदि में स्थानों पर वनस्पति का वर्णन है।

पृथ्वी :

1. **बालकाण्ड के** 30/20, 36/16, 37/23, 40/3, 48/33, 50/18, 19, 20, 51/15, 52/22, 67/18,77/6,7,आदि में पृथ्वी का वर्णन हैं।
2. **अयोध्याकाण्ड के** 1/34, 39, 40, 2/14, 18,30, 35,45, 48, 3/44, 45, 8/38,10/7,24,36,37,13/25,14/28,35,38,19/9,23/33,34/47,55, आदि में वर्णन पृथ्वी का वर्णन हैं।
3. **अरण्यकाण्ड के** 5/6, 11/37, 38, 16/5, 19/9, 25/41, 26/15, 29/11, 30/6, 7, 31/25, 44/9, 46/23, 49/3, 52/26, 29, 42,56/11,आदि में पृथ्वी का वर्णन है।
4. **किष्किन्धाकाण्ड के** 1/89, 14/21, 15/5, 17/1, 28/7, 30/37, 44/6, 46/24, 61/9,आदि में पृथ्वी का वर्णन है।
5. **सुन्दरकाण्ड के** 1/12,15/1,5,आदि में पृथ्वी का वर्णन है।
6. **युध्दकाण्ड के** 1/2, 4, 4/67, 91, 91/1, 21/10, 22/6, 36, 37, 39, 42, 23/12, 24/2, 26/6, 33/37, 34/1, 95/37, 118/22, 127/6, 7, आदि में पृथ्वी का वर्णन है।
7. **उत्तरकाण्ड के** 6/56,17/1,18/120,31/14,46/16,आदि में पृथ्वी का वर्णन है।

***

धर्म, साम्प्रदायिकता और भारतीय राजनीति

डॉ. अनुपम शाही *

आज जब हम भारतीय राजनीति की बात करते हैं तो यहाँ जातिवाद, क्षेत्रवाद, आर्थिक भ्रष्टाचार आदि ढेर सारी समस्यायें जड़ जमाये खड़ी दिखाई देती हैं, लेकिन इनमें सबसे पुरानी और खतरनाक समस्या साम्प्रदायिकता है। हालांकि विचारात्मक दृष्टिकोण से धर्मनिरपेक्ष समाज और राज्य की परिभाषा में यह विश्वास निहित है कि धर्म व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन तक ही सीमित रह जायेगा और उसका राजनीति में कोई हस्तक्षेप नहीं होगा, लेकिन यह भी एक वास्तविकता है कि किसी भी देश में धर्मनिरपेक्षता का यह आदर्श पूरे तौर पर अपनाया नहीं जा सकता और आज भारतीय राजनीतिक जीवन में साम्प्रदायिकता का विष इतना गहरा व्याप्त हो चुका है कि हमारा लोकतंत्र ही खतरे में पड़ गया है। आज धर्म अपने संकीर्ण उद्देश्य पूर्ति का साधन मात्र बनकर रह गया है जबकि इसका उपयोग समेकित राष्ट्रवाद के उदय हेतु होना चाहिये था। आज सभी राजनीतिक दल धर्म, सम्प्रदाय और जाति की निरन्तर घटती–बढ़ती निष्ठा के खिलौने जैसे प्रतीत हो रहे हैं, परिणामस्वरूप धर्म, ज्ञान, जाति और सामाजिक स्वार्थों के आधार पर विभाजित यह समाज किस सीमा तक राष्ट्रीयता की भावना को आहत कर रहा है यह बात हमारी चिंतन धारा से दूर होती जा रही है। आज साम्प्रदायिकता की राजनीति एक प्रकार से धर्म की आड़ में एक दूसरे के प्रति भय और तिरस्कार का भाव पैदा करने की राजनीति ही है। हमारे देश में साम्प्रदायिकता का संकट इसलिए और भी गहराता है क्योंकि हमारे संस्कार, क्रियाकलाप, हमारी आस्थायें, हमारे जीवन मूल्य आदि सब कुछ धर्म से अनुप्राणित होते हैं और जहाँ तक धर्म का प्रश्न है तो वह तो हमारी सबसे संवेदनशील आस्थाओं में एक है, इसलिए भी धर्म के नाम पर व्यापार करने वाले भ्रष्ट तत्वों के हाथों में यह बड़ी आसानी से शोषण का हथियार बन जाता है और धर्म का राजनीतिक शोषण ही तो साम्प्रदायिकता कहलाती है। हमारे भारतीय दर्शन में 'धर्म" शब्द का प्रयोग मनुष्य के आचरण और आचार–विचार से सम्बद्ध है, जबकि अन्य जगहों पर धर्म को सम्प्रदाय के ही समानार्थी रूप में देखा जाता है। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि देश में धर्म का मूल स्वरूप कोई विवाद पैदा नहीं करता हाँ जब धर्म में राजनीति का प्रवेश हो जाता है तो बुराई वहाँ पैदा हो जाती है और साम्प्रदायिकता की उपज भी इसी धर्म की राजनीति से होती है और देश की राजनीति भी पर्याप्त रूप से इस धर्म के राजनीति का शिकार हो गयी है, जिससे राष्ट्रीय हितों की अनदेखी तो होती ही है, साम्प्रदायवाद की जड़ें भी

---

* एसोसिएट प्रोफेसर, हरिश्चन्द्र स्ना. महाविद्यालय, वाराणसी

मजबूत होती हैं। चूँकि भारत में अनेक राजनीतिक दल और अनेक धर्मों की मौजूदगी होने और धर्म के साथ राजनीति के मेल के कारण ही साम्प्रदायिकता की समस्या भी ज्यादा है क्योंकि जिस भी किसी देश में एक ही धर्म के लोगों का बाहुल्य है वहाँ धर्म और राजनीति के मेल से भी कोई स्वार्थ सिद्धी नहीं हो सकती अतः ऐसे देशों में साम्प्रदायिकता की समस्या तो नहीं होती, जबकि भारत में साम्प्रदायिकता की राह बहुत जटिल है। हमारे राजनीतिज्ञों को 'साम्प्रदायिकता' इस कारण भी अधिक प्रिय है क्योंकि इसके नशे के प्रभाव में आदमी अपने शोषण और पीड़ा के वास्तविक स्त्रोत को पहचानने में असमर्थ हो जाता है और ऐसे में उसका ध्रुवीकरण अपने पक्ष में करना एक सरल प्रक्रिया सिद्ध होती है। साम्प्रदायिक विचारधारा का मूल चरित्र असंतुष्ट रहना है और सच तो यह है कि साम्प्रदायिक विचारधारा प्रत्यक्षतः नैतिकता और तर्क की बात तो करती है किन्तु वास्तव में इसका न तो कोई धर्म होता है और न ही यह किसी धार्मिक तर्क को मानती है, यही नहीं संविधान, समाज, ज्ञान, विज्ञान किसी के भी प्रति इसकी कोई निष्ठा नहीं होती और कोई भी चाहे धर्म हो या धार्मिक प्रतीक इसके लिए मात्र बहाना ही होता है।

भारतीय राजनीति में अन्य समस्याओं की तरह सम्प्रदायवाद की जटिलता और भारतीय लोगों की मानसिकता पर इसकी पकड़ को समझने हेतु स्वतंत्रता के पूर्व के राष्ट्रवादी राजनीति पर विचार करना जरूरी होगा, क्योंकि स्वतंत्रता के पूर्व देश में व्याख्या के रूप में सम्प्रदायवाद पर हमेशा दो सिद्धान्त दिखाई देते हैं जिनमें एक अंग्रेजों का 'फूट डालो और शासन करो' की नीति थी और दूसरा जानबूझ कर किया गया कम विकास था। इस प्रकार अतीत में दृष्टिपात करने पर स्पष्ट दिखता है कि तत्कालीन ब्रिटिश प्रशासन ने अपने शुरुआती चरण में मुस्लिमों को कमजोर करने की व्यवस्थित नीति अपनाई थी क्योंकि वे उत्तर भारत में प्रशासक थे और जब नई राजस्व व्यवस्था लाई गई तो उसमें साहूकारों को प्रमुखता दी गई क्योंकि उनमें बड़ी संख्या में हिन्दू थे, फौज और सरकारी सेवाओं से मुस्लिमों को बाहर रखा गया तथा पंजाब और बंगाल में मुस्लिम किसानों से जमीन जब्त करने की घटना अत्यधिक हो गई, तात्पर्य यह कि ब्रिटिशों ने मुस्लिमों की एक ऐसे धार्मिक सम्प्रदाय के रूप में पहचान की जो उनके खिलाफ थे, लेकिन बाद के दिनों में जैसे 1870–80 के दशक में उनकी यह सोच परिवर्तित होने लगी जब देश में अखिल भारतीय पैमाने पर राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक मांगों को लेकर संगठन स्थापित होने शुरू हुए और इस प्रकार के कार्यों में जो लोग सक्रिय हुए उनमें अधिकांश हिन्दू थे, यहीं से अंग्रेजों की राजनीति बदली हुई दिखाई देती है और मुसलमानों के प्रति उनका रुख बदलने लगा। इसी प्रकार जब 1885 में कांग्रेस की स्थापना के साथ जब राष्ट्रीय आन्दोलन धीरे–धीरे जोर पकड़ने लगा उस समय ब्रिटिश प्रशासन मुस्लिमों के भीतर कांग्रेस के प्रति अविश्वास और संदेह की भावना

भरने का सुनियोजित कार्य करने में कोई कसर नहीं छोड़ी, 1906 में ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग की स्थापना होती है और 1909 के मार्ले–मिंटो सुधार भारत परिषद अधिनियम के द्वारा मुस्लिमों के लिए पृथक निर्वाचन समूह की शुरुआत कर दी गई जो निश्चित रूप से एक घातक सिद्धान्त था, क्योंकि इसके द्वारा अंग्रेजों ने बहुत से धनी मुस्लिम नेताओं को 'अल्पसंख्यक धर्म' के नाम पर आगे बढ़ाने का एक मंच तैयार कर दिया, हालांकि बाद में लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस और मुस्लिम लीग का समझौता हो गया था, लेकिन देखा जाय तो 19वीं शताब्दी के शुरुआत ने ही 'धर्म' को राजनैतिक लामबंदी के लिए इस्तेमाल करना शुरू कर दिया और 20वीं शताब्दी तक तो ये सब कुछ चरम पर हो गया, देश का विभाजन और तमाम विध्वंसों ने इन दो बड़े सम्प्रदायों के मिल जुलकर रहने की सभी उम्मीदों पर पानी फेर दिया और भारतीय राजनीति का पतन जो साठ के दशक में प्रारम्भ हुआ, जिसने राजनीति को पूर्णतः सिद्धान्तविहीन और मूल्यविहीन कर दिया, चुनाव में सीटों के बंटवारा, मोर्चाबन्दी, बढ़ती हुई असमानता, अनेक समूह और सम्प्रदायों का जन्म ये सब कुछ ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हुईं जो सम्प्रदायवाद के जहर को पल्लवित और पुष्पित करती चली गईं और साम्प्रदायिक हित बहुत विस्तृत, जटिल और निर्दयी होता चला गया।

वर्तमान परिदृश्य में देखा जाय तो साम्प्रदायिकता का एक आधुनिक अर्थ भी प्रचलित हो चला है उसे 'राष्ट्रवाद' से जोड़कर प्रचारित किया जा रहा है। वैसे सही मायने में देखा जाय तो देश में 'सम्प्रदायवाद' और 'राष्ट्रवाद' दोनों का एक ही साथ जन्म हुआ है जिसे हम 'नवजागरण' कहते हैं और आज साम्प्रदायिकता का धर्म से मात्र इस्तेमाल का रिश्ता रह गया है और छद्म राष्ट्रवाद की आड़ में हिन्दू राष्ट्रवाद, मुस्लिम राष्ट्रवाद या सिख राष्ट्रवाद का खेल निरन्तर जारी है, जबकि भारतीय समाज और संस्कृति सभी का सम्मिश्रण है, और आज कोई भी साम्प्रदायिक नेतृत्व यह दावा करने की स्थिति में नहीं है कि उसे अछूती संस्कृति विरासत में मिली है और शायद भारतीय परम्परा का मुख्य बल भी यही मिश्रण है, लेकिन इस साम्प्रदायिकता के चलते आज देश में इतिहास के हमारे पूर्वजों का भी हिन्दू या मुस्लिमकरण हो गया है। निःसंदेह साम्प्रदायिकता अब नासूर बन चुका है और बगैर कुछ आमूल परिवर्तनों के भारत का अखण्ड और सुदृढ़ राष्ट्र के रूप में जीवित रहना कठिन हो सकता है। अतः आज सबसे अधिक जरूरत इस बात की है कि हम नागरिकों को भी आगे आना होगा और समुचित एवं चैतन्य मनोवृत्ति के माध्यम से साम्प्रदायिकता से निपटने हेतु जनमानस में इसके प्रति विरोधात्मक सोच को विकसित करना होगा तथा इस कार्य में प्रबुद्ध वर्ग तथा मीडिया भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करेंगे तभी यह राह आसान होगी। इस प्रकार हमें राष्ट्रीयता को गतिशील और धर्म को उदात्त बनाना ही होगा तभी मुक्ति सम्भव है।

सन्दर्भ :

1. रजनी कोठारी : स्टेट एगेंस्ट डेमोक्रेसी, साउथ एशिया बुक्स पब्लिकेशन दिल्ली, 1988
2. विपिन चन्द्रा : आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता, ओरियंट ब्लैक श्वान प्रकाशन, हैदराबाद, 1996
3. लालचन्द्र राम : देश, साम्प्रदायिकता और हम, दिल्ली अकादमिक प्रतिभा, 2008
4. नरेन्द्र मोहन : धर्म और साम्प्रदायिकता, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
5. डॉ0 एम.पी.राय : भारतीय शासन और राजनीति, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर
6. कमल नयन चौबे : जातियों का राजनीतिकरण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1982
7. सच्चिदानन्द सिन्हा : लोकतंत्र की चुनौतियां, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2010
8. पी.सी.जैन : भारतीय राजनीति की प्रवृत्तियाँ, कौटिल्य, अंक 3, जून 1984

***

वैदिक चिकित्सा एवं पर्यावरण

डॉ. ज्योति सिंह *

" सत्वरजस्तमस साम्यावस्था प्रकृतिः" सत्व, रज , तम की साम्यावस्था ही प्रकृति है। सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में इसकी उपस्थिति है। पर्यावरण का आधार पंचमहाभूत है, जिससे मिलकर त्रिविध गुण जीव का निर्माण करते हैं। वेदों में ऋषियों द्वारा अनेक सूक्तों के द्वारा पर्यावरण की आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक व्याख्या की गई है तथा इनके साथ संतुलन बनाये रखने का निर्देश दिया गया है।

भारतीय वाङ्मय में परिगणित बत्तीस विद्याओं की गणना चारों वेदों तथा उपवेदों से प्रारम्भ होती है, इस क्रम में आयुर्वेद को ऋग्वेद का, धनुर्वेद को यजुर्वेद का, गान्धर्व वेद को सामवेद का, तथा तन्त्र वेद को अर्थव वेद का उपवेद निरूपित किया गया है –

ऋग्यजुः साम चावथर्ववेदायुर्धनुषोः क्रमात्।
गान्धर्वश्चैव तन्त्राणि उपवेदाः प्रकीर्तिताः॥

पर्यावरण का मानव के स्वास्थ्य से घनिष्ठ संबन्ध है, इस तथ्य के मर्मज्ञ वैदिक द्रष्टाओं द्वारा पर्यावरण के संतुलन को बनाये रखने के लिए यज्ञ विधान को नित्य कर्म के रूप में तथा समय - समय पर विविध प्रकार के नैमित्तिक, उपासनादि कर्मों का विधान किया गया था। जिससे शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मानसिक रूप से भी स्वस्थ रहे। पर्यावरण तथा स्वास्थ्य के इस घनिष्ठ संबन्ध को ध्यान में रखकर आरोज्ञ शास्त्र का प्रतिपादन और तत्वोपदेश किया गया, जिसे आयुर्वेद के नाम से जाना जाता है। इसे पूर्ण मानव धर्म ही कहना चाहिये क्योंकि आयुर्वेद में केवल रोगों के कारण एवं उनकी चिकित्सा मात्र का ही वर्णन नहीं है, प्रत्युत धर्म के समस्त सिद्धान्तों का तथा काम-क्रोध, मोह-लोभ, ईर्ष्या-द्वेष आदि एवं इनके कारण होने वाली शारीरिक और मानसिक व्याधियों का तथा उनके निवारणार्थ सत्य, अहिंसा, असूया आदि धर्म के सभी अंङ्गों का भी विस्तार से विवेचन हुआ है। इसीलिये चिकित्सा- शास्त्र के ज्ञान द्वारा मानव अपनी समस्त व्याधियों से मुक्त होकर स्वास्थ्य एवं दीर्घायु प्राप्त करते हुये अपने दोनों लोक (इहलोक तथा परलोक) का कल्याण एवं चतुर्विध पुरुषार्थ का सम्पादन करता है।

मुख्य बिन्दु-

---

* प्रवक्ता (जी.जी.आई.सी.), आनन्द नगर (महाराजगंज) उत्तर प्रदेश, भारत

पर्यावरण एवं मानव, मानव स्वास्थ्य तथा पर्यावरण, वेदों में वर्णित आयुर्वेदिक उपाय(यज्ञ, पशु सेवा, अध्यात्म, जीवन प्रणाली आदि), चिकित्सा विज्ञान एवं पर्यावरण, वर्तमान परिदृश्य।

शोधपत्रोद्देश्य-

प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य वैदिक काल में प्रयुक्त चिकित्सा पद्धति का पर्यावरण से संबन्ध बताया गया है। यद्यपि आधुनिक समय में अनेकों नये- नये रोग हो रहे हैं , जिसके उपचार के लिए आधुनिक विज्ञान प्रयासरत है किन्तु वैदिक काल में अनेक ऐसे विधान थे, जिससे पर्यावरण को संतुलित करके जीवन को असाध्य रोगों से मुक्त रखा जाता था। चिकित्सा का उद्देश्य केवल शारीरिक व्याधि ही नहीं अपितु मन, आत्मा से भी जुड़ा था। जिसकी उपचार विधि का वर्णन वेदों में प्राप्त होता है। इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर आचार्य चरक ने आयुर्वेद की संक्षिप्त एवं सारगर्भित परिभाषा दी है-

हिताहितं सुखं दुखमायुतस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते॥

प्रकृति के प्रत्येक जीव – जन्तु , वनस्पति तथा पंच भूतो के लिए मंत्रों का विधान है , जिनका उच्चारण तथा ध्यान एवं सेवन से भयंकर रोगों से मुक्ति मिल सकती थी । स्वास्थ्य का वातावरण से अत्यन्त घनिष्ठ संबन्ध होता है, अतः पर्यावरण मानव जीवन के अनुकूल बना रहे । इसके लिए ऋषियों द्वारा विविध प्रकार के यज्ञों का विधान तथा उनमें विशेष प्रकार के हवि सामग्री का प्रयोग किया गया । ऋग्वेद के एक सम्पूर्ण सूक्त में यज्ञचिकित्सा का वर्णन मिलता है –

मुंचामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम्॥

सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ पंचमहाभूतों तथा त्रिविध गुणों से मिलकर बना है। मानव शरीर का निर्माण भी ५ महाभूतों (पृथ्वी, ज ल , तेज, वायु, आकाश) से ही हुआ है। जब तक मानव इन तत्वों के साथ समुचित व्यवहार करता है, वह स्वस्थ्य तथा निरोग रहता है, किन्तु जैसे ही मानव द्वारा इनके उपयोग के स्थान पर उपभोग की प्रवृत्ति होती है, पर्यावारण में असंन्तुलन होता है, जिससे विभिन्न प्रकार के रोग होने लगते हैं। प्रकृति के नियमानुसार मुख्यतः रोगों की उत्पत्ति मुख्यतःऋतुओं के संधिकाल में ही होता है अथवा अधिक संभावना बनी रहती है।

ऋग्वेद कि ऋचाओं मे वर्णित है कि रोगों के निवारण के लिए ऋषियों द्वारा यज्ञ का विधान किया गया तथा प्रकृति के साथ संतुलन बनाकर रहने से दीर्घ आयु प्राप्त होगी ऐसी कामना की गई है-

शतं जीव शरदो वर्धमानः।
शतं हेमता छतमु वसस्तान्।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः।
शतायुष हविषहार्ष मे नम्॥

यही कारण था कि यज्ञ करना अध्यात्म एवं पर्यावरण के संरक्षण के साथ ही साथ चिकित्सा के उ द्देश्य से भी किया जाता था। एक निश्चित समय , अवस्था एवं आसन में आकर रोग विशेष के लिए मंत्र का पाठ करते हुए अग्नि में औषधि का प्रक्षेपण किया जाता था-

अश्वगन्धोऽथ निर्गुण्डी बृहति पिप्पली फलम्।
धुपोऽयं स्पर्शमात्रेण ह्यर्शसां शमने ह्यलम्॥[1]

अथर्ववेद में प र्यावरण के संघटक तत्व तीन बताया गया है- जल , वायू तथा औषधियां। इनतीन तत्वों ने संपूर्ण भूमि को घेरा हुआ है तथा मनुष्य को प्रसन्न रखते हैं, अतः इसे छन्दस कहते हैं-

त्रीणि छन्दांसि कवयो वि वेतिरे, पुरुरूपं दर्शनं विष्वचक्षणम।
आपो वाता ओषधयः, तान्येकस्मिन भुवन आर्पितानि।[2]

शुक्लयजुर्वेदीय उपनिषद ईशावास्योपनिषद के अनुसार जड़ -चेतनात्मक जगत ही पर्यावरण है, जिसका यथायोग्य प्रयोग तथा उपभोग की दृष्टि का निषेध किया गया है-

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंञ्च जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुंज्जीथा मा गृधः कस्य स्विधनम॥[3]

अथर्ववेद में अनेक प्रकार के रोग कृमिओं का भी वर्णन किया गया है।[4] जो शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को समाप्त करते हैं, जिससे शरीर अनेकों रोगों से पीड़ित होता है, यथा- यतुधान, क्रव्यदान, यक्ष, पिशाच। इसमें यातुधान तथा पिशाच अत्यन्त ही घातक हैं-

- यातुधान- जो वायु खाद्य तथा पेय पदार्थों के माध्यम से शरीर में प्रवेश करके रोग को उत्पन्न करके शरीर को यातना देते हैं, यातुधान कहलाते हैं ।
- पिशाच- जो शरीर की मांशपेशिओं तथा हड्डियों को कमजोर तथा क्षीण करता है, पिशाच कहलाता है।

किन्तु इनका भी चिकित्सा द्वारा निदान संभव है।[5]

वेदों में वर्णित रोग एवं आयुर्वेदिक समाधान-

- अथर्ववेद में उन्माह चिकित्सा का वर्णन प्राप्त होता है जिसके द्वारा सुगन्धित औषधियों द्वारा यज्ञादि करके विकृत मस्तिष्क तथा उत्तेजित मन को नियन्त्रित किया जा सकता है।[6]

- पुत्रेष्टि यज्ञ द्वारा बन्ध्या रोग से मुक्ति का विधान है। ऋग्वेद के १०वें मण्डल में गर्भदोषों के निवारण का वर्णन किया गया है।[7]
- गण्डमाला चिकित्सा के विषय में कहा गया है कि चन्द्रमा तथा सूर्य के प्रति औशधियों द्वारा यज्ञ करने से यह रोग दूर हो जाता है।
- विषम ज्वर से बचने के लिए नीम के पत्ते, हर्र, सफ़ेद सरसो तथा गूगल की चूर्ण को घी में मिलाकर उसका धूप लेने का विधान है।[8]
- अगर , कपूर, चन्दन तथा राल की धूप ली जाए तो तीव्र ज्वर में लाभकारी होता है। है।
- अथर्ववेद में राजयक्ष्मा की चिकित्सा में दो बातें कही गई हैं- सोमपान और पुरुषार्थ। इनका अभिप्राय है कि सोमरस या पौष्टिक रसों का पान यक्ष्मा रोग को दूर करता है। साथ ही पुरुषार्थ या मनोबल को क्षीण न होने देना भी रोगनिवृत्ति के लिए परमोपयोगी है।
- प्रदूषित वायु से बचने के लिए प्रतिविष के रूप में लाक्षा, हरिद्रा, अतीस, हरीतकी,मोथा,हरेणुका,इलायचि,दालचीनी, तग , कूठ तथा प्रियंगु आदि पदार्थो को अग्नि में जलाने से वायु शुद्ध हो जाती है।
- सुश्रुत संहिता में जटामासी, हरेणु, त्रिफ़ला, शोभांजन आदि पदार्थों को मिलाकर यदि कूट-पीसकर शहद के साथ मिलाकर लेप को भेरी या नगाड़े पर लगाने से विष शिघ्र ही नष्ट हो जाता है।
- प्रदूषण से होने वाले रोगों के लिए ऋग्वेद(मण्डल ७ , सूक्त ५ ०) में निवारण बताया गया है। सायण ने " विषादिहरणे विनियोग" लिखकर इस सूक्त का भाष्य किया है।
- ऋग्वेद में तो हस्तस्पर्श से रोग निवारण का विधान है जिसे वर्तमान काल में "mesmerism" कहते हैं । प्रवर्ग्य विद्या और अपिकक्ष्य विद्या शल्य क्रिया के अतिविशिष्ट रूप है। इनमें शिर को काटकर अलग रखना और किसी दूसरे जीव का शिर उसके स्थान पर धड़ से जोड़ दिया जाता है। जिसका उदाहरण पुराणों में वर्णित गणेश के मुख के स्थान पर हाथी के मुख का प्रत्यारोपण है।
- हृदय रोग के लिए सूर्यकिरण, चन्द्रकिरण, जलचिकित्सा का उपयोग हुआ है। ऋग्वेद में आयुर्वेद के त्रिदोष सिध्दान्त का स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है।
- वेदों मे देवादि ग्रहों, नक्षत्रों के कारण् उत्पन्न होने वाले विकारों का भी वर्णन है, जिसे भूतविद्या कहते हैं-

भूतविद्यानाम देवासुरगंधर्वयक्षरक्षः पितृपिशाचनागग्रहमुपसृष्ट।
चेतसांशान्ति कर्म बलि हरणादि ग्रहोपशमनार्थम्॥

इसके अतिरिक्त अनेकों ऐसे रोग हैं, जिनका सरलतम् उपचार वेदों में वर्णित है।

मानव एवं पर्यावरण का संबन्ध-

वेद एवं पुराणों में मानव का पर्यावरण से घनिष्ठ संबन्ध बताया गया है। पद्मपुराण में यज्ञ तथा पर्यावरण का मानव स्वास्थ पर पड़ने वाले प्रभाव के संबन्ध में कहा गया है कि-

यज्ञेनाप्यायिता देवा वृष्त्युत्सर्गेण मानवाः।
आप्यायनं वै कुर्वन्ति यज्ञां कल्याण हेतवः॥[9]

ऋग्वेद में प्रतीकात्मक संदर्भ प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि मानव के द्वारा किये गये कर्मों के फ़ल स्वरूप (यज्ञादि कर्म) ही द्युलोक प्रसन्न होता है तथा वर्षा के द्वारा पृथ्वी को तृप्त करता है। यज्ञ से मेघ तथा मेघ से वर्षा होती है।[10]

विज्ञान भी वर्तमान में इस तथ्य को स्वीकार काता है कि यज्ञादि में प्रयुक्त सामग्रियों ऐसी गैसें निकलती हैं, जो पर्यावरण को संतुलित तथा मानव स्वास्थ के लिए उपयोगी होती है, यथा- ethylene oxide, propylene.....

पर्यावरण के संतुलन में वृक्षों का महान योगदान है, इसके महत्व को बताते हुए मत्स्य पुराण में कहा गया है कि दस कुओं के बराबर एक बावड़ी, १० बावड़ी के बराबर एक तालाब, १० तालाबों के बराबर एक पुत्र तथा १० पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है-

दश कूप समा वापी, दशवापी समोहद्र।
दशहृद समः पुत्रो, दश पुत्रो समो द्रुमः॥[11]

प्रदुषण से बचने के प्रावधान वेदों में-

वेदों में मनुष्य को समृद्ध बनाने वाली उर्वरा भूमि की स्तुति करते हुए ऋषि कामना करता है कि इसका संरक्षण करते हुए अजेय, अबध्य तथा अक्षत रूप में इस भूमि पर निवास करें।[12]

सुश्रुत संहिता में भूमि उपचार की कामना करते हुए ऋषि का कठन है कि अनंता को एलादिगण के साथ सुरा में पीसकर दूध अथवा काली मिट्टि में मिलाने से उसकी उर्वरा शक्ति बढती है।[13]

वैदिक काल में प्रकृति के साहचर्य से भी वनस्पतियों का ज्ञान प्राप्त होता है।पर्यावरण पर औषधियों के प्रभाव को बताते हुए कहा है कि जहां भी प्रदूषण होता है, वह उसे बाहर निकाल देती है।[14]

औषधि (अवघ्नती) को अपने गंध से अनेक विषों को नष्ट करने वाला बताया गया है।[15]

पृथ्वी के जिस भाग पर अधिक पौधे होते हैं, वह मानव स्वास्थ्य के लिए अधिक उपयोगी होता है।[16]

ऋषि पुनर्वसु ने ६ पौधों का नाम बताया है, जिससे पर्यावराण शुद्ध होता है-

स्नुही(थुहर), अर्क(आकंड़ा), अश्मंतक(पथरचटा), पूतीक(करंज), कृष्णगंधा(सहजना), तिल्लक(पठानी लोध)। [17] इस प्रकार मानव का अनेक रूपों में पर्यावरण से संबन्ध था-

पशु सेवा-

वेदों में पशुओं के पालन का उद्देश्य स्वास्थ्य से भी जुड़ा हुआ है। इनकी उपास्थिति मात्र से पर्यावरण के दोष दूर हो जाते हैं। इनके द्वारा प्रदत्त दूध, घी, तथा मल -मूत्र भी रोग नाशक होता है। पशुओं में सर्वाधिक उपयोगी गाय है। ऋग्वेद् में गाय को यज्ञपरक तथा दुग्धादि बढाने वाला कहा गया है।[18]

वर्तमान काल में भी अनेक वैज्ञानिक शोधों से यह प्रमाणित हो गया है कि गाय के रोम- रोम से निरन्तर आक्सीजन निःसृत होता है तथा इसका दूध स्वास्थ्य की दृष्टि से सबसे उपयुक्त होता है। बकरी के दूध से अपान की शुद्धि, भेड़ के दूध से वाणी में स्पष्ट्ता तथा बल के लिए संस्कारवान(शुद्ध) अन्न का भोजन करने का निर्देश दिया गया है।[19]

यज्ञ विधान-

पृथ्वी सस्यादि से पुष्ट होकर जीव जगत के लिए सुखकारी बनती है। अतः वैदिक काल से ही पर्यावरण में व्याप्त सामग्री के समुचित उपयोग तथा इसके पोषण के लिए यज्ञ का विधान किया गया है। यजमान द्वारा अनुष्ठीय यज्ञ वर्षाकारक इन्द्र की शक्ति को बढाता है और भूलोक को विविध अनाज आदि से पुष्ट करता है।[20] प्रदूषण के कारण भूमि फ़लवती नहीं होती है। इसे सायण ने अनृत का परिणाम कहा है। यजुर्वेद में विस्तृत भूमि और उसमें स्थित पत्थर,हीरा आदि रात्न, मिट्टी, पेड़-पौधे तथा पर्वत में उपजे पीपल, आम , आदि वृक्ष, सोना, चांदी, लोहा, तांबा, नीलमणि इन सभी की यज्ञ में योग्यता बताई गई है।[21] इसमें पूथ्वी को भस्म से भरने का भी संकेत प्राप्त होता है, जो यज्ञ से प्राप्त होती है। चूंकि यज्ञ की भस्म द्वारा उत्तमोत्तम औषधियों का क्षारतत्व पृथ्वी को प्राप्त होता है।

अध्यात्म-

सूर्य, पृथ्वी, जल , तेज तथा आकाश के अतिरिक्त जगत के सभी जड़ - चेतन में देव का वास माना गया है। यदि इनके प्रति अनिष्टाचरण किया जाये तो इनका दुष्परिणाम मानव जाति के साथ- साथ संपूर्ण जीव जगत को भोगना पड़ता है। प्रायः संस्कृत मनीषियों द्वारा इसके देवी, देवता, गुरू,शिष्य के रूप एं वर्णित किया गया है। पर्यावरण के आधार पर ही आराध्य के स्वरूप की प रिकल्पना की गई है। यथा

कलिदास द्वारा - या सृष्टि स्रष्टुराद्या.... कहकर एक तरफ़ जहां अष्टमूति शिव की स्तुति की गई है, वही शंकराचार्य ने तो गुरू रूप में स्तुति करते हुए कहा है कि-

भूरम्भांस्यनलोऽनिलोऽम्बर महर्नाथो हिमांशु पुमान्,
इत्याभाति चराचरात्मकमिदं यस्यैव मूर्त्यष्टकम्।
नान्यकिंचन विद्यते विमृशतां यस्मात्परस्माद्विभोः,
तस्मै श्री गुरुमूर्तये नम इदं श्री दक्षिणामूर्तये॥

प्रातः कालीन उषा काल की भी देवी रूप में वन्दना की गई है-

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेतः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि।
पुराणि देवी युवतिः पुरंधिरनु वृत्तं चरसि विश्ववरे॥[22]

वर्तमान में वेद वर्णित चिकित्सा विज्ञान तथा पर्यावरण की प्रासांगिकता-

वेद में प्रदूषण रहित आहार-विहार को स्वास्थ्य के लिए श्रेयस्कर एवं दीर्घ जीवन का साधन बताया गया है-

यद् अश्नासि यत् पिबसि धान्यं कृष्याः पयः।
यद् आद्यं यद् अनाद्यं सर्वं ते अन्नम् अविषं कृणोमि॥[23]

वेद न केवल **जीवेम शरदः शतम्**[24] का ही उद्घोष करता है अपितु **भूयसीः शरदः शतम्**[25] की भी प्रेरणा देता है। पर्यावरण में अनेक प्रकार की गैसें जो मानव स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होती हैं, दूषित हो गई हैं। इन विषैली गैसों के कारण आकाश, वायु, जल , भूमि आदि सभी जीव जगत के लिए हनिप्रद हो गये हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण गत वर्षों में हुए महायुद्धों के प्रभाव को देखकर लगाया जा सकता है। नदियां सुख रहीं हैं, हिमखण्ड पिघल रहें हैं, कहीं सूखा तो कहीं अतिवृष्टि है, प्रत्येक जीव अनेक असाध्य रोगों से पीड़ित है।इन सबका समाधान वैदिक विधि से पर्यावरण संरक्षण तथा चिकित्सीय उपाय द्वारा संभव है। वेद दीर्घायुष्य के लिए सर्वप्रथम जीवन की मूलभूत सामग्री को निर्विष करने पर बल देता है, अतः भारतीय पद्धती में रोगों की चिकित्सा करते समय सर्वप्रथम उस रोग की प्रकृति को जानना आवश्यक होता है-

शतधारं वायुम् अर्कं स्वर्विदंनृचक्षसस् ते अभि चक्षते रयिम्।
ये पूनन्ति प्र च यच्छन्ति सर्वदा ते दुह्रते दक्षिणां सप्तमातरम्॥[26]

यह प्रकृति सत , रज , तम की मात्रा से ही निश्चित होती है। अतः पंचभूतों से निर्मित जीव जब तक पर्यावरण् के सथ संतुलन बनके रखता है, सवस्थ्य तथा निरोग रहता है किन्तु जैसे ही भौतिकता के वशिभूत होकर इसका दोहन करने लगता है, प्रकृति के विकराल स्वरूप के कारण रोग, व्याधि से ग्रस्त होकर महान

कष्ट का अनुभव करता है। अतः वैदिक ऋषि स्वयं के साथ-साथ प्रकृति के सभी तत्वों की कल्याण की कामना करता हुआ कहता है-

ओ३म् द्यौः शान्तरिक्षरन्तरिक्षं शान्तिः, पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयह् शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्वं शान्तिः, सा मा शान्तिरेधिः॥
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

इस प्रकार संपूर्ण ब्रह्माण्ड के लिए स्तुति करता हुआ ऋषि कल्याण की कामना करता हुआ तथा स्वयं को प्रकृति का अभिन्न अंग मानकर यह उद्घोषित करता है कि जब तक पर्यावरण सुरक्षित है, जीव जगत स्वस्थ एवं सुरक्षित है।

संदर्भ :

प्राथमिक स्रोत-

[1] ऋग्वेद १ ० .१ ८ ६ .१ -३
[2] अथर्ववेद, १ ८ .१ .१ ७
[3] ईशावास्योपनिषद, १
[4] अथर्ववेद, १ .२ .३ १ , १ .२ .३ २ , १ .४ .३ ७ , १ .५ .२ ३ , १ .५ .२ ९ ।
[5] अथर्ववेद १ .८
[6] अथर्ववेद ६ .१ १ १
[7] ऋग्वेद १ ० .१ ६ २
[8] बृ०नि० र ०
[9] पद्मपुराण, सृष्टि खण्ड, ३ .१ २ ४
[10] ऋग्वेद, १ .१ ६ ४ .५ १
[11] मत्सयपुराण
[12] अथर्ववेद, १ २ .१ ,१ १
[13] सुश्रुत संहिता, कल्प स्थान, ३ .१ २
[14] यजुर्वेद, १ २ .८ ४ .९ १ .१ ० १
[15] वैदिक साहित्य में शल्य चिकित्सा: एक अध्ययन, रामजी विष्वकर्मा, पृ. १ ० ५
[16] शतपथ ब्राह्मण, १ .३ .३ .१ ०
[17] चरक संहिता, सूत्र स्थान, १ .७ ६
[18] ऋग्वेद, १ ० .६ ९ .३

[19] यजुर्वेद,२ १ .५ ९ -६ ०

[20] ऋग्वेद, १ .२ २ .१ ३ तथा ८ .१ ४ .५ .

[21] यजुर्वेद, १ ८ .१ ३ .१ ८ .

[22] उषस् सूक्त, ३ .६ १

[23] अथर्ववेद, ८ .२ .१ ९ .

[24] यजुर्वेद, ३ ६ .२ ४ , अथर्ववेद१ ९ .६ ८ .२ .

[25] अथर्ववेद, १ ९ .६ ८ .८ .

[26] अथर्ववेद, १ ८ .४ .२ ९

द्वितीयक स्रोत-

- सिंह, निशान्त, पर्यावरण-शिक्षा, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, २ ० ० ७ ।
- शर्मा, नारायणदत्त, अग्निष्टोम यज्ञपद्धति विमर्श, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, दिल्ली:प्रथम संस्करण, २ ० ० २ ।
- चतुर्वेदी, गिरिधरशर्मा, वैदिक विज्ञान, श्रीलालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली: द्वितीय संस्करण, २ ० ० ५ ।
- The web of life " A new synthesis of mind and matter from the tao of physics, Harper Colling Publisher, 1996|

पत्र – पत्रिका-

Nature Reviews, Nature Publishing Group, U.S.A.

***

विकास एवं पर्यावरणवाद : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

अनामिका कुमारी *

विकास एवं पर्यावरण घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। दोनों परस्पर निर्भर हैं एवं परस्पर प्रभावित करते हैं। यदि पर्यावरण विकास को आधार देता है तो विकास पर्यावरण के रख–रखाव, उसके पोषण एवं समृद्धि में सहायक होता है। यदि विकास मानव की आवश्यकता है तो उन्नत पर्यावरण उसके स्वस्थ जीवन की अनिवार्यता है। विकास एक सतत् प्रक्रिया है। यह जीवन की गतिशीलता का सूचकांक है। विकास शब्द कई अर्थों में प्रयोग में आता है। सीमित अर्थ में विकास मानव की भौतिक सुख–सुविधाओं में वृद्धि का सूचक है। व्यापक अर्थ में विकास मानव द्वारा शैक्षिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक क्षेत्रों में होने वाली प्रगति की समग्रता का द्योतक है। कुछ विचारक आधुनिकीकरण को ही विकास कहते हैं। कौम एवं ग्रेगर के अनुसार, 'वृद्धिकारी परिवर्तन को विकास कहते हैं । वीडनर का कथन है कि, 'विकास वृद्धि की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा राष्ट्र–निर्माण और सामाजिक–आर्थिक उन्नति होती है। कभी–कभी यह भी कहा जाता है कि विकास सामाजिक परिवर्तन की एक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य एक प्राचीन एवं पिछड़ी हुई व्यवस्था को आधुनिक व्यवस्था में बदलना है।

वास्तव में विकास एक बहु–आयामी प्रक्रिया है। इसके कई पक्ष हैं–राजनीतिक विकास में विवेकशीलता, पंथनिरपेक्षता, व्यापक जन–सहभागिता शामिल है। सामाजिक विकास में सामाजिक बुराइयों का अन्त, मानवीय भेदभाव की समाप्ति, स्तर की समानता, सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि शामिल है। इसके आर्थिक पक्ष में सामाजिक सुरक्षा के लिए व्यवस्था करना, शोषण का अभाव, निरन्तर आर्थिक वृद्धि, प्रचुरता और खुशहाली की प्राप्ति शामिल है। संक्षेप में, विकास–

(1) एक गत्यात्मक अवधारणा है। यह स्थिर अवधारणा नहीं है।
(2) एक बहु–पक्षीय प्रक्रिया है और इसके विविध पक्ष परस्पर सम्बन्धित हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।
(3) विकास वृद्धि से अधिक है। आर्थिक समृद्धि तथा भौतिक सुख–सुविधाओं की बहुलता को वृद्धि (Growth) कहते हैं। किन्तु विकास इतना ही नहीं है। विकास को पर्यावरण से जोड़ कर देखा जाता है। जब आर्थिक समृद्धि एवं भौतिक सुख–सुविधाओं की बहुलता बिना पर्यावरण को क्षति पहुँचाये आती है तो उसे विकास कहते हैं।

---

* शोध छात्रा (समाजशास्त्र), पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना ।

(4) विकास का विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से गहरा रिश्ता है। वास्तव में आज तकनीकी दृष्टि से उन्नत समाज को ही विकसित समाज कहते हैं।

यह तो विकास का उज्ज्वल पक्ष है, सकारात्मक पक्ष है। किन्तु, व्यवहार में इसका एक निषेधात्मक पक्ष भी दिखाई देता है। विकास का नकारात्मक परिणाम उभर कर आया है जो पर्यावरण–संकट के रूप में दिखाई देता है। जहाँ एक ओर विकास ने आर्थिक समृद्धि लाकर मानव की भौतिक सुख–सुविधाओं को बढ़ाया है वहीं दूसरी ओर मानव के समक्ष पर्यावरण–संकट भी उत्पन्न किया है। इससे मानव का अस्तित्व, उसका स्वास्थ्य बुरी तरह प्रभावित हुआ है। इस पर्यावरण–संकट का कारण विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान का अन्धाधुन्ध–प्रयोग, औद्योगीकरण, नगरीकरण, आदि हैं। यह वास्तविकता है कि विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान ने मानव की शक्ति को अत्यधिक बढ़ा दिया है। परिणामतः आज मानव आर्थिक एवं भौतिक समृद्धि के लिए विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान एवं साधनों का असंयमित प्रयोग करके प्रकृति पर नियन्त्रण स्थापित करने का प्रयास कर रहा है, उससे छेड़छाड़ कर रहा है, ऊर्जा के पारम्परिक स्रोतों का अनियन्त्रित दोहन कर रहा है। इसके परिणामस्वरूप हमारी धरती, जल, वायु, सब कुछ प्रदूषित हो गयी है। इससे आज मानव अनेक प्रकार की असाध्य बीमारियों का शिकार है। आधुनिक पारिस्थितिकीय अनुसंधानों से ज्ञात होता है कि जैव–मंडल पर मनुष्य के अनवरत, एकतरफा और अनियन्त्रित हस्तक्षेप से हमारी सभ्यता मरुभूमियों को मरुद्यानों में बदलने के बजाय मरुद्यानों को मरुभूमियों में तब्दील कर सकती है। यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि विकास एवं उन्नत पर्यावरण में कैसे सामंजस्य हो सकता है? क्या पर्यावरण–संकट के समाधान के लिए विकास को तिलांजलि दे दी जाय?

पर्यावरणवादियों का इस विषय में विशेष दृष्टिकोण है। पर्यावरणवाद मानवकेन्द्रित अवधारणा है। इस कारण पर्यावरणवादी जीवन की गुणवत्ता (Quality of life) को आर्थिक समृद्धि (Economic Growth) से अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। पर्यावरणवादी विचारकों के कई वर्ग हैं। इन विचारकों ने पर्यावरण–विरोधी विकास को अवांछनीय माना है। पर्यावरणवादियों का एक वर्ग संपदा–संरक्षणवादी है। इसके अनुसार पर्यावरण संशाधनों के संरक्षण से कुछ अधिक है। प्रकृति कच्चा माल प्रदान करती है। भावी आर्थिक समृद्धि के लिए प्रकृति को सुरक्षित एवं संरक्षित करने की आवश्यकता है। यह दृष्टिकोण 'गैर–संरक्षणवाद' को बदलना चाहता है। पर्यावरणवादियों का एक वर्ग 'वातावरण संरक्षणवादी' है जिसमें ब्रंटलैण्ड विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये विचारक भी मानवस्वास्थ्य को महत्वपूर्ण मानते हैं। इनके अनुसार यदि विकास से वातावरण के प्रदूषित होने एवं जनस्वास्थ्य के लिए खतरे की सम्भावना हो तो विकास का निषेध होना चाहिए। पर्यावरणवादियों का एक वर्ग मुख्यधारा हरित (Mainstream greens) कहलाता है जिसमें कार, मैकरोबी आदि विचारक आते हैं। ये पोषणता पर बल देते हैं। ये नवकरणीय

ऊर्जा (Renewable energy) के उत्पादन पर बल देते हैं। इसमें भी पर्यावरण–संरक्षण पर बल है। इनके अनुसार ऐसी तकनीकी खोजनी चाहिए जो बेकार वस्तुओं को कच्चे माल में परिवर्तित करके मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करे। पुनः, देवाल, सेशन्स, नेअस, आदि 'गम्भीर हरित पर्यावरणवादी (Deeper greens) मानते हैं कि औद्योगिक विकास पर्यावरण का विनाश एवं धरती का क्षरण करता है। अतः मानव–हित में औद्योगिक विकास को बन्द कर देना चाहिए, अन्यथा प्रकृति में प्रतिक्रिया होगी तथा अन्य विषम समस्याएं उत्पन्न होंगी।

प्रश्न है कि क्या पर्यावरण–संकट के समाधान के लिए विकास को तिलांजलि दी जा सकती है? इसका उत्तर स्पष्टतः निषेधात्मक है। आज की परिस्थितियों में विकास का नकारा नहीं जा सकता। पुनः, यह भी हकीकत है कि मानव–हित में पर्यावरण–सकट को बढ़ाया भी नहीं जा सकता। आज आवश्यक है कि आर्थिक विकास और पर्यावरण में सामंजस्य किया जाय। पर्यावरण एवं पारिस्थतिकी–तन्त्र पर विपरीत प्रभाव डाले बिना विकास को अग्रसर करने की आवश्यकता है। इसी परिप्रेक्ष्य में समाज–राज–दार्शनिकों ने 'संपोष्य विकास' की अवधारणा प्रस्तावित किया है।

संपोष्य विकास शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम इवा बालफोर और वेस जेकसन ने किया। 1987 ई० में पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग की अध्यक्षता करते हुए इस शब्द का प्रयोग करके इसे चर्चित बना दिया। संपोष्य विकास, विकास की वह अवधारणा है जो बिना पर्यावरण को क्षति पहुंचाये मानव जीवन की उत्तमता और आर्थिक विकास पर बल देती है। इसके लिए यह ऐसी तकनीकी को खोजने पर बल देती है जो मानव को आर्थिक दृष्टि से समृद्ध भी बनाये और पर्यावरण को भी सुरक्षित रखे। बंटलैण्ड ने पर्यावरण एवं विकास के लिए विश्व आयोग की रिपोर्ट 'Our common Future' में संपोष्य विकास की निम्नलिखित परिभाषा दिया–

'संपोष्य विकास वह है जिसमें वर्तमान पीढ़ी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति भावी पीढियों की आवश्यकता–पूर्ति को बिना नुकसान पहुँचाये करती हैं, (A sustainable development is that, in which the present generation meets his requirements without being detrimental to the requiremetns of succeeding generations)

संपोष्य विकास की इस परिभाषा में दो बातों पर बल है–

(1) वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विकास होना चाहिए और,
(2) विकास संयमित होना चाहिए। भावी पीढ़ी के हितों को भी ध्यान में रखकर विकास होना चाहिए। विकास की ऐसी पद्धति अपनायी जानी चाहिए जिससे भावी पीढ़ी को संकटों से न गुजरना पड़े।

संपोष्य विकास की अवधारणा विकास की वर्तमान अवधारणा से भिन्न है। दोनों के अन्तर को निम्नलिखित उदाहरण से समझा जा सकता है। प्रथम उदाहरण उस माली (Gardener) का है जो फूल के पौधे को

रोपता है, सींचता है, पोषित करता है और उससे फूल प्राप्त करता है। इससे माली की जीविका भी चलती रहती है और वह पौधा (पेड़) भी सुरक्षित रहता है। द्वितीय उदाहरण उस लोहार (Blacksmith) का है जो पेड़ को काटता है। उससे कोयला तथा घरेलू सज्जो–सामान का निर्माण करता है। इस प्रकार वह अपनी जीविका तो प्राप्त करता है, किन्तु पेड़ का अस्तित्व ही समाप्त कर देता है। इनमें प्रथम दृष्टिकोण संपोष्य विकास का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें प्राकृतिक संसाधनों को पोषित एवं सुरक्षित रखते हुए विकास पर बल है। द्वितीय दृष्टिकोण वर्तमान में प्रचलित विकास का है जो पर्यावरण के अस्तित्व को दाँव पर लगाकर विकास को आगे बढ़ाता है।

वास्तव में विकास की द्वितीय अवधारणा वर्तमान में शोचनीय विषय है। विकास की वर्तमान अवधारणा विज्ञान एवं तकनीकी की प्रगति तथा औद्योगीकरण के आलोक में भविष्य की कीमत पर वर्तमान का विकास करती है। यह विकास की एकांगी एवं विपरीतगामी अवधारणा है। आज मानव प्रकृति को नियन्त्रण में लेकर प्राकृतिक संसाधनों का अनियन्त्रित, अविवेकपूर्ण, अदूरदर्शी एवं विनाशकारी दोहन या शोषण (EÛploitation) कर रहा है। इस प्रवृत्ति के दो दुष्परिणाम उभर कर आये हैं। प्रथम, इसने मानव को उपभोक्तावादी, अर्थलोलुप, उच्छृखल, अहंकारी, स्वार्थी, सुखवादी एवं भोगवादी बनाया। द्वितीय, उसने प्राकृतिक संसाधनों को क्षति पहुँचाया या पारिस्थितिकी तन्त्र में सन्तुलन को विघटित किया और पर्यावरण–तन्त्र को नष्ट किया, परिणमातः उसका वर्तमान तो संकटग्रस्त हुआ ही, भविष्य भी असुरक्षित हुआ है। पुनः, जहाँ एक ओर वह प्राकृतिक संसाधनों को समाप्त कर रहा है, वहीं दूसरी ओर हरित प्रभाव वाली अनेक गैसें उत्पन्न करके, वैश्विक ताप में वृद्धि कर रहा है तथा वायु, जल एवं मृदा में इतने अधिक जहरीले पदार्थों को विसर्जित कर रहा है कि वनस्पति एवं जीवधारी जगत् का एवं स्वयं उसका अपना अस्तित्व ही संकट में पड़ गया है।

उपरोक्त कारणों से सम्पोष्य विकासवादी विकास के विषय में समन्वित एवं समग्र दृष्टिकोण अपनाते हुए उसे बदलना चाहते हैं और वर्तमान के विकास को भविष्य की सुरक्षा से जोड़ना चाहते हैं। सम्पोष्य विकासवादियों के अनुसर विकास की वर्तमान अवधारणा त्रुटिपूर्ण है जो मानव की एक समस्या (आर्थिक समस्या) का समाधान तो करती है, किन्तु उसी समय पर्यावरण को क्षति पहंचा कर अन्य अनेक समस्याओं को (स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को) जन्म देती है। सम्पोष्य विकासवादी इस बात पर बल देते हैं कि निस्सन्देह वर्तमान का अधिकार है कि वह अपनी समस्याओं का समाधान और आवश्यकताओं की पूर्ति करे, किन्तु उसका यह कर्तव्य भी है कि वह ऐसा करके भविष्य के अस्तित्व को संकट में न डाले। इस प्रकार सम्पोष्य विकास का उद्देश्य विकास तथा संरक्षण है। यह भौतिक संसाधनों के ऐसे उपभोग पर बल देती है जिससे मानव की आवश्यकताएं सन्तुष्ट हों और जीवन की गुणवत्ता बनी रहे। पुनः, यह संरक्षण पर भी बल

देती है। इससे तात्पर्य यह है कि भौतिक संसाधनों का इस प्रकार उपभोग होना चाहिए कि वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताएं तो पूरी हों तथा भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति की सम्भावना भी बनी रहे। तात्पर्य यह है कि सम्पोष्य विकास की अवधारणा वर्तमान और भविष्य दोनों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखती है। इसकी मान्यता है कि भौतिक संसाधनों पर भावी पीढी का उतना ही अधिकार है जितना वर्तमान पीढ़ी का। इस प्रकार संपोष्य विकास वर्तमान और भविष्य का संगम है। यह मानव को वर्तमान एवं भविष्य के प्रति जागरूक बनाता है। इसमें विकास भविष्योन्मुखी होता है।

सम्पोष्य विकास के अनुसार आज पर्यावरण अत्यधिक प्रदूषित हो गया है। परिणामस्वरूप भावी पीढ़ी का अस्तित्व तो संकट में है ही, वर्तमान पीढी भी सुरक्षित नहीं है। इसके अनुसार विकास न तो पर्यावरण से ऊपर हो सकता है और न उसका विरोधी । पर्यावरण की कीमत पर भी विकास की प्रक्रिया को आगे नहीं बढ़ाई जा सकती।

वास्तव में सम्पोष्य विकासवादी पर्यावरण का पोषण, संरक्षण एवं सुधार आवश्यक मानते हैं। संपोष्य विकास इस बात पर बल देता है कि पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी तंत्र को क्षति पहुँचाये बिना विकास होना चाहिए और मानव जीवन को उत्तम बनाना चाहिए। वस्तुतः पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी तन्त्र को संरक्षित करते हुए जो विकास होता है वह संपोष्य विकास है। इसके लिए संपोष्य विकासवादी ऐसी तकनीकी खोजने पर बल देते। हैं जो मानव को आर्थिक दृष्टि से समृद्ध भी बनाये और पर्यावरण को भी सुरक्षित रखे।

संपोष्य विकास संयमित विकास है। इसका भारतीय संस्कृति में स्वीकृत अपरिग्रह, त्याग एवं संयम से सामंजस्य है। यह आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को संयमित करने पर बल देती है। यह वर्तमान पीढ़ी को भारतीय मनीषी भर्तृहरि की इस शिक्षा को याद दिलाना चाहती है कि 'कामनाओं के उपभोग से कामनाएं शान्त नहीं होती' (न जातु कामाः कामानामुपभोगेन शान्तये)। संपोष्य विकास मानव से आग्रह करता है कि वह पर्यावरण से अपना तादात्म्य एवं सामंजस्य बनाये, उससे छेड़छाड़ एवं उस पर नियन्त्रण करने का प्रयास न करे। यह इस बात पर बल देता है कि हमें प्रकृति के प्रति अनुग्रहशील होना चाहिए और प्रकृति से उतना ही लेना चाहिए जितना हम उसे वापस कर सकें। यह भारतीय संस्कृति की मान्यता है जिसे आज संपोष्य विकास की अवधारणा स्वीकार करती है। जैसे, भारतीय परम्परा कहती है कि अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए वृक्ष को काटना हमारा अधिकार है, किन्तु हमारा यह कर्तव्य भी है कि यदि हम एक वृक्ष काटते हैं तो एक पौधा रोपें भी। वास्तव में भारतीय परम्परा में प्राप्त शान्तिपाठ, 'ऊँ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः' इसी तादात्म्यभाव का सूचक है। पुनः, 'पृथ्वी माता है और मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ' (माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः), यह वैदिक दृ

ष्टिकोण मानव को पर्यावरण के साथ तादात्म्य स्थापित करने की शिक्षा देता है। इस प्रकार पारिस्थितिकी दर्शन विकास का जो समग्र दृष्टिकोण प्रस्तावित करता है उसमें पर्यावरण के प्रति अनुग्रहशीलता, कृतज्ञता, विनम्रता, एकाकारता का भाव है, प्रकृति के प्रति भोग्यता एवं विजेता का भाव नहीं है। पारिस्थितिकी विचारकों के अनुसार आज का मानव इस दृष्टिकोण को भूल चुका है। परिणामतः नैतिक एवं अनैतिक ढंग से वैभवपूर्ण जीवन जीने की उसकी प्रवृत्ति एवं भूख ने पर्यावरण–संकट पैदा करके अपने अस्तित्व का ही संकट पैदा किया है। अतः आज समन्वित विकास और भी अपेक्षित हो जाता है।

पारिस्थितिकी विचारकों की मान्यता है कि पर्यावरण को सर्वाधिक क्षति विकसित देशों ने पहँचायी है, क्योंकि उन्होंने ही निर्ममतापूर्वक एवं लापरवाही के साथ प्राकृतिक संशोधनों का दोहन किया हैं। जैसे, अमेरिका के लोग सम्पूर्ण विश्व की जनसंख्या का केवल 6 प्रतिशत हैं, किन्तु वे सम्पूर्ण विश्व में निर्मित माल के लगभग 50 प्रतिशत और सम्पूर्ण विश्व की लगभग 33 प्रतिशत ऊर्जा की खपत के लिए उत्तरदायी हैं। पुनः विकसित देशों का अनुसरण करते हुए अल्पविकसित एवं विकासशील देशों में भी पर्यावरण के अत्यधिक दोहन की प्रवृत्ति उभरकर आयी है। चूंकि पर्यावरण को सर्वाधिक क्षति विकसित देशों ने पहुँचाई है, अतः पर्यावरण को उन्नत बनाने का सर्वाधिक दायित्व भी उन्हीं का है। पर्यावरणवादी उपरोक्त कारणों से इस बात पर बल देते हैं कि पर्यावरण की उत्तमताको बनाये रखने के लिए विकसित देशों के लोगों को अपने उपभोग के प्रतिमानों (Consumption patterns) एवं जीवन शैली (Lifestyle) को बदलना होगा।

पारिस्थतिकी दर्शन का आधार सामाजिक न्याय (Social justice) का विचार भी है। इसके अनुसार धरती किसी की निजी सम्पत्ति नहीं है। यह हमें पूर्वजों से उत्तराधिकार में नहीं मिली है। हमें समझना होगा कि यह हमारे पास भावी पीढ़ियों की धरोहर है। हम प्राकृतिक संसाधनों को सुरक्षित रखने के दायित्व से बँधे हैं। वर्तमान पीढी को यह अधिकार नहीं है कि वह अपने उपभोग के लिए सभी प्राकृतिक संसाधनों को निचोड कर भावी पीढ़ियों के लोगों के जीवन को संकट में डाले। संपोष्य विकास की धारणा आर्थिक संसाधनों एवं ऊर्जा–स्रोतों के न्यायपूर्ण वितरण एवं उपयोग पर बल देती है। चूँकि विकसित देशों ने ही पर्यावरण को सर्वाधिक क्षति पहुँचाई है अतः न्याय की माँग है कि वे ही पर्यावरण को उन्नत बनाने में सर्वाधिक योगदान करें।

संपोष्य विकास की धारणा को हकीकत में बदलने के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

(1) जागरूकता–मानव समाज को जीवन में उन्नत समाज की आवश्यकता और महत्व को समझना होगा। वास्तव में जागरूकता ही किसी समस्या से बचाव का प्रथम उपाय है। व्यक्ति को विकास के विषय में अपनी

मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक सोच बदलनी होगी और उन्नत पर्यावरण के विषय में जनमत तैयार करना होगा।

(2) चूँकि आर्थिक संसाधनों पर जनसंख्या–विस्फोट का सर्वाधिक दबाव पड़ता है। अतः जनसंख्या विस्फोट को कारगर ढंग से रोकना होगा।

(3) हमें सम्पूर्ण विश्व को, सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तन्त्र को एक इकाई मानना होगा। इसे स्थानीय रूप में स्वीकार करने पर ही अनेक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। हमें यह समझना होगा कि पर्यावरण के किसी भाग की समस्या सम्पूर्ण विश्व की समस्या है। जैसे अनेक विकसित राज्य हरित गृह प्रभाव वाली गैसों का उत्सर्जन कर रहे हैं, किन्तु तापमान सम्पूर्ण धरती का बढ़ रहा है। पुनः, ओजोन नाशक गैसों का उत्सर्जन अधिकांश विकसित देश कर रहे हैं, किन्तु ओजोन परत के विनाश का दुष्परिणाम सम्पूर्ण विश्व को भुगतना होगा। अतः हमें पर्यावरण के प्रति समग्र दृष्टिकोण अपनाना होगा।

(4) नगरीकरण एवं ग्रामीण जनसंख्या का नगरों की ओर पलायन पर्यावरण समस्या का एक प्रमुख कारक है। अतः विकास की दिशा गाँवों की ओर मोड़नी होगी, नगरीय सुविधाओं का विस्तार गाँवों में करना होगा। इससे नगरों की ओर पलायन रूकेगा और नगरीय समस्याएं भी कम होंगी।

(5) औद्योगीकरण का विकास एवं पर्यावरण से गहरा रिश्ता है। औद्योगीकरण विकसित राष्ट्र का मानदण्ड है। एक आधुनिक समाज की पहचान भी औद्योगीकरण से होती है। पुनः औद्योगीकरण का भी नजदीकी सम्बन्ध पर्यावरण से है। जहाँ एक ओर औद्योगीकरण से विकास की गंगा बहती है वहीं उससे विसर्जित अपशिष्ट (Waste) गंगा को प्रदूषित भी करता है। हमारे भू, जल एवं वायु के, किंवा पर्यावरण के प्रदूषित होने का एक सर्वाधिक प्रभावी कारण औद्योगीकरण है। अतः राज्य को विधिक व्यवस्था करनीचाहिए कि ट्रीटमेन्ट प्लांट लगाये बगैर औद्योगिक इकाइयाँ न स्थापित की जाँय।

(6) किसी भी परियोजना के क्रियान्वयन का निर्णय लेने के पूर्व यह विचार करने की अति आवश्यकता है कि इससे पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी को क्षति तो नहीं पहुंचेगी। अर्थात् किसी परियोजना को व्यवहार में लाने के पूर्व उसके त्वरित लाभ की अपेक्षा दूरगामी हानि के विषय में भी विचार करना आवश्यक है।

(7) ऊर्जा के आर्थिकता पूर्ण उपयोग तथा ऊर्जा के नव्यकरणीय (Renewable) स्रोतों के विकास हेतु शोध एवं विकास (Research and Development) पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। यह भी आवश्यक है कि ऐसी तकनीक का निःशुल्क हस्तान्तरण अन्य देशों को किया जाय, क्योंकि यह मानवीय आधार से जुड़ा प्रश्न है।

संदर्भ :

1. पाठक, पी० तथा त्यागी एस० : भारतीय शिक्षा की सामाजिक–समस्याएँः प्र्यावरण प्रदूषण मानव जगत के लिए खतरा, साहित्य प्रकाश दिल्ली, 1986.
2. विश्वेश्वेरेय्या जी : समाज एवं पर्यावरण प्रदूषण एक विश्लेषण एम प्रकाश मन्दिर, आगरा, 1992.
3. व्यास, एच० : जनसंख्या विस्फोट और प्र्यावरण, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 1991.
4. विद्यानाथ, बी० : इनवायरमेन्ट, इनरजी हेल्थ, ज्ञान बुक प्रा०लि०, नई दिल्ली, 2000.
5. Zoysa, Uchita De : Sustainable consumption : An Asian Review, Centre for Environment & Development, colombo, Sri Lanka, 2007 accessed the website www.sltment ik in june, 2010.

***

साहसिक यात्रा वृत्तान्त 'आजादी मेरा ब्रांड'

डॉ. दयानिधि सिंह यादव *

सैर कर दुनिया के गाफिल, जिंदगानी फिर कहाँ?
जिंदगानी गर रही, तो नौजवानी फिर कहाँ।

मेरी समझ में दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है घुमक्कड़ी। घुमक्कड़ से बढ़कर व्यक्ति और समाज का कोई हितकारी नहीं हो सकता ।।।।।(1)

सदियों से यात्रा का प्रचलन हमारे समाज में रहा है। आदिमानव से लेकर डार्विन तक तथा कोलंबस और वास्कोडिगामा एक घुमक्कड़ ही थे जिन्होंने अपनी यात्राओ से दुनिया को एक उचाई दी। हमारे संत, महात्मा, ऋषि, महर्षी का प्राप्त ज्ञान किसी बंद कमरे का नही था बल्कि देश–दुनिया के भिन्न–भिन्न भागों में यात्रा के अनुभव से उपजा हुआ ज्ञान था। हमारे यहाँ हिंदी साहित्य में राहुल सांकृत्यायन, अज्ञेय, बाबा नागार्जुन, निर्मल वर्मा ये सभी मशहूर यायावर थे। राहुल सांकृत्यायन यात्रा को इतना महत्व देते थे कि युवाओं को उसका महत्व बताने के लिए घुमक्कड़ शास्त्र ही रच डाले।

यात्रा से हमे किसी भी देश–समाज, दुनिया के बारे में अनोखी जानकारी मिलती है। वहाँ का सामाजिक, सास्कृतिक, राजनीति, भौगोलिक जानकारी जो किताबों और चित्रों में देखते और पढ़ते हैं यात्राओं से हमे उनका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। यात्राओं से उस स्थान की संस्कृति जैसे रहन–सहन, वेश–भूषा, खान–पान इत्यादि से मुखातिब होने और घुलने–मिलने का अवसर मिलता है । हमारे ज्ञान समझ और अनुभव का दायरा बढ़ता है । विचारों और संस्कृतियों का आदान–प्रदान भी होता है । कई लोगो ने साहसिक यात्रायें करके एक समाज के बारे में दुसरे समाज को नई जानकारियाँ दी है।

हमारे भारतीय समाज में यात्रायें होती रही हैं किन्तु अन्धविश्वास और धार्मिक मान्यताओ के कारण समुन्द्र पार जैसी यात्राओं पर जाना निषेध कर दिया गया था जिसके कारण विदेश यात्रा में एक ठहराव सा आ गया था। बाद में इस अन्धविश्वास का विरोध करते हुए विद्वानों और यायावर ने दुनिया के दुसरे हिस्से में भी यात्रायें की। जहाँ इस तरह की धार्मिक निषेध हो वहाँ किसी स्त्री के यात्रा के बारे में सोचने का कोई सवाल ही नही उठता था। पुरुषों के यात्रा के बारे में हमें तो वर्णन मिलता है पर किसी स्त्री यात्री के बारे में हमे कम ही वर्णन मिलता है। हमारा सामाजिक ढ़ाचा इस प्रकार का है कि किसी स्त्री के स्वतंत्र और आजाद यात्रा के लिए इजाजत नही देता है। किन्तु सामाजिक मान्यता और सोच को तोड़ते हुए,

* एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, सकलडीहा पी० जी० कालेज, सकलडीहा, चन्दौली

अनुराधा बेनीवाल ने यूरोप की बहुत ही साहसिक यात्रा की है। सोचने की बात है कि लेखिका राज्य के उस हिस्से से आती हैं जहाँ आज भी सबसे कम लिंगानुपात के लिए जाना जाता है। लड़कियों को लड़कों से कमतर आँका जाता है। तरह–तरह की रूढ़ियां और परम्परागत सोच लड़की को घर की चहारदीवारी और घूंघट में देखना पसंद किया जाता है। वैसे माहौल और मानसिकता से बाहर निकलकर किसी लड़की का अकेले यूरोप घूमना साहसिक यात्रा नहीं कहा जायेगा तो क्या कहा जायेगा!

घुमक्कड़ी भी किसी जूनून से कम नहीं होता है और यह जुनून लेखिका में शुरू से अंत तक बना हुआ है। लन्दन, पेरिस, ब्रस्सल्स, कॉकसाइड, एम्स्टर्डम, बर्लिन, प्राग, ब्रातिस्लावा, बुडापेस्ट, म्यूनिक, इन्सबुक, बर्न इतने जगहों की यात्रा जिस बहादुरी के साथ किया गया है निश्चय ही आत्मविश्वास को बढ़ा देने वाली यात्रा है।

मनुष्य शुरू से ही जिज्ञासु प्रवृत्ति का प्राणी रहा है और यही जिज्ञासा उसे दुनिया के सैर करने का हौसला और प्रेरणा भी देती है। लेखिका के मन भी यही जिज्ञासा और प्रेरणा काम करती है। एक अनजान जगहों पर जाने से पहले लोगों के मन में तरह–तरह की शंकाएं और झिझक होती है। पैसे की चिंताएं भी होती है, लेखिका ने इन सभी चीजों को दरकिनार करते हुए, कोई बेहतर आर्थिक व्यवस्था न होने के बावजूद भी कुछ रुपए जुटाकर दुनिया घुमने की यह पहल की है जो वास्तव में चौकाने वाली है। लेखिका जब पुणे में पढ़ाई कर रही होती है तभी उसकी मुलाकात इटली की लड़की रमोना से होती है, उसका बिंदास और बेखौफ जीवन शैली लेखिका को प्रभावित करती है। वह अपने भारतीय संस्कार में पली–बढ़ी जहाँ कदम–कदम पर नैतिकता का घूट पिलाया जाता हो, स्वाभाविक है कि लेखिका को झकझोर देती है। रमोना का साथ उसके नैतिकता और संस्कार को उलट–पुलट देता है और यही से प्रेरणा भी मिलती है, दुनिया घुमने की लेखिका की प्रेरणा बनती है अनजान देश के अनजान शहर से आई हुई रमोना।

घूमना मनुष्य की प्रकृति का हिस्सा है। किन्तु इस घुमक्कड़ी को सार्थक कुछ ही लोग कर पाते हैं वरना ज्यादातर अपने गाँव और कुछ शहर सिमटकर अपनी जिन्दगी का अंत कर देते है वह कभी भी दुनिया के विस्तार और उसके रहस्य को नहीं जान पाते हैं। उनके जीवन में घर, परिवार और समाज चक्रव्यूह की तरह ऐसे घेरे रहता है कि वह शायद ही कभी इन बाधाओं को पार कर पाते हैं। हम ज्यादातर यही सोचते हैं कि घुमक्कड़ी करने वाले बहुत मोटी रकम वाले होते है, उनके पास बहुत पैसा होता है, उन पैसे को खर्च करने के लिए यात्रायें करते हैं। किन्तु लेखिका ने इस धारणा को तोड़ दिया है। वह मानती हैं कि पैसा जरुरी है किन्तु इतना भी जरुरी नहीं कि आप घूमने की हिम्मत ही न कर पाएं। उन्होंने लिखा है 'पैसा जरुरी है लेकिन इतना भी जरुरी नहीं जितना हमने बना

दिया है। ज्यादातर दुनिया घुमने वाले बैक–पैकर्स अमीर घरों में पले हुए लोग नहीं होते। वे बस घुमने की आग में पके होते हैं। उन्हें सस्ते से सस्ता ठिकाना और एक छत भर की तलाश होती है। वे स्वीमिंग पूल वाले होटल नहीं ढूढ़ते, वे पूरा दिन मूंगफली और केले पर भी बिता लेते हैं। उन्हें भारत में भी मिनरल वाटर की तलाश नहीं होती। वे ब्रांडेड कपड़े और बैग्स पर पैसे नहीं खर्चते। और ना ही पैसे जोड़–जोड़कर बुढ़ापे में आरामदेह जिन्दगी की ख्वाब बुनते हैं।' 2 (पृष्ठ 20)

यह सच है कि घुमने के लिए अपने अंदर आत्मविश्वास की बहुत जरूरत होती है यदि आत्मविश्वास न भी हो तो घुमने से व्यक्ति के अंदर जरुर पैदा हो जायेगा क्योंकि दूर अनजान जगहों पर आत्मविश्वास ही वह पूंजी है जिसके सहारे अनेक बाधाओं और दुर्गम जगहों को पार करते हुए आदमी बढ़ता जाता है। लेखिका ने आत्मविश्वास को भी रेखांकित किया है 'राजस्थान में बिताए उस एक महीने में मैं कई घुमक्कड़ों से मिली और उन सबमें जो बात एक जैसी थी, वह था उनका आत्मविश्वास। वह पैसों से खरीदा या सामाजिक रुतबे पर पला–बढ़ा आत्मविश्वास नहीं था, वह खुद को जानने से आया था। अपनी मानसिकता और अपने जज्बात, अपनी ताकत और अपनी कमजोरियां जानने से ही ऐसा आत्मविश्वास संभव है।[3] (पृष्ठ 21)

बिना तड़क–भड़क तथा कम खर्च करके इतने स्थानों की घुमक्कड़ी सचमुच आश्चर्यजनक लगता है। लेखिका ने टेक्नोलॉजी का सहारा लेकर तथा भारतीय समाज में जिसे 'जुगाड़' कहा जाता है, सचमुच इस कौशल का इस्तेमाल बहुत बेहतर ढंग से किया है। हर अगले पड़ाव से पहले किसी होटल में ठहरने के बजाय किसी के घर पर होस्ट तलाश करना और उस शहर को अपना लेना, यह एक घुमक्कड़ी का गुण बन गया है। किसी भी अजनबी जगहों पर यदि हम ज्यादा से ज्यादा घुलने–मिलने का प्रयास करते हैं तो उस जगह की बारीकी और गहराई से पता चलती है।

इस किताब का दूसरा पक्ष उस सफर को दिखाता है जो एक भारतीय लड़की को अपने घर की चौखट से पाँव निकालने से पहले तय करना पड़ता है । दुनिया भर में नाम रोशन करती भारतीय लडकियों को लडको की अपेक्षा कितनी ज्यादा मेहनत और संघर्ष करना पड़ता है, यह सब जानते है लेकिन इस बात को स्वीकारना आज भी लोगो को मंजूर नही। इस किताब में अनुराधा इसी ओर इशारा करती चलती हैं या कहूँ इशारा नही, चिल्लाती चलती है, अगर पढ़ने वाला सफेद कागज पर पड़े उन शब्दों को सुन पाए तो– ''मेरे समाज की लडकियाँ यूही बिना काम नही टहलती थी। लड़की का बाहर जाना बिना किसी काम के अकल्पनीय था। क्यों जाएगी लड़की बाहर ? क्या करने ? जरुर किसी से मिलने जाती होगी। बाहर के काम तो घर के लड़के लोग कर देते है। बिजली–पानी का

बिल भरना, घर का समान लाना, सब्जी भाजी लाना सभी तो लडकों के जिम्मे था। लड़कियां तो सिर्फ लिस्ट बनाती थी लेकिन लड़के अक्सर कह दिया करते थे, 'मैं जरा टहल के आता हूँ, 'बाहर जाके आता हूँ। 'ये शब्द मैंने लडकियों के मुंह से अपने गॉव के समाज में कभी नही सुने थे कि 'मैं जरा टहल के आती हूँ।' 'यूँ ही थोड़ी हवा खा के आती हूँ।'!''[4]

यह घुमक्कड़शास्त्र भारत की उन तमाम स्त्रियों के लिए स्वतंत्रता का घोषणापत्र–सा मालूम पड़ता है जो अपने एकतरफा संस्कार, धर्म, मर्यादाओ की बेडियो में कैद है। इस किताब को हम जितना पढ़ते जाते हैं, हमारे दिमाग के साथ–साथ पैर घुमने के लिए मचलने लगते है। अपने देश में जहाँ एक गली से मुख्य सडक तक आने के लिए कार में लिफ्ट लेने की हिम्मत नही होती, अनुराधा ने नौ–दस देश लिफ्ट लेकर एक जगह से दूसरी जगह घूम ली !

यूरोप के अलग–अलग देशो के ये शहर घुमने के बाद, भरपूर आजादी और अजनबियों के बीच सुरक्षा को आकंठ जी लेने के बाद भी इस घुमक्कड़ के मन में एक टीस गहराती जाती है। वह टीस है अपने देश, अपनी धरती, अपने शहर में, अपनी गलियों में सुरक्षित और बेपरवाह घुमने की।

अनुराधा की यह किताब दो तरह की यात्राओं का बयान है। एक यात्रा खुद के भीतर की, खुद को जानने और खुद तक पहुँचने की, इस भरी भीड़ में अपने स्पेस को खोजने की, और दूसरी बाहरी दुनिया को बेवजह देखने की। घुमक्कड़ी जीवन की सबसे बड़ी पाठशाला है। घुमक्कड़ो के लिए ना ही कोई शहर अनजाना होता है न ही कोई लोग, बस उन्हें तो घूमना है और नये–नये जगहों को देखना, अन्य सभ्यताओं को जानना, वहाँ का रहन–सहन, खान–पान और वहाँ के लोगो के बारे में जानना होता है।

सन्दर्भ :

1. राहुल सांकृत्यायन, घुमक्कड़शास्त्र, पृष्ठ सं– 1
2. अनुराधा बेनीवाल, आजादी मेरा ब्रांड, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2016 पृष्ठ सं 20
3. वही, पृष्ठ सं 21
4. वही, पृष्ठ सं 1

***

वाराणसी के ओलम्पिक खिलाडियों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

रमेश कुमार सोनकर *

भूमिका

ओलम्पिक विश्व स्तरीय खेल प्रतियोगिता है। ये गर्मियों और सर्दियों दोनों में आयोजित होती हैं। खेल के माध्यम से विश्व शांति की स्थापना इसका मुख्य लक्ष्य है। ये खेल अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर देश का गौरव बढ़ाने के लिए आवश्यक हैं। इनका हमारे जीवन में विशेष महत्त्व है। खेलों में प्रतिनिधित्व मन की एकात्मकता और शरीर का विकास करती है। इसके माध्यम से शारीरिक सुंदरता और अधिकतम स्वास्थ्य को अर्जित किया जा सकता है। खेलों में प्रतिनिधित्व सामाजिक लोकतंत्र को बढ़ावा देने में मदद करती है। इससे सामाजिक शांति और न्याय को प्रोत्साहन मिलता है। यह न केवल सामाजिक वर्गों को बल्कि राष्ट्रों के बीच के भी अवरोधों को हटाने में मदद करते हैं। खेलने से हम शारीरिक रूप से स्वस्थ तो रहते ही हैं तथा मानसिक रूप से भी हमारा मन स्वस्थ एवं प्रसन्न रहता है। जब हम खेलते हैं तो हमारा शारीरिक व्यायाम भी हो जाता है। मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विकास में खेलों का उद्‌भव एवं विकास निहित है। खेल शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रम के अन्तर्गत आते हैं। खेल का एक संस्था के रूप में व्यक्ति के समाजीकरण, व्यक्तित्व विकास तथा सामाजिक व्यवस्थापन में अपना महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

ओलम्पिक खिलाड़ियों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

अनंत राम भार्गव– 1948 लन्दन – कुश्ती

वाराणसी के गायघाट के रहने वाले पहलवान अनंत राम भार्गव ने 1948 लंदन ओलम्पिक में प्रतिनिधित्व किया। काशी के प्रमुख रईसों में शुमार रहे बाबू काशी प्रसादा भार्गव के सबसे बड़े बेटे अनंत राम भार्गव ओलम्पिक में भाग लेने वाले पहले बनारसी पहलवान थे। वकालत की पढ़ाई के साथ ही पहलवानी का शौक रखने वाले अनंतराम भार्गव 1948 के लंदन ओलम्पिक में भाग लेने के लिए आजाद भारत के नागरिक के रूप में बंबई से 28 दिनों की समुद्री यात्रा के बाद लंदन पहुंचे थे। लंदन ओलम्पिक में उन्होंने कुश्ती के वेल्टरवेट भार वर्ग में भारत का प्रतिनिधित्व किया था। यहां वह पदक से वंचित भले ही रहे मगर 1954 में मनीला में हुए फिलीपाइंस एशियन गेम्स में दिग्गज पहलवानों को हराकर उन्होंने चौथा स्थान हासिल किया था। 1947 में पहली बार आयोजित अंतर विश्वविद्यालयीय कुश्ती में उन्होंने बीएचयू के लिए स्वर्ण पदक जीता था। 1948, 50 और 54 की राष्ट्रीय कुश्ती स्पर्धा में उन्होंने पंजाब, सेना,

* शारीरिक शिक्षा विभाग, शिक्षा संकाय, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी - 221005

कोल्हापुर और बंगाल के पहलवानों को पटकनी दे स्वर्ण पदक जीता था। परिवार से मिली हिदायत की वजह से उन्होंने कभी दंगल नहीं लड़ा।

गुलजारा सिंह– 1952 हेलसिंकी, फिनलैण्ड– एथलीट

वाराणसी के चितईपुर के रहने वाले एथलीट गुलजारा सिंह (29 अक्तूबर 1920) ने 1952 हेलसिंकी ओलम्पिक में प्रतिनिधित्व किया। सामान्य कद काठी के मजबूत इरादों वाले इंसान थे सरदार गुलजारा सिंह। पंजाब के संगरूर में जन्मे इस ओलंपियन का काफी समय वाराणसी में बीता। 1935 में स्कूल गेम्स में खेल की दुनिया में कदम रखने वाले गुलजारा दो दशक तक भारत के शीर्ष मैराथन धावकों में शुमार रहे। 1946 में लौहार में हुए स्कूल गेम्स में उन्होंने भारत के लिए पदक जीता था। 1940 से 46 तक वह लगातार 3000 मीटर की दौड़ में देश के शीर्ष धावक रहे। इस दौरान उन्हें इंडोनेशिया में 1946 में हुए फैमिली गेम्स में भी भारत का प्रतिनिधित्व करने का मौका मिला। 1951 में 3000 मीटर की दौड़ में राष्ट्रीय कीर्तिमान बनाने वाले गुलजारा सिंह को 1952 के हेलसिंकी ओलम्पिक में भाग लेने का मौका मिला। यहां 3000 मीटर की दौड़ नौ मिनट 12 सेकेंड में तय कर वह नौवें स्थान पर रहे। वह एक बार फिर 1958 में सुर्खियों में आए, जब उन्होंने मैराथन में 2 घंटे 25 मिनट और 12 सेकेंड के समय के साथ नया राष्ट्रीय रिकार्ड बनाया। भारतीय रेलवे से जुड़ने के बाद उन्होंने 1958 में अखिल भारतीय अंतर रेलवे एथलेटिक्स चौंपियनशिप में हिस्सा लेते हुए पांच हजार मीटर, 10 हजार मीटर और मैराथन में रिकार्ड समय के साथ स्वर्णिम कामयाबी हासिल की। फरवरी 2002 में सड़क हादसे में गंभीर रूप से जख्मी होने के बाद उन्होंने दुनिया को अलविदा कह दिया। उनका परिवार अब भी वाराणसी के चितईपुर स्थित इंदिरा नगर कालोनी में रहता है।

लक्ष्मीकांत पांडेय – 1956 आस्ट्रेलिया – कुश्ती

वाराणसी के कोइरीपुर खुर्द के लक्ष्मीकांत पांडे (जन्म 1936) एक भारतीय पहलवान हैं। उन्होंने मेलबर्न 1956 के मेलबर्न ग्रीष्मकालीन ओलम्पिक में पुरुषों की फरीस्टाइल लाइटवेट स्पर्धा में भाग लिया। लक्ष्मी कांत पांडे ने प्रमुख चौंपियनशिप में निम्नलिखित फिनिश किए – 1958 राष्ट्रमंडल खेल 73.0 किग्रा फ्रीस्टाइल दूसरा।

मोहम्मद शाहिद– 1980 मास्को, 1984 लॉस एंजेल्स, 1988– सियोल– हॉकी

भारत के गौरवान्वित कर्म भूमि काशी (वाराणसी) उत्तर प्रदेश में एक महान खिलाड़ी मोहम्मद शाहिद का जन्म 4 अप्रैल 1960 ई. को वाराणसी में अर्दली बाजार मोहल्ले में हुआ। खेल की दुनिया में सम्मानित खिलाड़ियों में इनका नाम भी सर्वोपरि है। इनके पिता का नाम स्व. सलामतउल्लाह तथा माता का नाम श्रीमती हबीबन बीबी है। मोहम्मद शाहिद सात भाई और तीन बहन हैं जिनमें शाहिद सबसे छोटे है। इनके पिता सीधे आदर्शवादी विचारधारा के व्यक्ति थे। परिवार के आय का श्रोत व्यवसाय था। मोहम्मद शाहिद के पारिवारिक माहौल ही खेल का था। जिससे मोहम्मद शाहिद को

प्रेरणा मिली, और वह हॉकी खेल की ओर आकर्षित हुए। मोहम्मद शाहीद बेमिसाल हाकी के खिलाड़ी जो कि पूरे विश्व के नं. 1। मास्को ओलथ्मक 1980 में भारत की टीम का प्रतनिधित्व किया। उत्कृष्ट प्रदर्शन कर देश को स्वर्ण पदक दिलाया। एक उत्कृष्ट फारवर्ड के रूप में उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व याद किया जाता है। खेल के प्रत समर्पण उनकी प्राथमिकता थी। उत्तम ओलम्पिक खिलाड़ी बहुरूपी प्रतिभा के धनी एवं देश को गौरवादित करने के अपना शत–प्रतिशत योगदान कौशल का प्रदर्शन अति उच्च चरित्र था।

विवेक सिंह– 1988– सियोल– हॉकी

विवेक सिंह पूर्वोत्तर रेलवे के एक कर्मचारी थे। उन्होंने देश के लिए 200 अंतर्राष्ट्रीय मैच खेले और 1988 में सियोल ओलम्पिक, 1989 में जर्मनी में चौंपियंस ट्रॉफी, लाहौर विश्व कप और 1990 में बीजिंग एशियाई खेलों में भारत का प्रतिनिधित्व किया। विवेक सिंह, सर्वश्रेष्ठ रक्षक, जिन्दादिल, खेल और खेल के उत्थान के लिये प्रयत्नशील व्यक्तित्व एवं कृतित्व वाले। विवेक सिंह बचपन से ही प्रतिभाशाली छात्र खिलाड़ी थे। उनका हाकी के प्रति लगाव, समर्पण व अनुशासन अचम्भित करने वाला रहा। उनका अपने कनिष्क साथियों के प्रति बहुत ही प्रेमपूर्ण व्यवहार रहा। उनके लिये किसी भी हद तक जाने को तैयार रहते थे। हाकी उनके लिये एक खेल नहीं बल्कि एक जीवन था, जिसे उन्होंने अपने अल्पायु में भरपूर जीया। उन्होंने करीब 200 अन्तर्राष्ट्रीय मैचों में भारत का प्रतिनिधित्व कर प्रदेश, जिला व अपने घर का नाम अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर रोशन किया। वे कड़ी मेहनत, समर्पण और बलिदान के प्रतीक है। विवेक सिंह बहिर्मखि व्यक्तित्व, दयापूर्ण, दानपूर्ण, मैत्रीभाव, खेल के प्रति समर्पित, व्यवहार कुशल व्यक्तित्व के धनी। वर्ल्डकप, चैम्पियन ट्राफी, ओलम्पिक, एशिया गेम्स में राष्ट्र की ओर से खेलने का कार्य किया। इण्डियन रेलवे हाकी टीम के कैप्टन और नेशनल चैम्पियन रहे हैं। पूर्व भारतीय हाकी सदस्य राजन सिंह – हाकी के प्रति अत्यन्त संवेदनशील, हाकी ही इनकी पूजा थी। इनमें धर्म अनुशासन कूट–कूट कर भरा था। इनकी शिक्षा थी कि सफलता का आधार सकारात्मक सोच और निरन्तरर प्रयास करते रहना हे।

संजीव सिंह– 1988– सियोल– तीरंदाजी

वाराणसी के दारा नगर के रहने वाले संजीव सिंह (जन्म 18 नवंबर 1965) ने 1988 ग्रीष्मकालीन सियोल ओलम्पिक में तीरंदाजी में प्रतिनिधित्व किया। संजीव ने बिरला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, मेसरा, रांची से मैकेनिकल इंजीनियरिंग में बीई की डिग्री और एक्सएलआरआई, जमशेदपुर से बिजनेस मैनेजमेंट में डिप्लोमा प्राप्त किया। एक शौकिया तीरंदाज के रूप में शुरुआत करने के बाद, संजीव सिंह ने विभिन्न अंतरराष्ट्रीय खेल प्रतियोगिताओं में भारत के लिए कई पुरस्कार जीते। उनकी उपलब्धियों की सूची में एशियाई चौम्पियनशिप में 1 कांस्य, फेडरेशन कप इंटरनेशनल मीट

में 1 स्वर्ण और 1 कांस्य शामिल हैं। उन्होंने भारतीय तीरंदाजी टीम के कोच के रूप में भी काम किया है। उनके कुशल मार्गदर्शन में टीम ने भारत में दूसरी दक्षिण एशियाई तीरंदाजी चौंपियनशिप में 12 स्वर्ण और 10 रजत पदक जीते। संजीव टाटा हाउसिंग डेवलपमेंट कंपनी के साथ मुंबई में वाइस प्रेसिडेंट – बिजनेस एक्सीलेंस के रूप में काम कर रहे हैं। 1992 में, संजीव को भारतीय तीरंदाजी में उनके योगदान के लिए भारत सरकार द्वारा अर्जुन पुरस्कारप्राप्त हुआ। उन्हें 2007 में द्रोणाचार्य पुरस्कार भी मिला है।

राहुल सिंह– 1996– अटलांटा– हॉकी

ओलम्पियन राहुल सिंह एक प्रतिभाशील खिलाड़ी होने के साथ साथ खेल संयोजन, सहयोग की भावना, उच्च व्यक्तित्व, खेल, खिलाड़ियों एव खेल अधिकारियों के प्रति सादर प्रभाव पूर्ण व्यक्तित्व को व्यक्त करता है। राहुल सिंह न केवल खेल हॉकी में बल्कि अपने कार्यक्षेत्र, रीति–रिवाजों और केंद्रीय उत्पाद शुल्क में भी अपनी सराहनीय प्रतिभा और ज्ञान के लिए एक वास्तविक प्रेरणा हैं। वह अपनी उदारता और वफादारी के लिए प्रसिद्ध हैं। ओलम्पियन राहुल सिंह एक खिलाड़ी होने के साथ–साथ विवेक एकाडमी स्थापित कर मुफ्त में खिलाड़ियों को प्रशिक्षण दिलाते हैं। एकडमी के खिलाड़ी अपनी खेल उपलबियों के लिए पूरे देश में जाने जाते हैं। ओलम्पियन्स राहुल सिंह को मुम्बई के कस्टमविभाग में असिस्टेंट कमिश्नर बनाया गया है।

संजय राय– 2000– सिडनी– एथलेटिक्स

वाराणसी सुसवाही के संजय राय ने 2000 के सिडनी ओलंपिक में लंबी कूद में प्रतिनित्व किया। इनका जन्म 1 मई 1979 को हुआ। ये भारतीय ट्रैक और फील्ड एथलीट हैं, जो लंबी कूद स्पर्धा में माहिर हैं। आईएएएफ तियोगिता में उनकी व्यक्तिगत सर्वश्रेष्ठ कूद 2000 में जकार्ता में 2000 में एशियाई एथलेटिक्स चौंपियनशिप में 8.03 मीटर है, जहां उन्होंने रजत पदक जीता। उन्होंने केरल के टी। सी। योहनन को सफल बनाया है। बाद में अमृतपाल सिंह (8.08 मीटर) ने 2004 में नई दिल्ली के नेहरू स्टेडियम में 10 वीं फेडरेशन कप एथलेटिक्स चौंपियनशिप में अपना रिकॉर्ड तोड़ा।

राम सिंह यादव – 2012– लंदन– एथलेटिक्स

राम सिंह यादव (जन्म 7 नवंबर 1984) एक भारतीय मैराथन धावक हैं। राम ने 2012 के ग्रीष्मकालीन ओलम्पिक, लंदन में भारत का प्रतिनिधित्व किया। मैंने 2012 के मुंबई मैराथन में 2–16–59 का समय निकालकर बी योग्यता मानक (2–18–00) हासिल किया है, जो इस आयोजन में उनका सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन भी है। वह ओलम्पिक की मैराथन स्पर्धा के लिए क्वालीफाई करने वाले दूसरे भारतीय एथलीट हैं। यादव से पहले, शिवनाथ सिंह भारतीय एथलीट थे जिन्होंने मॉन्ट्रियल में 1976 के ग्रीष्मकालीन ओलम्पिक में भाग लिया था। राम भारतीय सेना में हवलदार हैं। काफी कम उम्र से ही

राम सिंह को दौड़ना पसंद था और उनका परिवार चाहता था, कि वह भारतीय आर्मी में भर्ती हो जाए। माता–पिता को अपने बेटे से एक अच्छी इनकम की उम्मीद थी उनके रनिंग की प्रतिभा को देखते हुए और राम ने सबसे पहले अपने परिवार को उस गरीबी से निकालने का काम किया वहीं उन्होंने अपनी मैराथन की ट्रेनिंग पुणे स्थित आर्मी स्पोर्ट्स इंस्टीट्यूट में की। साल 2008 में राम सिंह यादव को बी क्वालीफिकेश स्टैंडर्ड को सिर्फ कुछ सेकेंडो से गवाना पड़ा था, जिसके बाद वह साल 2009 के बिजिंग ओलंपिक में अपनी जगह को पक्का को पक्का नहीं कर सके थे। यादव ने फाइनल राउंड में 2 घंटे 18 मिनट 23 सेकेंड में पूरा करते हुए 10 वें स्थान पर खत्म किया था। वहीं साल 2012 में यादव ने मुम्बई मैराथन में फिर से हिस्सा लिया लेकिन वह इस इवेंट के जरिए लंदन ओलम्पिक में जगह बनाने में कामयाब नहीं हो सके। इस मैराथन को यादव ने 2 घंटे 16 मिनट 59 सेकेंड में पूरा करते हुए 12 वें स्थान पर खत्म किया था। राम सिंह यादव दूसरे भारतीय एथलेटिक खिलाड़ी हैं, जिन्होंने ओलम्पिक में मैराथन डिसीप्लिन के लिए क्वालीफाइ किया है।

नरसिंह यादव– 2012– लंदन– कुश्ती

बेहतरीन कुश्ती खिलाड़ी जिनकी शैली आक्रामक स्तर पर है। नरसिंह यादव का पूरा नाम नरसिंह पंचम यादव है। उनका जन्म 6 अगस्त 1989 में उत्तर प्रदेश के एक छोटे से गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम पंचम यादव और मां का नाम भूलना देवी है। नरसिंह के पिता मुंबई में दूध व्यवसायी हैं। नरसिंह यादव ने साल 2010 में 74 किग्रा के फ्रीस्टाइल एशियन चौंपियनशिप में स्वर्ण पदक जीता था। साल 2010 के कॉमनवेल्थ गेम गोल्ड में भी 74 किग्रा के मुकाबले में गोल्ड मेडल जीता था। साल 2011 में कॉमनवेल्थ चौंपियशिप में सिल्वर मेडल जीता था। साल 2014 के एशियन गेम्स में उन्होंने जापान के पहलवान को हराकर कांस्य पदक जीता था। साल 2012, नरसिंह पंचम यादव लंदन ओलिंपिक में अपनी पहली ही बाउट हार गए थे। 2012 में ही उन्हें महाराष्ट्र सरकार ने पुलिस डीएसपी का पद दिया था। वह अब भी इस पद पर हैं। प्रो–रेसलिंग लीग में बेंगुलरु योद्धाज के लिए खेलते हैं नरसिंह यादव। इस टीम का मालिकाना हक विराट कोहली और जेएसडब्ल्यू ग्रुप के पास है। नरसिंह यादव को जिंदल स्टील वर्क्स (जेएसडब्ल्यू) के स्पोर्ट्स ऐक्सिलेंस प्रोग्राम के तहत सपॉर्ट किया गया है। उनकी पहली बड़ी उपलब्धि 2010 के राष्ट्रमंडल खेलों में कांस्य पदक था। बाद में उन्होंने एशियाई खेलों में पदक जीते और 2015 में लास वेगास में विश्व चौंपियनशिप में पदक जीतकर भारत के लिए ओलम्पिक कोटा हासिल किया।

ललित उपाध्याय – 2020 – टोक्यो, हॉकी

टोक्यो ओलम्पिक 2020 में भारतीय हॉकी टीम में ललित उपाध्याय प्रतिनिधित्व किया। ये वाराणसी के शिवपुर क्षेत्र के छोटे से गांव भगतापुर के

एक अति मध्यम परिवार से आगे आए हैं। ललित के पिता ने छोटी सी कपड़े की दुकान चलाकर बेटों के सपनों को जिंदा रखा और उन्हें सच होते देख रहे हैं। दो भाइयों में ललित छोटे हैं और भारत पेट्रोलियम में अफसर हैं। बड़ा भाई भी हॉकी प्लेयर है। गांव के बच्चों को हॉकी खेलता देख प्रभावित हुए ललित के हाथ में पिता ने जब हॉकी पकड़ाई तो ललित ने पगडंडियों से ओलम्पिक तक का सफर बड़ी ही जद्दोजेहद से तय किया। यूपी कॉलेज में साई के कोच परमानंद मिश्रा ने हॉकी का ककहरा सिखाया, जिसके बाद पीछे मुड़कर नहीं देखा। उनका चयन 2018 में राष्ट्रीय हॉकी टीम में हुआ। ललित अब तक 200 से ज्यादा अंतर्राष्ट्रीय मैच खेल चुके हैं। कॉमनवेल्थ, एशियन और वर्ल्ड चौम्पियनशिप में भी अपने जौहर दिखाए हैं।

सन्दर्भ :

1. गोस्वामी, अर्चना (2013), ओलंपिक के खेल, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, पृ. 7–8.
2. पाण्डेय, रजनीश (2020), एकता और मित्रता का प्रतीक है ओलम्पिक खेल, मंथन, 15 जून, पृ. 2.
3. सिंह, अजमेर सिंह अन्य (2021) : शारीरिक शिक्षा तथा ओलम्पिक अभियान, कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली.
4. थानी, योगराज (2000), शारीरिक शिक्षा और खेल मनोविज्ञान, खेल साहित्य केंद्र –नई दिल्ली, पृ. 280–281.
5. गौतम, एस.के. (2010), मोहम्मद. शाहिद और भारतीय हाकी कला प्रकाशन वाराणसी, पृ. 47–49.
6. थानी, योगराज (2000), भारत के रत्न खिलाड़ी, स्पोर्ट्स पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 7–8.

***

प्रयोगवाद में प्रयोगशीलता

डॉ. स्नेह लता गुप्ता *

शोध–सारांश

हिन्दी कविता में प्रयोगवाद एक बहुचर्चित वाद है। अन्य काव्य धाराओं की भॉति प्रयोगवाद का जन्म भी युगीन आवश्यकताओं की पूर्ति में हुआ। अज्ञेय ने अपने 'प्रतीक' पत्र में 'प्रयोगवाद' नामक नये काव्यान्दोलन की पुष्टि की। अज्ञेय द्वारा सम्पादित 1943 में प्रथम तारसप्तक, दूसरा सप्तक 1951 में, तीसरा सप्तक 1959 और चौथा सप्तक 1979 में प्रकाशित हुआ। इन संकलनों में अज्ञेय ने स्वयं के समेत अठाइस कवियों की कविताओं का एक संग्रह निकाला जो अपने आप में अनूठी घटना थी। वाद के विरूद्ध विद्रोह, सत्य के प्रति निरन्तर अन्वेषण, विषय–वस्तु विषयक उदार दृष्टिकोण प्रयोगवादी काव्य के भावपक्ष की प्रमुख विशेषताएँ हैं। प्रयोगवादी कवि नैतिकता, उपदेश, धर्म, ईश्वर, भक्ति अथवा जन–जीवन के चित्रांकन के फेर में न पड़कर अपने जिये हुए जीवन के क्षणों को ही अभिव्यक्त करना पसन्द करते हैं। प्रगतिवाद में समाज मुख्य रहा और प्रयोगवाद में व्यक्तिवाद का प्राधान्य रहा। लघुमानव की पहली बार कविता में प्रतिष्ठा हुई। प्रयोगवाद ने भाषा, अलंकार, छन्द तथा शैली आदि के सम्बन्ध में भी नई प्रयोगशील दृष्टि अपनाई है। नयी बात को नये ढंग से नये रूप में प्रस्तुत करना प्रयोगवाद का मुख्य ध्येय रहा है।

शोधपत्र

हिन्दी कविता में '' प्रयोगवाद की चर्चा'' तार–सप्तक कविता–संग्रह 43 ई0 से शुरू हुई। ''प्रतीक'' पत्रिका जुलाई 46–52 ई0 से उसे बल मिला और ''दूसरा सप्तक'' काव्य–संग्रह से इसकी स्थापना हुई। ''प्रयोग तो हर युग में होते आये हैं किन्तु प्रयोगवाद नाम उन कविताओं के लिए रूढ़ हो गया है, जो कुछ नये बोधों, संवेदनाओं तथा उन्हें प्रेषित करने वाले शिल्पगत चमत्कारों को लेकर शुरू–शुरू में ''तार–सप्तक'' के माध्यम से सन् 1943 में प्रकाशन जगत में आईं और जो प्रगतिशील कविताओं के साथ–साथ विकसित होती चली गई और जिनका पर्यवसान नई कविता में हो गया।''[1]

उद्‌भव और विकास :

अन्य काव्यधाराओं की भांति प्रयोगवाद का जन्म भी युगपरिवेश की आवश्यकता की पूर्ति में हुआ। सन् 1940 के बाद हिन्दी कविता में नये दृष्टिकोण और नई साहित्यिक चेतना की मांग बढ़ी। सामाजिक चेतना प्रगतिवाद, गांधीवाद, राष्ट्रवाद आदि विभिन्न क्षेत्रों में बटी हुई टकराहट उत्पन्न कर रही थी। समन्वय की सामान्य भावभूमि नहीं बन पाई थी।

---

* हिन्दी विभागाध्यक्षा, गिन्नी देवी मोदी गर्ल्स पी. जी. कॉलज, मोदीनगर

उलझनों और अनिश्चय की स्थिति में कवियों ने विविध प्रकार के प्रयोगों की राह बनाई। 1943 में अज्ञेय ने 'तारसप्तक' का सम्पादन और प्रकाशन किया। इसमें सम्पादक ने सात कवियों को इसलिए एकत्र किया कि वे सभी नई ''राहों'' के अन्वेषी थे। 1946 में अज्ञेय द्वारा प्रकाशित 'प्रतीक' पत्र ने इस काव्यान्दोलन की पुष्टि की। दूसरा सप्तक 1951 में, तीसरा 1959 में तथा ''चौथा सप्तक'' 1979 में प्रकाशित हुआ। चारों सप्तकों का सम्पादन अज्ञेय ने किया है। 'प्रयोगवाद' हिन्दी कविता में एक जबरदस्त क्रान्ति के रूप में उभरकर आया। सर्वप्रथम अनेक कवियों की कविताओं का एक संग्रह अपने आप में एक अनोखी घटना थी। इससे पहले कवियों के अलग–अलग प्रकाशन छपते थे। अज्ञेय ने स्वयं के समेत अठाइस कवियों को एक मंच पर लाकर खड़ा कर दिया।

वाद के विरूद्ध विद्रोह प्रयोगवादी कवियों की पहली विशेषता है। ''दूसरा सप्तक'' की भूमिका में अज्ञेय ने स्पष्ट लिखा है, ''प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, न हीं हैं, अतः हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है, जितना हमें कवितावादी कहना।[2] इन सब के बावजूद भी 'प्रयोगवाद' नाम चल पड़ा और स्वयं प्रयोगवादी कवि उसे अपने लिए प्रयुक्त करते रहे। इन कवियों ने साहित्यिक ही नहीं, राजनीतिक और दार्शनिक सभी प्रकार के वादों का निषेध किया है। प्रयोगशील कवि यह मानते हैं कि किसी ''वाद'' को मानने से व्यक्तिगत व स्वतन्त्र चिन्तन में बाधा पड़ती है।

प्रयोगशील जीवन दृष्टि की दूसरी विशेषता ''सत्य के लिए निरन्तर अन्वेषण' भी कम क्रान्तिकारी नहीं। जहॉ पूर्व निश्चित ''वाद'' से बचने की कोशिश हो, वहा सत्य का निरन्तर अन्वेषण अनिवार्य हो जाता है। और निश्चय ही यह अन्वेषण हर एक को स्वयं करना पड़ेगा। कवि इस चिन्तन से प्रभावित है कि कविता की परम्परित स्थिति में कहीं खोट है। अतः काव्य सत्य की खोज ही इन तारसप्तक के प्रयोगवादी कवियों का प्रधान उद्देश्य है।

विषय–वस्तु के दृष्टिकोण से प्रयोगवादी पर्याप्त उदार और क्रान्तिकारी हैं। प्रयोगवादियों का कथन है कि कविता के विषय निःशेष नहीं हो गए हैं। नई परिस्थितियों ने नये विषय उपस्थित किये हैं। इस संदर्भ में बाबू गुलाबराय का कथन है – ''हमारे समय में तीन विचार–शक्तियां हैं। चार्ल्स–डार्विन, कार्ल, मार्क्स और सिगमंड फ्रायड। मार्क्स ने समाज के सन्दर्भ में नये विचार दिये। फ्रायड ने मानव की कामवासना–जन्य कुण्ठाओं के रहस्यों का उद्घाटन किया है। भौतिक विज्ञान और युद्धों ने नई समस्याओं और नये भावों को जन्म दिया है। उनकी अभिव्यक्ति के लिए नये साधन आवश्यक हैं। प्रयोगवादी कवि काव्य के कथ्य और शिल्प दोनों के सम्बन्ध में नवीनता चाहता है। इस प्रकार प्रयोगवाद ने कविता के क्षेत्र को नया विस्तार दिया है''।[3]

प्रयोगवादी कवि ने नये सत्य के शोध और प्रेषण के नये माध्यम की खोज की घोषणा की थी, वह सत्य मध्यवर्गीय समाज के व्यक्ति का सत्य था। अतः यह प्रश्न उठाया गया कि क्यों न हम उसी यथार्थ को अभिव्यक्ति दें जिसे हम भोगते हैं। ''व्यापक जीवन की बड़ी–बड़ी सैद्धान्तिक बातें और नैतिकता के बड़े–बड़े फलसफे ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में भले ही उपादेय हों, वे कला के क्षेत्र में कलाकार के स्व की ऑच में तपे बिना न तो खप सकते हैं और न उपादेय ही हैं।''[4] इससे स्पष्ट है कि प्रयोगवादी कविता ने जीवन के व्यापक अंश को नहीं, अपितु भोगी हुई स्वानुभूतियों को महत्व दिया है। निष्कर्षतः प्रयोगवादी नैतिकता, उपदेश, धर्म, ईश्वर, भक्ति अथवा जन–जीवन के चित्रांकन के फेर में न पड़कर अपने जिये हुए जीवन के क्षणों को ही अंकित करना पसन्द करते हैं। इस प्रकार प्रयोगवादी कविता में कवि अपना विषय स्वयं बना। प्रगतिवाद में समाज मुख्य रहा और प्रयोगवाद में ''व्यक्तिवाद'' का प्राधान्य रहा।

प्रयोगवादी साहित्यकार अस्तित्ववादी मनोवैज्ञानिकों के प्रभाव से बस वर्तमान को ही काव्य विषय बनाता है। इस कवियों ने यथार्थवादी दृष्टि के कारण काव्य में उपेक्षित अनेक प्राकृतिक वस्तुओं, यंत्रों आदि को भी स्थान दिया। यथार्थवादी दृष्टि प्रायः भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता की प्रतिष्ठा करती है। छायावादी कवियों ने कल्पना लोक में नारी के साथ साहचर्य स्थापित कर स्वयं को तृप्त कर लिया, किन्तु यथार्थ–आग्रही कवियों के लिए यह सम्भव नहीं था। उन्होंने कल्पना का रंगीन आवरण हटाकर दमित यौनवासनाओं के नग्नरूप को स्पष्ट कर दिया। फ्रायड का काम–सिद्धान्त इनके लिए प्रधान जीवन–दर्शन बन गया। छायावादी कवि ने सामाजिक भय से अपने मानवीय प्रेम को रहस्यात्मक परिधान पहनाया, लेकिन प्रयोगवादी कवि ने उसे स्वयं ही कहकर लोगों को अपनी साहसिकता और निर्भीकता से जैसे हतप्रभ कर दिया।

यथार्थवादी दृष्टिकोण के कारण प्रयोगवादी कवि कल्पना की उॅची उड़ाने भरन में रूचि नहीं लेता। उसकी आकांक्षाएॅ विराट और संवेदनाएं कोमल हैं। वह अपने चारों ओर खड़ी कठोर और अभेद्य दीवारों से टकराकर अपने में लौट आता है। और अपने को हारा हुआ, खण्डित और कुण्ठित समझने लगता है तथा इन्हें दूर करने के लिए वह लघु मानव की प्रतिष्ठा अथवा व्यक्तिवाद की स्थापना करता है। इस कविता में मानव की लघुता को प्रथम स्थान मिला है। वस्तुतः प्रयोगवादी काव्य में लघुमानव की एक ऐसी धारणा को स्थान मिला है जो इतिहास की गति को अप्रत्याशित मोड़ दे सकने की क्षमता की ओर इंगित करती है। अपने इसी दृष्टिकोण के कारण प्रयोगवाद ने बड़ी–बड़ी घटनाओं अथवा महापुरूषों के जीवन पर आधारित इतिवृत्तात्मक काव्य का निर्माण नहीं किया, उसने व्यक्ति के अन्तः संघर्षों, छोटी–से छोटी संवेदनाओं और मन की विभिन्न स्थितियों को लेकर छोटी–छोटी कविताएॅ लिखीं। ''लघुमानव को उसकी समस्त हीनता और महत्ता के संदर्भ में प्रस्तुत करके प्रयोगवादी कवि ने उसके प्रति सहानुभूतिमय दृष्टि से सोचने के लिए एक रास्ता खोला। मनुष्य अपनी समग्र दुर्बलताओं, हीनताओं, लघुताओं और महत्ताओं के बीच यथार्थ है। अतः यथार्थ मानव की सृष्टि के लिए इसके जटिल परिवेश को अंकित करना कलाकार का धर्म है।[5]

अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित होने के कारण प्रयोगवादी काव्य में ईश्वर, धर्म, नैतिकता, सामाजिक मूल्य आदि से सम्बन्धित सभी परम्परागत धारणाएं अस्वीकार्य हैं। डॉ0 धर्मवीर भारती का इस सन्दर्भ में कथन है ''प्रयोगवादी कविता में एक भावना है, किन्तु हर भावना के आगे एक प्रश्न चिन्ह् लगा हुआ है। यह प्रश्न चिन्ह उसी की ध्वनिमात्र है।'' गिरिजाकुमार माथुर का मत भी परम्परा विराधी हैं। पूर्वस्थापित तथा परंपरा स्वीकृत साक्षियों का श्रृद्धालु अनुसरण तथा अन्धानुकरण मध्ययुगीन सामन्ती और साम्प्रदायिक प्रवृत्ति का द्योतक है। यह प्रतिगामी वृत्ति मानव–आत्मा की विरोधी और कवि–विवेक के लिए प्रतिकूल है। स्वयं परीक्षित अनुभव की बौद्धिक ईमानदारी का अधिकार कवि को होना चाहिए, यह कवि कर्म के लिए अनिवार्य तत्व है।''[6]

शिल्पगत क्रान्ति :

अपने आरम्भिक रूप में प्रयोगवाद शिल्पगत आन्दोलन ही रहा है। अज्ञेय ने ''तारसप्तक'' के सम्पादकीय में कहा है ''जो व्यक्ति का अनुभूत है, उसे समष्टि तक कैसे उसकी सम्पूर्णता में पहुॅचाया जाये, यही पहली समस्या है जो प्रयोगशीलता को ललकारती है।[7] प्रयोगवादियों ने शिल्प के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये उन्होंने भाषा के सम्बनध में नई मान्यताएॅ दी। सामान्यतः यह माना जाता है कि कवि अपने भावों और विचारों को अभिवयक्त करने के लिए ही भाषा को समर्थ बनाता है। इसके विपरीत प्रयोगशील कवि की धारणा यह है कि भाषा के ही माध्यम से नये सत्य का अन्वेषण भी किया जाता है। और भाषा के ही माध्यम से उसे कला का रूप भी दिया जाता है। प्रयोगशीलता इसी अर्थ में काव्य के वस्तु और शिल्प दोनों का ही प्रयोग है। कहना न होगा कि हिन्दी काव्य शास्त्र के इतिहास में यह एक नई काव्य–दृष्टि थी।

प्रयोगवादी भाषा प्रयोग के बारे में इतने अधिक सजग हैं कि वे चाहते हैं इन्हें ''एक–एक शब्द सराह'' कर पढ़ा जाये। प्रयोगवादी कवि ने काव्य और गद्य की भाषा के अन्तर को दूर करने का भी प्रयत्न किया है। प्रयोगवादी कविता के आरम्भिक दिनों में भाषा में दीर्घाकार वाक्यों का प्रयोग होता था। आगे चलकर छोटे वाक्यों का प्रयोग करने की ओर रूझान हुआ। अंग्रेजी की वाक्य–विन्यास शैली का भी प्रभाव ग्रहण किया गया और कवियों ने निक्षेप वाक्यों का प्रयोग करने की पद्धति अपनायी। प्रयोगवादियों ने विराम चिन्हों, टेढ़ी तिरछी लकीरों को भाषा के स्थानापन्न के रूप में भी प्रयोग किया है।

छायावादी कविता ने अपने शब्दाडम्बर में बहुत से शब्दों और बिम्बों के गतिशील तत्वों को नष्ट कर दिया था। प्रगतिवाद ने सामाजिकता के नाम पर विभिन्न भाव–स्तरों एवं शब्द संस्कारों को अभिधात्मक बना दिया। प्रयोगवादी कवि ने कविता के लिए सर्वथा नया भाव–स्तर तथा नये माध्यमों का प्रयोग किया। नये माध्यम से रूप में उन्होंने परम्परा से भिन्न प्रतीकों, बिम्बों तथा उपमानों से हल करने की कोशिश की। परम्परागत उपमानों और प्रतीकों का उन्होंने पूर्णतः बहिष्कार कर दिया। क्योंकि उन्हें लगा कि–

''ये उपमान मैले हो गए हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच।''[8]

भाषा की दृष्टि से प्रयोगवादियों ने शब्दों की मानक–वर्तनी में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किये। अर्थ की दृष्टि से शब्द–शोधन, व्यापार जितना अज्ञेय ने अपने नेतृत्व में आने वाले कवियों और स्वयं के द्वारा सम्पन्न किया उतना हिन्दी साहित्य में किसी में नहीं। उन्होंने नई काव्य प्रतिमाओं का निर्माण किया।

छन्द–योजना के सन्दर्भ में प्रयोगवादी कवियों ने प्रायः अपने भावों की मुक्त अभिव्यक्ति के लिए मुक्त छन्द का ही सहारा लिया है। मुक्त छन्द को ही विशेष रूप से अपनाने के कारण प्रयोगवादियों ने इसमें नये–नये भाव स्तरों और नई–नई लयों के प्रयोग किये। छन्द के बन्धनों के साथ–साथ काव्य–रूप का बन्धन भी तोड़ दिया गया। छोटी से छोटी मिनी कविता तथा बड़ी से बड़ी लम्बी कविता भी प्रयोगवादी कवियों ने लिखी। ''प्रयोगवादी कविता में एक दल उन रूढ़ि–विरोधी लेखकों का है, जिन्होंने साहित्य के क्षेत्र में हर परम्परागत बात के साथ काव्य–रूपों का भी विरोध किया है। नूतनता की सृष्टि इनके दृष्टिकोण का एक अनिवार्य आग्रह है। नयी बात को नये ढंग से नये रूप में प्रस्तुत करना इनका मुख्य ध्येय है। अतः काव्य–रूपों के क्षेत्र में भी इन्होंने एक नवीन अध्याय प्रस्तुत कर दिया।''[9]

निष्कर्षः

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि प्रयोगवाद हिन्दी काव्य–शास्त्र के इतिहास में एक नई काव्य दृष्टि है। प्रयोगवादी कविता ज्ञात से अज्ञात और प्राचीनता से नवीनता की ओर बढ़ी। ''तारसप्तक'' का प्रकाशन हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक नये युग का प्रारम्भ है। इसमें कविता पुरातनता के निर्मोक को सही अर्थों में तोड़कर आगे बढ़ी और आगे चलकर स्वतन्त्रता के बाद की प्रमुख हिन्दी काव्य–प्रवृत्ति नयी कविता के रूप में परिणत हो गई।

सन्दर्भ :

1. हिन्दी साहित्य की इतिहास, सं0 डॉ0 नगेन्द्र पृ0 635
2. अज्ञेय, दूसरा सप्तक, पू0 6
3. हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, बाबूगुलाबराय, पृ0 267
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास–सम्पादक डॉ0 नगेन्द्र, पृ0 635
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास–सं0 डॉ0 नगेन्द्र, पृ0 636
6. नई कविताएँ–सीमायें, सम्भावनाएं
7. तारसप्तक – पृष्ठ–271
8. हरी घास पर क्षणभर, कलगी बाजरे की, पृ0 57
9. निर्मला जैन–आधुनिक हिन्दी काव्यः रूप और सरंचना, पृ0 4

***

तत्त्वसमाससूत्र के टीकाओं में प्रकृति तत्त्व का विवेचन

सदाशिव तिवारी *

'सांख्यदर्शन' में दो शब्दों का संयोग है'- 1. सांख्य एवं दर्शन सांख्य शब्द सम् उपसर्ग 'ख्या' प्रकथने धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ सम्यक् रूप से कथन करना अथवा सम्यग् रूप से विचार करना अथवा सम्यक् रूप से प्राप्त करना होता है। सांख्य शब्द का दूसरा अर्थ प्रकृति और पुरुष का विवेकज्ञान भी होता है, जो पुरुष को सांसारिक बन्धन से मुक्ति दिलाकर मोक्ष का कारण बनता है। दर्शन शब्द का अर्थ है- ज्ञान, आत्मज्ञान, परमात्मदर्शन ज्ञान, सम्यक्-ज्ञान अथवा सम्यक् विचार जो कि दर्शनार्थक अर्थात् प्रत्यक्षात्मक ज्ञानार्थक 'दृश्' धातु के करण अर्थ में ल्युट् प्रत्यय होकर सम्पन्न होता है। जिसके द्वारा विचार किया जाय अथवा जिसके द्वारा सम्यक् रूप से देखा जाय या यथार्थ रूप से देखा जाय, कुछ सात्त्विक ज्ञान प्राप्त किया जाय तथा जिससे सांसारिक बन्धन से आबद्ध व्यक्ति को छुटकारा मिले।

'[1]**ऋते ज्ञानान् न मुक्तिः**'। [2]**सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि।** और भी- [3]**ज्ञानं लब्ध्बा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।**

उपर्युक्त श्रुति स्मृति वाक्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि ज्ञानसे अज्ञान तथा मिथ्याज्ञान की निवृत्ति होना स्वाभाविक है तथा यही एकमात्र लक्ष्य दर्शनों का है।

भारतीय छः आस्तिक दर्शनों में सांख्य दर्शन का स्थान विशिष्ट तथा विषय प्रतिपादन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। भारतीय चिन्तन पद्धति बहुत व्यापक तथा विस्तृत है। इसके व्यापक तथा विस्तृत होने के दर्शनों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। सांख्य दर्शन जो वेदों से निरन्तर झरने के समान बहता हुआ आचार्यों के द्वारा अथक परिश्रम किये जाने से आज समुद्रवत् अगाध तथा अपरिमित दिखाई पड़ता है। सांख्यदर्शन के इतिहास के विषय में कुछ भी सरलता से कह देना सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है। क्योंकि यह वेदों से उदित हो रहा है तथा वेदों को अपौरुषेय के कोटि में रखा गया है। ''[4]**अपौरुषेयं वाक्यं वेदः।**''

इस प्रकार प्राचीनतम सांख्यदर्शन का नियमीकरण किया गया कपिल मुनि के द्वारा। सांख्यदर्शन के विषय यत्र-तत्र वेदों में उपनिषदों में रामायण के कथानकों में प्रचुरमात्रा में उपलब्ध हैं तथा अव्यवस्थित हैं। उन्हीं विषयों के सम्यक् प्रकार के नियमीकरण कपिल मुनि के द्वारा किया गया है। कपिल मुनि के इसी परिश्रम के कारण इनको सांख्य दर्शन के प्रवर्तक के रूप में देखा जाता हैं। सांख्य दर्शन की यह परम्परा कपिल के सूत्रों से लेकर आजतक विभिन्न भाष्यों तथा टीकाओं के चिन्तनों व्याख्यानों में दृष्टिगत होती हैं।

सांख्यदर्शन की व्यवस्थित परम्परा अथवा यो कहें गुरुपरम्परा शास्त्रों में इस प्रकार दिखाई देती है- ''**मुनिरासुरये आसुरिः** [5]**पञ्चशिखाय**'' इस प्रकार शास्त्रों के विश्लेषण से प्राप्त होता है।

सांख्यसूत्रों का सर्वप्रथम उपदेश कपिलमुनि ने आसुरि को दिया तथा आसुरि ने पञ्चशिख को यहाँ तक की गुरुपरम्परा शास्त्रों में सर्वतन्त्र स्वतन्त्रतया दिखायी पड़ती है।

---

* शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग महात्मा गांधी काशीविद्यापीठ वाराणसी

इसी कपिल मुनि के द्वारा सूत्रों के अङ्कुरित सांख्यदर्शन के पाश्चात्य आचार्यों ने अपनी कृतियों से अभिसिंचित कर पुष्पित किया तथा जन मानस तक पहुंचाया। इन्हीं कृतियों में एक कृति होती है। तत्त्वसमास सूत्र। तत्त्वसमास सूत्र कपिल के द्वारा आसुरि को दिया गया उपदेश है। ऐसा मत षिमानन्द का देखने को मिलता है।

तत्त्वसमास सूत्र का प्रथम सूत्र ''[6]**अष्टौ प्रकृतयः**''

तत्त्वसमास सूत्र की दृष्टिसे अगर हम देखें तो यहाँ आठ प्रकृतियाँ बताई गयी हैं। प्रकृति शब्द मूलतः कारण का वाचक है। अन्य ग्रन्थों में प्रकृति शब्द स्वतन्त्र रूप से प्रधान अथवा अव्यक्त के लिये प्रयुक्त हुआ है। सांख्यकारिका में तथा तत्वसमास सूत्र में बतायी गयी प्रकृति में सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो अन्तर है। सांख्यकारिकार प्रकृति-शब्द मात्र अव्यक्त के लिये प्रयोग में लाते हैं।

''[7]**मूलप्रकृतिविकृतिर्महदाद्याः प्रकृति विकृतयः सप्त।**
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः॥

ग्रन्थकार के मत में जो मूल प्रकृति है वह विकारों से रहित है तथा आदि कारण हैं। एक समानता है। सांख्यकारिका में तथा तत्त्वसमास सूत्र में ये जो आठ पदार्थ है प्रकृति, महत्, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये सभी सांख्यकारिका में भी तथा तत्त्व समास सूत्र में भी प्रकृति शब्द से कहे गये हैं। प्रकृति के साथ सांख्यकारिका में प्रकृति यानि अव्यक्त के इतर साथ पदार्थ विकृति के नाम से भी कहे गये हैं- ''प्रकृति विकृतयः सप्त''। इन्हीं आठ तत्त्वों को तत्त्व समास सूत्र में अपना प्रथम विषय बनाया।

सांख्यतत्त्व विवेचनकार षिमाननद ने व्यक्त तथा अव्यक्त पदार्थों का कथन किया-

[8]''**प्रकृतिर्बुद्ध्यहङ्कारौ तन्मात्रैकादशेन्द्रियम ।**
भूतानि चेति सामान्याश्चतुर्विंशतिरेव ते।''

प्रकृति, बुद्धि, अहङ्कार, शब्दतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र, गन्धतन्मात्र, श्रोत्रेन्द्रिय, त्वगिन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, वाक् पाणि, पाद, पायु उपस्थ तथा मन ये चौबीस तत्त्व साङ्ख्य दर्शन में अचेतन है। पद्य के माध्यम से इनका संक्षेप में कथन किया है।

तत्त्वयाथार्थ्यदीपन टीका के लेखक भावागणेश ने प्रकृति का लक्षण या विग्रह ऐसे प्रस्तुत करते हैं- ''[9]**प्रकर्षेण कुर्वन्तीति प्रकृतयः।**''

प्रकृष्ट रूप से जो कारणत्व का वहन करे वे प्रकृतियाँ है ऐसा टीकाकार का मानना है। इसके अनन्तर नाम के साथ आठ प्रकृतियों का कथन करते हैं- ''[10]**त्ताश्चअव्यक्तबुद्ध्यहङ्कारपञ्चतन्मात्ररूपाः।**'' आठ प्रकृतियों में टीकाकार अव्यक्त यानि प्रकृति के साथ बुद्धि, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप रस, गन्ध को स्वीकार करते हैं।

सर्वोपकारिणी टीका में प्रकृति[11] से ही सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि होती हैं। प्रलय काल में विश्व की सभी वस्तुयें प्रकृति में आकर मिल जाती हैं। यद्यपि प्रकृति एक हैं फिर भी प्रकृति में तीन प्रकार के गुण पाये जाते हैं। सत्त्व, रजस, तमस। सांख्यदर्शन में गुण का अर्थ तत्त्व अथवा द्रव्य है। गुण प्रकृति के तत्त्व हैं, क्योंकि उनका संयोग और वियोग होता है। त्रिगुण प्रकृति की सत्ता का निर्माण करते हैं। तीनों गुणों की साम्यावस्था को ही प्रकृति कहते हैं।

[1] बृहदारण्यकोपनिषद् 1-3-28
[2] गीता 4.36
[3] गीता 4.36
[4] अर्थसंग्रह
[5] सांख्यकारिका (भूमिका भा0)
[6] त0स0 सू0-1।
[7] सांख्यकारिका- का0 3
[8] सांख्यतत्त्वविवेचन प्रथम सूत्र
[9] तत्त्वयाथार्थ्यदीपन सूत्र 1
[10] तत्त्वयाथार्थ्यदीपन सूत्र।
[11] सर्वोपकारिणी टीका सूत्र।

***

प्राचीन भारत में कृषि एवं प्राद्यौगिकी का विकास - एक ऐतिहासिक अध्ययन

*रिंकू कुमारी**
*प्रो. (डॉ.) बदर आरा***

कृषि का विकास मानव इतिहास की एक क्रांतिकारी घटना है। आरम्भिक काल में मनुष्य को अनेक अवस्थाओं से गुजरना पड़ा। पूर्व–पाषाण काल में मनुष्य जंगली और शिकारी था। वह आहार–संचयन अवस्था में था, लेकिन उत्पादन नहीं करता था। वह सिर्फ पाषाण के औजारों से पशु–पक्षियों का आखेट करके खाता था। इसके अतिरिक्त वह खाने में कन्द, मूल, फल और जड़ों का भी प्रयोग करता था। मध्य पाषाण युग में मानव की आर्थिक दशा बहुत कुछ पूर्ववत ही रही, लेकिन तकनीकी में अवश्य ही विकास हुआ। वह अब भी शिकार करके अपना पेट भरा करता था, किन्तु उसके पाषाण के औजार पहले की अपेक्षा छोटे होते थे।[1]

विश्व सभ्यता के इतिहास में जब मानव नव पाषाण युग में प्रवेश किया तब से कृषि करना भी प्रारम्भ किया। अब तक फल तथा शिकार से प्राप्त मांस ही उसके जीवित रहने का एकमात्र आधार था। अभी तक वह आग से परिचित नहीं था। पत्थर को तोड़कर बनाये गये औजारों से कभी समूह में बड़े पशुओं का और कभी अकेले छोटे पशुओं का शिकार करता था। जनसंख्या का भी विकास क्रमिक गति से होता ही जा रहा था। अब संभव नहीं था कि केवल शिकार और फल पर ही लोग रह सके। समय में संभवतः वृक्षों से गिरने वाले बीजों, जो प्रायः इधर–उधर घूमने वाले जानवरों के पैरों से भूमि में दब जाते थे, उन्हें उगते देख तथा उनसे पुनः फल निकलते देखा। इससे उनके मन में दलदली भूमि पर बीजों को बिखेर कर अधिक अन्न पैदा करने की ललक पैदा हुई। इससे प्रतीत होता है कि यहाँ से कृषि का विकास यात्रा का प्रारंभ हुआ होगा।[2] क्योंकि अक्सर देखा गया है कि जो मानव समाज आखेट एवं संचय की अवस्था से आगे नहीं बढ़ पाये, वे सभ्यता का विकास नहीं कर सके।

इस तरह अब वह आहार–संचयन अवस्था में न रहकर उत्पादन अवस्था में पहूंच गया। उनके औजार भी पहले की अपेक्षा अधिक परिष्कृत थे, जिनका प्रयोग वह खेती के लिए भी करने लगा था। कृषि के साथ उसे इस समय मिट्टी के बर्तन बनाने की कला का भी ज्ञान हो गया। उसने पशुओं को पालना भी शुरू कर दिया। इसके अतिरिक्त उसने एक निश्चित

---

* शोध छात्रा, प्रा. भा. इ. एवं पु. विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना
** पर्यवेक्षक-विभागाध्यक्ष,प्रा. भा. इ. एवं पु. विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

स्थान पर बसना भी प्रारंभ कर दिया। नव पाषाण संस्कृति सबसे पहले ई॰पू॰ 7000 के लगभग पश्चिमी एशिया में विकसित हुई। भारत में भी इसके अवशेष मिले हैं।[3] किन्तु ई॰पू॰ 4000 से अधिक प्राचीन नहीं हो सकते। उत्तर भारत में कश्मीर में बुर्जहोर्न तथा झेलम नदी की घाटी में इसके अवशेष मिले हैं। दक्षिण भारत में ब्रह्मगिरि, संगलकल्लु, पिकलीहल, मास्की, नागार्जुन–कोंडा, उत्नूर, नरसिंहपुर और देकलकोट में यह संस्कृति प्रचलित थी। पूर्वी भारत में उड़ीसा के मयूरगंज जिले के कुचई नामक स्थान पर, आसाम के दओकजली, हडिंग और दओजली–पर्वत तथा झारखण्ड में सिंहभूम जिले की संजयघाटी के वादियों में इस संस्कृति के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इन स्थानों पर अन्य पदार्थ तो नहीं मिले हैं, किन्तु पाषाण के नुकीले तथा गदाशीर्ष औजार मिले हैं।[4]

पुरातात्विक उत्खननों से केवल इतना ही ज्ञात हो गया था कि लोगों को कृषि की जानकारी हो गई थी। इसके लिए उसने विभिन्न प्रकार के औजारों का प्रयोग करना शुरू किया, जैसे– शल्कल, क्रोढ़, खुरचनी और छोटे हस्त कुठार आदि। लेकिन उत्तर पाषाण काल में इस खानाबदोशों की जिंदगी में नया प्रभाव आया। इस कठिन दौर से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने पशुओं को पालना शुरू किया। एंजेल्स के अनुसार 'पशुओं के लिए चारे की आवश्यकता से उन्होंने चारा और अनाज उत्पादन शुरू किया जो पीछे मानव का भोजन बना।[5] अब वे लघु औजारों का प्रयोग करने लगे और वहीं अनेक धन्धे करने लगे और बर्त्तन भी बनाने लगे। इस तरह कृषि को विस्तार देने के लिए वे मिट्टी के बर्त्तनों का प्रयोग करने लगे। यह लघनाज (गुजरात) तथा पंचमढ़ी (मध्यप्रदेश) की खुदाई से स्पष्ट होता है।[6]

एस॰ए॰क्यू॰ हुसैनी के अनुसार पश्चिमी भारत में कृषक समुदाय का उदय वहाँ से प्राप्त उत्खनित सामग्रियों से ज्ञात होता है। बलुचिस्तान, मकरान, सिन्धु का भाग जो आज उजाड़ है कभी उपजाऊ था और नवपाषाण काल में वहाँ कृषि का श्रीगणेश हुआ।[7] एस॰ पिगोट ने कहा है कि इन्हीं पर्वतों और मरूस्थलों में कृषक समुदाय जिन्हें आज तक जाना जाता है, पहचाने जा सकेंगे।[8] गुजरात की खोज से पता चलता है कि यहां के लोग जंगली अनाजों को कूटते–पीसते थे, क्योंकि यहाँ बहुत सी पाषाण–चक्कियाँ मिली हैं। ये चक्कियाँ बहुत छोटी हैं। परन्तु इनमें कहीं भी अनाज के अवशेष सटे नहीं मिले हैं। इस तरह से कहा जा सकता है कि अब मानव खाद्य पदार्थों को इकट्ठा करने तथा उपजाने के बहुत करीब पहुँच चुका था।[9] लेकिन उस समय के कोई भी हल उत्खनन के दौरान नहीं मिले हैं। ऐसा लगता है कि लकड़ी के बने होने के कारण वे नष्ट हो गये थे। लेकिन हल को छोड़कर अन्य कृषि के औजारों का ज्ञान तो मिलता ही है। इस समय अनाजों का उत्पादन बहुतायत से होने लगा था, तभी तो तौलने के लिए बटखरे की तरह के चपटे पत्थर खुदाई से मिले हैं। अनेक बर्त्तन भी खुदाई से प्राप्त हुए हैं। ऐसे बर्त्तनों में तस्तरी, कटोरा तथा सुराही

आदि प्रमुख हैं। ये बर्त्तन काले, लाल, चित्रित आदि विभिन्न रंगों के हैं। लगता है कि कृषि से उत्पन्न सामग्रियों का प्रयोग उस समय के लोगों द्वारा किया जाता रहा होगा। इस समय के लोग आग जलाना सीख चुके थे। फिर भी इस समय कृषि निश्चित रूप से प्रकृति पर ही निर्भर रही होगी, क्योंकि किसी भी कृत्रिम साधन का अवशेष नहीं देखने को मिला है। फिर भी इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि इस समय वे पत्थर की कुदालों (हो) और खोदने के डंडे से जमीन खोदते थे। डंडों में एक ओर एक से आधे किलोग्राम वजन के पत्थर के छल्ले लगे रहते थे। पतर के पॉलिशदार औजारों के अलावा वे सूक्ष्म पाषाण फलकों का भी प्रयोग करते थे।[10] निःसन्देह, कांस्य काल की सभ्यताओं का उदय एवं विकास के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि नव पाषाण काल की अर्थव्यवस्था ने प्रस्तुत की। सिंधु एवं उसकी सहायक नदियों के उपजाऊ मैदान में भारत की कांस्य कालीन सभ्यता का उदय हुआ, 'सिन्धु घाटी' की सभ्यता, 'सैन्धव सभ्यता' अथवा 'सिन्धु संस्कृति' से अभिहीत किया गया है। सैन्धव अर्थव्यवस्था कृषि मूलक प्रतीत होती है।

भारत में कृषि के प्राचीनतम साक्ष्य कतिपय प्राक्हड़पाई नवपाषाण संस्कृतियों के सन्दर्भ में ही मिले हैं। इनमें दक्षिणी बलूचिस्तान का मेहरगढ़ नामक स्थान विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। पाकिस्तान के तरकई किला, डेरा इस्माईल खान तथा बन्नु क्षेत्रों में सिन्धु संस्कृति के प्रारंभिक काल में कई किस्म के गेहूँ तथा जौ की खेती किये जाने के प्रमाण मिले हैं।[11]

सिन्धु घाटी सभ्यता के समय कृषि की बड़ी उन्नति हुई। वस्तुओं के अधिक उत्पादन के बिना नगरीय सभ्यता का उदय नहीं हो सकता था। यहाँ की खुदाई में पाषाण की रची हुई अनेक शिलाएँ मिली हैं जिनसे प्रकट होता है कि खेती बड़ी मात्रा में होती थी। वहाँ से प्राप्त कुछ ठिकरों पर हरे–भरे पेड़–पौधों, लता–गुल्म तथा उत्पादन के दृश्य के मिलने तथा कुबड़दार बैल का बहुतायत से होना हल–बैल के द्वारा कृषि की स्थिति का परिचय होना बताता है। खेती के लिए सिंचाई की आवश्यकता वहाँ नहीं पड़ती होगी, क्योंकि नदी के बाढ़ तथा वर्षा से उर्वरता के लिए पर्याप्त जल प्राप्त हो जाता होगा। फिर भी नदी में बांध बनाकर पानी खेतों में लाते होंगे। कृषि के लिए पत्थर तथा कांसे के बने उपकरणों का प्रयोग किया जताा था। कालीबंगा से हल का फाल तथा हल से जोते गये खेत का प्रमाण मिला है। यह संसार का पहला जोता हुआ कृषि भूमि है।

ताम्र–पाषाण युग में पीतल, टीन और ताम्बे के प्रयोग से कृषि में अत्यधिक वृद्धि हुई। अधिक उत्पादन से लोगों में आपसी सम्बन्ध स्थापित हुए और पाषाण युग का एकाकीपन समाप्त हुआ। नवदाटोली की खुदाई से पता चलता है कि इस युग में मालवा के लोग विभिन्न प्रकार के अन्न–पदार्थों के बारे में जानकारी रखते थे। वे गेहूँ का अधिक प्रयोग करते थे। वे विभिन्न प्रकार के दालों को भी काम में लेते थे, जैसे– मसूर, उड़द, मूंग और मोठ। लेकिन इस समय तक इस बात का पता नहीं चलता कि वे

किन साधनों से खेती करते थे, क्योंकि हल के अवशेष प्राप्त नहीं हुए हैं। संभव है, वे पाषाण के गदा शीर्ष का प्रयोग खेती के लिए करते थे। अनाज को वे पाषाण की हंसिया से काटते थे। यहाँ पर ऐसे औजार हजारों की संख्या में मिले हैं, अनाज को आटे के रूप में पीसा जाता था, किन्तु उसको पत्थर की रची हुई शिला में लोड़ी से गीला या सूखा कूटा जाता था। ऐसी शिलाएँ यहाँ पर बहुत मिलती है।[12] निश्चित रूप से इस काल में कृषि कार्य में प्रस्तर एवं ताम्रनिर्मित उपकरणों का प्रयोग किया जाता था। कालीबंगा के प्राक् सैन्धव सभ्यता के स्तरों से जूते हुए हल से एक खेत का साक्ष्य मिले हैं। सैन्धववासी रबी व खरीफ दोनों ही फसलों से परिचित थे। रबी में जौ, गेहूँ, मटर, सरसों आदि की कृषि के साक्ष्य उपलब्ध हैं। खरीद में धान, तिल, कपास की खेती होती थीं।

ऋग्वैदिक काल में कृषि तथा पशुपालन आर्यों के मुख्य धंधे थे। इस समय तक कृषि में काफी विकास हो चुका था। किसान भूमि को जोतने में हल का प्रयोग करते थे, जिसे बैल खींचते थे। इसके पश्चात् जुते हुए खेत में बीज बोया जाता था। पके हुए अनाज को हँसिये से काटकर छोटे–छोटे गट्ठों के रूप में संग्रह करने के पश्चात् अन्न भंडार में लाने का वर्णन है, जहाँ पर उसे कूट–पीसकर वायु के द्वारा अलग किया जाता था।[13] खेतों की सिंचाई के लिए वे जलकूप यानी कुआँ और नहरों का प्रयोग करते थे।[14] इस तरह ऋग्वैदिक लोगों को खेती की बेहतर जानकारी थी। ऋग्वेद के प्राचीनतम भाग में फाल का उल्लेख मिलता है। हालांकि वह फाल शायद लकड़ी की रही होगी। उन्हें बोआई, कटाई और दावनी का ज्ञान था। विभिन्न ऋतुओं के बारे में भी जानकारी थी, जिससे खेती करने में सुविधा होती थी।

उत्तर वैदिक काल में जैसा कि अथर्ववेद, वाजसनेयी, मैत्रायणी, तैत्तिरीय और काठक संहिताओं से पता चलता है कि हल में छः, आठ, बारह और चौबीस बैल तक लगाये जाते थे। इससे यह सिद्ध होता है कि हल काफी बड़ा और भारी होता था। उपज को बढ़ाने के लिए खाद के महत्व को भी समझते थे जो पशु के गोबर से तैयार होती थी। बाजरी के अतिरिक्त वे गेहूँ, चावल, दाल और सेम भी पैदा करते थे। कृषि को कीड़ों, टिड्डियों, पक्षियों तथा पशुओं से नुकसान का प्रायः डर बना रहता था। सूखा तथा अतिवृष्टि का भी भय था। इससे बचाव के लिए किसान यंत्र में भी विश्वास करते थे।[15] स्पष्टतः वैदिक काल में सिंचाई के लिए कृषकों को अधिकांशतः वर्षा पर निर्भर रहना पड़ता था। वैदिक कालीन कृषक सम्भवतः बीज संग्रह एवं उनकी अंकुरण शक्ति को उत्तम पैदावार हेतु कायम रखने के लिए पर्याप्त सचेत थे। खेतों को उपज बढ़ाने के लिए खाद का उपयोग करते थे। संभवतः वैदिक कृषकों को रासायनिक उर्वरकों की जानकारी नहीं थी।

वेदोत्तर काल की अर्थव्यवस्था में कृषि का सर्वप्रमुख स्थान हो गया था। इस समय कृषि भूमि का पर्याप्त विस्तार किया गया था और कृषि की विधि में भी विकास हुआ था। दीघनिकाय के एक सन्दर्भ में कृषकों की सहायता करने पर बल दिया गया है।[16] अंगुत्तर निकाय में खेतों के कई प्रकार बताए गये हैं। बौद्ध भिक्षुओं की तुलना उत्तम खेत से, उपासकों की मध्यम कोटि के खेत से और ब्राह्मण एवं अन्य धर्मों के संन्यासियों की निम्न श्रेणी के खेत से की गई है। इसी ग्रंथ के खेत्तसुत्त[17] में उन 8 प्रकार के खेतों का भी उल्लेख है, जिनमें कम उत्पाद होता था। उनमें विसम, चट्टानों, पत्थरों एवं लवण से युक्त और गहरी जुताई, पानी के निकास, पानी के अन्तर्गत एवं मेड़ रहित खेतों को रखा गया है। इसी सन्दर्भ में 8 उत्तम प्रकार के खेतों, सिंचाई तथा अच्छे कृषक की विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया है।

छठी शताब्दी ई॰ पू॰ में प्रचलित कृषि की जानकारी हमें मूलतः बौद्ध ग्रंथों से होता है। इस काल का मुख्य व्यवसाय कृषि था। राष्ट्र की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान थी। कृषि के अनुकूल भूमि को 'जातपथीवी' और प्रतिकूल भूमि को 'अजातपथीवी' कहा गया है। जातको में उपजाऊ भूमि की तुलना 'मधुमक्खी के छत्ते से की गई है। इस काल में खेतों का नामकरण उसमें बोयी गई फसलों के आधार पर किया जाता था, जैसे–सालिखेत (धान का खेत), यव खेत (जौ का खेत), अच्छू खेत (गन्ने का खेत), तिण खेत (घास का खेत) इत्यादि। जातकों से स्पष्ट होता है कि लोहार कृषि के लिए उपयोगी उपकरण, जैसे–हल के फाल, फावड़ा, कुल्हाड़ी, हंसिया आदि बनाते थे। खेतों के खुदाई के उपरान्त बीज बपन का कार्य किया जाता था।

इस तरह, छठी शताब्दी ई॰पू॰ में खेती के काम में लौह उपकरणों का प्रयोग किया जाने लगा था और हल में लोहे के फाल लगाए जाने लगे थे जो सख्त जमीन तथा गहरी जुताई के लिए विशेष रूप से उपयोगी थे। पाणिनी की अष्टाध्यायी में 'अयोनिकारकुशी' शब्द लोहे के हल–फाल के लिए आया है।[18] सुत्तनिपात में फाल को दिन भर तपाए जाने के उपरांत पानी में डाले जाने का विवरण है। परन्तु इस काल के अभी तक कुछेक लौह फाल ही प्राप्त हुए हैं। एटा जिला के जखीरा नामक स्थान से मिले लौह फाल की तिथि 500 ईसा पूर्व निर्धारित की गई है। वैशाली, कौशांबी, रोपड़ तथा चिरांद से एक–एक लौह फाल प्राप्त हुए हैं। इतने कम लौह फालों की प्राप्ति से संकेत मिलता है कि लोहे के प्रयोग में पर्याप्त वृद्धि हो जाने के बावजूद अभी भी अधिकांश हल–फाल सख्त लकड़ी के ही बनते थे। फावड़े और कुदाल का प्रयोग फाल के पूरक के रूप में किया जाता था। कुदाल से जीवन–निर्वाह करने वालों को बौधायन ने बौद्धकालिक कहा है।[19] प्राक्मौर्य काल के कुछ कुदाल प्राप्त हुए हैं।

मौर्ययुगीन अर्थव्यवस्था में कृषि की प्रमुखता मेगास्थनीज एवं कौटिल्य के विवरणों से प्रमाणित है। कौटिल्य ने कृषि को अन्य व्यवसायों में

से इसलिए श्रेष्ठ माना क्योंकि इससे मिलने वाले लाभों के संबंध में बहुत कुछ निश्चितता होती है। उनके अनुसार वही राज्य अच्छा है जहाँ पर्याप्त कृषि भूमि, खाने, वन एवं पानी के स्रोत हों, क्योंकि ये राज्य की शक्तियाँ हैं। कौटिल्य ने अनाजों के उत्पादन को प्रोत्साहन देना राजा का कर्त्तव्यों में शामिल किया है।[20] अर्थशास्त्र में यह भी कहा गया है कि निम्नवर्ग (जाति) के लोग ही अधिकांशतः कृषि एवं इससे सम्बन्धित कार्य करते हैं, इसलिए जिस राज्य में उच्च वर्ण के लोगों की अपेक्षा निम्न जाति के लोग अधिक संख्या में होते हैं, वहाँ की अर्थव्यवस्था बेहतर होती है। कृषि के विकास में वैश्य व्यापारियों के महत्वपूर्ण योगदान की चर्चा की है।

मौर्ययुगीन साहित्यों में भी कृषि–सम्बन्धी अनेक उल्लेख मिलते हैं। स्थानों के आधार पर विविध उपज को तीन भागों में बांटा जा सकता है– क्षेत्रिक, आरामिक एवं आटविक। कृषि का प्रधान औजार हल था जो कुलिय और नगल के नाम से प्रसिद्ध था। हल के अतिरिक्त कृषक खोदने के लिए कुदाल, अनाज काटने के लिए 'असिएहि' तथा अनाज साफ करने के लिए 'सुप्पकत्तर' का प्रयोग करते थे। साफ करने के पश्चात् अनाज संवाहपल्लग, कुम्भी, मुख, आचारादि विधि से संग्रहालयों में एकत्रित किया जाता था।[21]

तत्कालीन जैन साहित्य में अनेक प्रकार के अन्न पदार्थ, फल, फूल और वृक्षों का उल्लेख है। इनमें गोधुम, यव, ब्रीही, शालि, माष, चणक, मुद्ग अच्छु (गन्ना), कपास, खोभ, उप्णिय, सण, लवंग, पिप्पल, सिगवेर, तम्बोल आदि प्रमुख हैं। उद्यानों में अनेक प्रकार के फल– आम्र, अनार, अंगूर, सेव, अंजीर, खजूर आदि तथा फूल– मल्किा, यूथिका, चंपक, जाति, मोगर, वासंती, कुंद आदि विविध लताएँ[22] तथा वृक्षों में आम, दाड़िम, जम्बू, अशोक, पलाश, बकुल, विल्ब, वट, चंप्ल, कपित्य आदि उपजाये जाते थे।

स्पष्टतः मौर्य काल में कृषि के क्षेत्र में वैज्ञानिक पद्धति का विकास हो चुका था। इस काल में खेती के लिए मुख्य रूप से हलों तथा बैलों का प्रयोग किया जाता था। उत्तम कृषि के लिए जुताई का बहुत महत्व था। जोती जाने वाली भूमि को 'उर्वरा' या 'क्षेत्र' कहा जाता था। हल में छः, आठ, बारह एवं चौबीस बैल तक जोते जाते थे। जिससे हल के भरी एवं विशालकाय तथ गहरी जुताई अथवा कठोर भूमि को तोड़कर जोतने का आभास मिलता हैं कृषक सामान्यतः हल में लोहे का फाल प्रयोग करते थे। लोहे के फाल के अतिरिक्त गैंडे के नुकीले सींग का भी प्रयोग किया जाता था। खेतों में उर्वर (खाद) डालने की प्रथा थी। प्रायः कृषक प्राकृतिक खाद का प्रयोग करते थे।

गुप्तकाल में भी कृषि परम्परागत साधनों पर आधारित थी। इस समय कृषि का महत्व काफी बढ़ चला था और कृषि भूमि का विस्तार भी हुआ था। नारद ने यद्यपि काला धन कमाने के सात साधनों में कृषि को भी शामिल किया है, परन्तु स्वयं नारद तथा गुप्त युगीन अन्य लेखकों के विवरणों से अर्थव्यवस्था में कृषि का प्रमुख स्थान भलीभांति प्रमाणित है।

वराहमिहिर ने कृषि को वार्ता (कृषि, पशुपालन एवं व्यापार) में प्रमुख स्थान दिया है। वहीं कालिदास ने भी इसे राष्ट्रीय समृद्धि का एक महत्वपूर्ण साधन माना है। वायुपुराण के अनुसार वैश्य वह है जो कीनाशवृत्ति अर्थात् कृषि कर्म द्वारा जीवन निर्वाह करे।[23]

गुप्त काल में जुताई के लिए उत्तम प्रकार के लोहे के फालयुक्त हल प्रयुक्त होते थे। ईश्वर दत्त कृत 'धूर्त विरसंवाद' में भारी फालों वाले हलों का उल्लेख है। वृहस्पति ने भी हल और फाल का वजन बताया है। हल आठ पला लोहे का होता था। फाल के लिए बताया गया है कि वह आठ अंगुल लम्बा और चार अंगुल चौड़ा होना चाहिए। अमरकोश में हल को लांगल, हल, गोदारण एवं सीर तथा हल के फाल को फल, निरीश, कुटक, फाल और कृषक कहा गया है। सिंचाई के साधनों में वापी, तगाड़, दीर्घिका और उद्पान अथवा कूप का उल्लेख है।[24] इसके अलावे ऐसे तकनीकी की भी जानकारी दी गई है, जिसके द्वारा जल–मार्ग द्वारा अधिक जल बाहर निकाल दिया जाता था। इसे 'जल निर्गमा' भी कहा जाता था।

निःसन्देह, कृषि का आविष्कार मानव इतिहास में एक क्रांतिकारी घटना थी, जिसमें तकनीकी ने उसके विकास में काफी योगदान दिया, क्योंकि तकनीकी आविष्कार समाज व्यवस्था की ही उपज होती है। इस तरह ऐतिहासिक काल में लोहे के उपकरण के प्रयोग में प्रयुक्त तकनीकी ज्ञान हो जाने से कृषि के क्षेत्र में गुणात्मक परिवर्तन हुआ। लोहा अन्य धातुओं की तुलना में बहुत ही सस्ती धातु थी और उससे बने उपकरणों की दृढ़ता तथा उसकी धार का तीखापन प्रस्तर या किसी अन्य धातु के उपकरणों में होना संभव नहीं था। लोहे के उपकरण निर्माण की तकनीकी एक बार हासिल कर लेने के पश्चात् गंगा घाटी के गहन वनों की व्यापक स्तर पर सफाई करना संभव हुआ। कृषि कार्य में लोहे के फाल तथा अन्य उपकरणों के उपयोग से अधिशेष अन्न का उत्पादन हुआ जिससे जनसंख्या में वृद्धि हुई। शिल्प और दस्तकारी के विकास तथा श्रम विभाजन के कारण जीवन पद्धति में परिवर्तन आया एवं नगरों का विकास हुआ। कृषि का निरन्तर विकास आज भी जरूरी है, क्यांकि कृषि इक्कीसवीं सदी की अहम् जरूरत भी बन गई है।

संदर्भ :

1. कैलाशचन्द्र जैन; प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएँ, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल (पंचम संस्करण), 1995, पृ॰–132
2. शिवस्वरूप सहाय; प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, (द्वितीय संस्करण), 1998, पृ॰–318
3. एच.डी. संकालिया; प्री हिस्ट्री एंड प्रोटो हिस्ट्री इन इंडिया एंड पाकिस्तान

4. कैलाशचन्द्र जैन; पूर्वोद्धृत, पृ॰—132
5. एफ॰ एंजेल्स; द ओरिजिन ऑफ द फैमिली, प्राइवेट प्रोपर्टी एंड द स्टेट, कलकत्ता, 1943, पृ॰—228
6. वी.पी. सिन्हा एवं शिवस्वरूप सहाय; प्राचीन भारत का इतिहास, वाराणसी, 1981, पृ॰—17
7. एस.ए.क्यू. हुसैनी; इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ॰—17
8. एस. पीगॉर; प्री—हिस्टोरिक इंडिया
9. वी.पी. सिन्हा एवं शिवस्वरूप सहाय; पूर्वोद्धृत, पृ॰—18
10. शिवस्वरूप सहाय; पूर्वोद्धृत, पृ॰—319
11. अल्चिन; द वर्थ ऑफ इंडियन सिविलाइजेशन, पृ॰—27
12. कैलाशचन्द्र जैन; पूर्वोद्धृत, पृ॰—133
13. ऋग्वेद; 102128
14. वही, 10/125—93
15. कैलाशचन्द्र जैन; पूर्वोद्धृत, पृ॰—134
16. दीघनिकाय, 1/135
17. खेत्तसुत्त ; 4, 237—38
18. वी.एस. अग्रवाल, इंडिया एज नोन टू पाणिनी, लखनऊ, 1953, पृ॰—198—99
19. बौधायन, 3/2/5/6
20. अर्थशास्त्र, 2/8
21. कैलाशचन्द्र जैन; पूर्वोद्धृत, पृ॰—138
22. वृहत्कल्पभाष्य, 10/157—60
23. वायुपुराण, 8/157
24. कुमार अमरेन्द्र; गुप्तकालीन भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था (लगभग 300 ई॰ 550 ई॰), पटना, 2001, पृ॰ 81—86

***

प्राचीन भारत के प्रमुख शिक्षण केन्द्र : एक अध्ययन

*सुनील कुमार**
*प्रो. (डॉ.) नवीन कुमार***

तक्षशिला :

रामायण के अनुसार राजा भरत ने अपने पुत्र तक्ष के नाम पर इस नगर की स्थापना की।[1] जिसका बाद में नामकरण तक्षशिला हो गया।यही पर जनमेजय का प्रसिद्ध नागयज्ञ हुआ था।[2] यह स्थान प्राचीन काल में राजनीतिक एवं शैक्षिक रूप से ज्यादा विख्यात रहा। यह शिक्षा केन्द्र के रूप में सातवीं शताब्दी (7वीं ई॰ पू॰) से 5 वीं शताब्दी तक प्रसिद्ध केन्द्र रहा। तक्षशिला के विश्वविख्यात आचार्य के पास 500 शिष्य थे, जिसका विवरण सुमजातक में दी हुई है।[3] यह स्थान भारत के पश्चिमी सीमा पर होने के कारण राजनीतिक एवं व्यापारिक दृष्टिकोण से अतिमहत्वपूर्ण था। यहां हमेशा विदेशी गतिविधियां ध्यान आकृष्ट करती रहती थी। अतः राजा कनिष्क ने अपना स्थायी शासन केन्द्र इस स्थान को बनाया। इस स्थान से विदेशी व्यापार को बढ़ावा दिया। क्योंकि यह स्थान व्यापार के साथ–साथ कला एवं चिकित्सा शिक्षा का भी महत्वपूर्ण केन्द्र था। जैसा कि नाम से ही विदित हो रहा है कि यह स्थान शिक्षा का भी महान केन्द्र था। तक्षशिला विश्वविद्यालय अपने शोहरत के लिए आज भी प्रसिद्ध है, भले ही आज देश का हिस्सा नहीं है। जो भी विद्वान एवं मनीषी इस शिक्षा केन्द्र से शिक्षा प्राप्त किये, वे विश्व एवं भारत के अतिमहान एवं आदरणीय हुए। आज भी सभी भारतीय इस शिक्षा केन्द्र का नाम बड़े आदर एवं गरिमा के साथ याद करते हैं। जैसा कि तक्षशिला विश्वविद्यालय एक भ्रामक शब्द है, क्योंकि विश्वविद्यालय वह होता है, जिसका अपना स्थायी भवन हो, शिक्षक हो, शासन–प्रशासन हो, वित्तीय प्रबन्धन हो आदि। लेकिन यहां देखा गया है कि इस प्रकार की कोई संस्था नहीं थी, लेकिन पूरे शहर में शिक्षक अपने–अपने घरों में अलग–अलग विषयों को कुछ ही छात्रों को पढ़ाते थे। जो छात्र एक से अधिक विषय का अध्ययन करना चाहते थे, वे दूसरे आचार्य से शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। अतः कहा जा सकता है कि यह स्थान काशी की तरह अपने घरों में रहकर आचार्य छात्रों को शिक्षा प्रदान करते थे। विद्यार्थी भी उन्हीं के साथ रहते थे। केवल धनी छात्र निजी मकान लेकर रहते थे।

तक्षशिला का महत्व :

तक्षशिला का राजनीति दृष्टि से महत्व उतना नहीं है जितना की शिक्षा की दृष्टि से है। यहाँ पर इरान एवं यूनान के संस्कृतियों के समन्वय

---

* शोधार्थी, प्रा. भा. इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना
** शोध पर्यवेक्षक, प्रा. भा. इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

से एक नयी संस्कृति या विचार–चिन्तन उत्पन्न हुआ। यही पर विदेशी लिपि खरोष्ठी का प्रचलन आरम्भ हुआ। यूनानी एवं ईरानी संस्कृति का प्रभाव स्थापत्य, चित्रकला, पहनावा आदि पर अत्याधिक प्रभाव पड़ा। इस क्षेत्र में यूनानी एवं ईरानी भाषा भी प्रचलित हुई। जिसके कारण तक्षशिला की ख्याति पूरे देश में फैल गई।

यहां वेद, दर्शन, व्याकरण, विदेशी कला की शिक्षा दी जाती थी। यह स्थान विशेष रूप से व्यावसायिक शिक्षा का महत्वपूर्ण केन्द्र था, जहाँ पर विविध प्रकार के व्यवसाय एवं चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा दी जाती थी।

महान विभूतियाँ :

इस शिक्षा केन्द्र की ख्याति इतनी थी कि देश चारों ओर से बड़े–बड़े शासक एवं प्रतिनिधि शिक्षा हेतु आते थे। जिसमें मगध, काशी, कोशल आदि राज्यों के शासक यहाँ से शिक्षा प्राप्त किये थे। मगध राज्य के राजवैद्य श्री जीवक, मगध राज्य का प्रधान एवं महान नीतिकार चाणक्य, कोशल का राजा प्रसेनजीत आदि सभी ने यहाँ से शिक्षा ग्रहण किया था।

तक्षशिला की कीर्ति :

विद्या के केन्द्र के रूप में 600 ई॰ पू॰ में तक्षशिला की कृति असाधरण थी। यह केन्द्र इतना दूर था कि यहां पर छात्रों का प्रवास दुष्कर कार्य था। यहां पर प्रवास करने वाले छात्रों के माता–पिता अपने पुत्रों की सुरक्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना पूजा करते थे तथा अपने जीवपन–काल में देख लेना ही अपना भाग्य समझते थे।[4] फिर भी काशी[5] राजगृह[6], मिथिला[07] और उज्जयिनी[8] जैसी सुदूर क्षेत्र से छात्र अध्ययन करने इस विश्वविख्यात संस्था में आते थे। कुरु और कोशल के छात्र भी तक्षशिला में अध्ययन करते थे। धनुर्विद्या में देश के विभिन्न भागों के 103 राजकुमार शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। जातकों से ज्ञात होता है कि काशी के युवराजों की शिक्षा–दीक्षा प्रायः तक्षशिला में होती थी। कोशल के राजा प्रसेनजीत की शिक्षा तक्षशिला में ही हुई थी।[9] जो बुद्ध के समलीन थे। राजा बिम्बसार के राजवैद्य कुमार जीवक यही से औषधि विज्ञान एवं शल्य चिकित्सा की शिक्षा प्राप्त किये थे।[10] उन्होंने इस शिक्षा हेतु 7 वर्षों का समय व्यतीत किया था। जीवक राजा बिम्बसार के अवैध संतान थे। प्रसिद्ध व्याकरणाचार्य, पाणिनि, प्रसिद्ध नीतिकार चाणक्य भी इसी केन्द्र के विद्यार्थी थे।

बौद्ध धर्म ग्रन्थों, विदेशी विवरणों, पुरातत्व विभाग के उत्खनन में प्राप्त सामग्रियों को मिलाकर विश्वविद्यालय से सम्बन्धित जानकारियां प्राप्त की जा सकती है। उत्खनन के आधार पर इसका क्षेत्रफल एक मील लम्बा तथा आधा मील चौड़ा था। इसके चारों ओर से एक चाहरदिवारी थी।[11] इसके बीच में अनेक राजाओं द्वारा निर्मित कराया हुआ विहार था।[12] इसके भवनों को हम चार प्रकार में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम प्रकार में वे भवन थे, जो छात्रों के आवास के लिये थे अर्थात यहाँ छात्रावास सुविधा थी। दूसरे प्रकार में भवन थे, जो वर्ग कमरा थे अर्थात जिन भवनों में पढ़ाई होती

थी। तीसरे प्रकार के वे भवन थे जिसमें धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न होती थी तथा आचार्य जन भी रहते थे। चौथे प्रकार के वे भवन जो पुस्तकालय के लिए थे।

नालन्दा विश्वविद्यालय :

यह विश्वविद्यालय वह शिक्षा संस्थान है, जो अपने परिचय का मुँहताज नहीं है। नालन्दा नाम लेते ही वह शिक्षा संस्थान याद आता है जो अपने समय का सिरमौर शिक्षा संस्थान था। अतः इसकी विवेचना एक सुखद अनुभव से भर देता है।

नालन्दा के नामकरण को लेकर विभिन्न धारणाएँ हैं, जिसकी अलग–अलग विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से व्याख्या की है। जैसा कि कहा गया है कि न आत्म ददाति इति सः नालन्दा (जहां कभी भी अध्ययन क्रिया को आराम न मिले), वह नालन्दा है। दूसरे विद्वानों का कहना है कि जहां चारो ओर कमल फूलों से भरे तालाब हो, वह नालन्दा है। फिर भी इन बातों का कोई खास महत्व नहीं है, क्योंकि अभी तक कोई ठोस आधार की जानकारी नहीं हुई है कि नालन्दा नाम इसी कारण से हुआ। आधुनिक नालन्दा पटना से दक्षिण 50 मील की दूरी पर है। नालन्दा विश्वविद्यालय का इतिहास 450 ई॰ से आरम्भ होता है। जिसकी स्थापना गुप्त सम्राट महान शिक्षा प्रेमी एवं महान दानी कुमार गुप्त प्रथम द्वारा किया गया। इसके विकास में लगभग सभी बाद के गुप्त राजाओं ने वित्तीय सहयोग एवं संरक्षण प्रदान किया। पाल काल में इसकी ख्याति एवं प्रसिद्धि चारो ओर और अधिक फैल गई। लेकिन बाद के समय में इस विश्वविद्यालय का ओज कम होता गया तथा अन्त में मुस्लिम आक्रमणकारी बख्तियार खलजी द्वारा दुर्ग समझकर 1206 ई॰ में इसे समाप्त कर दिया गया।

नालंदा विश्वविद्यालय के पास लगभग छोटे–छोटे 300 कमरे थे। सात बड़े भवन थे। ये भवन कई मंजिले होते थे। इनकी ऊंचाई गगन चूमती थी।[13] जो दिखने में अति सुन्दर दृश्य लगता था। विद्यालय के मध्य में मठ बने हुए थे। मठों के समीप में तालाब थे जो कमल पुष्पों से सुशोभित होते थे।[14] यहाँ लगभग 10,000 (दस हजार) छात्र ज्ञान प्राप्त करते थे तथा एक हजार आचार्य शिक्षा देते थे यानी 10 छात्र पर एक शिक्षक व्यवस्था थी। एक कमरे में दो विद्यार्थी रहते थे। मठ के प्रागंण में एक कुआँ होता था। यहां रसोई घर में सामूहिक रूप से भोजन बनता था। इन सबका खर्च उन दो सौ (200) गाँवों की वसूली से पूरा होता था, जो राज्य की ओर से विश्वविद्यालय को दानस्वरूप प्राप्त हुए थे।[15]

नालन्दा विश्वविद्यालय अब देश का सबसे बड़ा विद्या केन्द्र बन गया था। यहां पर प्रारम्भ से उच्च शिक्षा तक की व्यवस्था थी, जहां दूर–दूर से एवं विदेशों से विद्यार्थी विद्या प्राप्त करने के लिए आते थे। जिसमें तिब्बत, चीन, जापान आदि देश के विद्यार्थी प्रमुखता से आते थे। यहां पर समय–समय पर सामूहिक रूप से शिक्षा और अध्ययन सम्बन्धी समस्याओं पर

विचार, विमर्श एवं व्याख्यानों का आयोजन होता था, क्योंकि यहां पर विश्व के महान शिक्षाविद विभिन्न विषयों पर अपनी समस्याओं के समाधान हेतु एकत्र होते थे।

नालन्दा विश्वविद्यालय बौद्ध–शिक्षा का महान केन्द्र था। यहाँ पर मुख्यतः महायान शाखा से सम्बन्धित विषयों की शिक्षा प्रदान की जाती थी जिसमें महायायन शाखा दार्शनिक नागार्जुन बसुबन्धु, दिग्नाग, असंग आदि के ग्रन्थों का पठन–पाठन कराया जाता था। बौद्ध शिक्षा के साथ–साथ जैन एवं हिन्दू धर्म का भी गहन अध्ययन कराया जाता था ताकि बौद्ध विद्वान जैन एवं हिन्दू विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ करने में सक्षम हो सके। यहां पर विद्यार्थियों को पढ़ने–लिखने, खाने–पीने एवं रहने की निःशुल्क व्यवस्था थी अर्थात छात्रों के लिए सभी व्यवस्था निःशुल्क थी।[16]

यदपि नालन्दा महायान बौद्ध धर्म की शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। फिर भी यहां अन्य अनेक विषयों की शिक्षा भी समुचित रूप से प्रदान की जाती थी। पाठयक्रमों में महायान तथा बौद्ध धर्म के अठारह सम्प्रदायों के ग्रंथों के अतिरिक्त वेद, हेतविद्या, शब्दविद्या, योगशास्त्र, चिकित्सा, सांख्य दर्शन के ग्रंथों आदि की शिक्षा व्याख्यानों के माध्याम से दी जाती थी। विभिन्न विषयों के प्रकाण्ड विद्वान प्रतिदिन सैकड़ों व्याख्यान देते थे जिसमें सभी छात्रों की उपस्थिति अनिवार्य होती थी। ह्वेनसांग स्वयं यहां अठारह महीने रहकर यहां अध्ययन किया था, लिखता है कि यहां सैकड़ों की संख्या में अत्यन्त उच्च–कोटि के विद्वान निवास करते थे। एक हजार ऐसे व्यक्ति थे जो सूत्रों और शास्त्रों के बीस संग्रहों का अर्थ समझा सकते थे। 500 व्यक्ति ऐसे थे जो 30 संग्रहों को पढ़ा सकते थे, धर्म के आचार्य को लेकर दस ऐसे थे जो 50 संग्रहों की व्याख्या कर सकते थे। इन सभी में शीलभ्रद अकेले ऐसी थे जो सभी संग्रहों की व्याख्या कर सकते थे, सभी संग्रहों के ज्ञाता थे। इस प्रकार विभिन्न विद्याओं, विचारों एवं विश्वासों में सामंजस्य स्थापित करना विश्वविद्यालपय की प्रमुख विशेषता थी। क्योंकि यहां विचारों, विश्वासों की स्वतंत्रता एवं सहिष्णुता की भावना विद्यमान थी। ह्वेनसांग के समय शीलभद्र ही विश्वविद्यालय के कुलपति थे। यह चीनी यात्री शीलभद्र के चरित्र एवं विद्वता की काफी प्रशंसा करता है। वे सभी विषयों के प्रकाण्ड पण्डित थे। ह्वेनसांग स्वयं शीलभद्र के चरणों में बैठकर अध्ययन किया था। वह उन्हें सत्य एवं धर्म का भण्डार कहता है। यहां के अन्य विद्वानों में धर्मपाल, जो शीलभद्र के गुरु एवं पूर्व कुलपति थे, के अलावे चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति प्रभामित्र, जिनमित्र, ज्ञानचन्द्र आदि के नाम उल्लेखनीय है। इन सभी को ख्याति दूर–दूर तक फैली थी। ये सभी विद्वान मात्र अच्छे शिक्षक ही नहीं थे, अपितु विभिन्न ग्रंथों के रचियता भी थे। इनकी रचनाओं का समकालीन विश्व में सम्मान था। इन प्रसिद्ध आचार्यों के अतिरिक्त नालन्दा में अन्य विद्वान भी थे, जिन्होंने विद्या के प्रकाश से पूरे राष्ट्र को आलोकित किया।

नालन्दा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में ग्रन्थों का विशाल संग्रह एवं प्राचीन पाण्डुलिपियां थीं। इत्सिंग यहां रहकर 400 संस्कृत ग्रंथों की प्रतिलिपियां तैयार की थीं।[17] यहां का धर्मगंज नामक पुस्तकालय बहुत प्रसिद्ध था। यह तीन खण्डों में बंटा था जिनके नाम रत्नसागर, रत्नीदधि तथा रत्नरंजक थे।[18] विश्वविद्यालय का प्रशासन चलाने के लिए दो परिषदें थी– बौद्धिक तथा प्रशासनिक। इन दोनों के ऊपर कुलपति होता था। विश्वविद्यालपय का खर्च राजाओं द्वारा दान किये गये गांवों के राजस्व से चलता था। इत्सिंग के समय में विश्वविद्यालय के खर्चे के लिए दो सौ गांवों का राजस्व था। खुदाई में कुछ गांव की मुहरें तथा पत्र मिले हैं, जो विश्वविद्यालय को सम्बोधित करके लिखे गये हैं।

इस प्रकार नालन्दा अपने ढंग का अदभूत एवं निराला विश्वविद्यालय था। हर्ष के बाद लगभग बारहवीं शताब्दी तक इसकी ख्याति बनी रही। आठवीं शताब्दी के मन्दसोर अभिलेख से पता चलता है कि नालन्दा अपने विद्वानों के कारण प्रसिद्ध था। ये विद्वान अपने धर्मग्रंथों एवं दर्शनों के विशेषज्ञ थे। नवीं सदी में इस विश्वविद्यालय ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। जावा एवं सुमित्रा के शासक बालदेवपुत्र ने नालन्दा में एक मठ बनवाया तथा इसके निवर्हन के लिए अपने बंगाल के मित्र पाल नरेश देवपाल से पांच–गांव दान दिलवाया।

नालन्दा विश्वविद्यालय के विद्वानों की सबसे बड़ी देन यह है कि इन्होंने तिब्बत में बौद्ध धर्म एवं भारतीय संस्कृति का प्रचार किया। आठवीं सदी से नालन्दा के विद्वान बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु तिब्बत जाने लगे, जिसके कारण नालन्दा में तिब्बती भाषा का अध्ययन आरंभ हो गया। तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्रचारकों में चन्द्रगोमिन का नाम उल्लेखनीय है। उनके ग्रंथों का तिब्बती में अनुवाद हुआ। दूसरे विद्वान शान्तरक्षित तिब्बत नरेश के आमंत्रण पर वहां गये तथा बौद्ध धर्म का प्रचार किये। उन्हीं के निदेशन में तिब्बत में प्रथम बौद्ध मठ निर्मित हुआ। इस मठ के जीवन पर्यन्त अध्यक्ष रहते हुए तिब्बत मे बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार किया। उनके इस कार्य में नालन्दा से शिक्षित काश्मीरी बौद्ध विद्वान पद्मसम्भव ने भरपूर सहायता किया।

ग्यारहवीं शती में पाल शासकों ने नालन्दा की जगह विक्रमशीला विश्वविद्यालय को सहायता एवं संरक्षण देना आरम्भ किया। जिससे नालन्दा का महत्व घटने लगा। तिब्बती स्त्रोतों से पता चलता है कि इस समय में नालन्दा में तंत्रयान सम्प्रदाय का प्रभाव बढ़ने लगा था। अतः इस कारण भी नालन्दा को ठेस पहुंचा। अन्ततः तेरहवीं शती के आरम्भ में मुस्लिम आक्रन्ता बख्तियारा खिलजी ने दुर्ग समझकर इस विश्वविद्यालय को ध्वस्त कर दिया। यहां के भिक्षुओं की हत्या कर दी गई तथा यहां के पुस्तकालयों को जला दिाया गया। इस प्रकार एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के शिक्षा केन्द्र का दुखद अन्त हुआ।

इस प्रकार नालन्दा प्राचीन शिक्षा का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण केन्द्र था, जिसकी ख्याति न केवल भारत अपितु विदेशों में भी फैली हुई थी। वस्तुतः यह एक विश्वभारती था जहां से सम्पूर्ण देश में संस्कृति का प्रसार होता था। यहां के विद्वानों की महानता, उदारता एवं पाण्डितय के परिणामस्वरूप नालन्दा का नाम ही तत्कालीन विश्व में शिक्षा के क्षेत्र में सर्वोच्च एवं सर्वोत्तम गुणों वाले केन्द्र का पर्याय बन गया था।

विक्रमशिला :

विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना पाल शासक अर्थात धर्मपाल द्वारा 800 ई॰ में (775 ई॰ 800 ई॰) की गई। यह शिक्षा केन्द्र 400 वर्षों तक अन्तर्राष्ट्रीय जगत में प्रसिद्ध रहा। राजा धर्मपाल ने अपने शासन काल में अनेक बुद्ध–विहार बनवाये थे। यहां अनेकों विशाल भवन व्याख्यानों के लिए बनाये गये थे। राजा ने इस संस्थान को मुक्तहस्त से दान दिया था। धर्मपाल के उत्तराधिकारियों ने भी इस विधा केन्द्र को अनुदान एवं संरक्षण प्रदान किये। इस शिक्षा केन्द्र के भिक्षु बड़े विद्वान होते थे। अल्पकाल में ही इसकी ख्याति देश के बाहरी चली गई थी। तिब्बत और विक्रमशीला के बीच 400 सौ वर्षों तक ज्ञान विनिमय होता रहा। तिब्बत से विद्यार्थी ज्ञान हेतु विक्रमशिला में आते थे। विक्रमशिला विश्वविद्यालय अपने पाण्डित्य के लिए प्रसिद्ध हो चुका था। जिसमें महान शिक्षाविदों ने अपना योगदान देकर इसके यश को चारों ओर प्रक्रीर्ण किया था। इसमें योगदान देने वाले विद्वानों में ज्ञानश्री मित्र, रत्नव्रज, तथागतरक्षित, अभयंकर गुप्त, रक्षित विरोचन आदि विद्वानों ने संस्कृत में ग्रंथ लिखकर तिब्बती में अनुवाद किये थे। यहाँ के विद्वानों में दीपांकर ज्ञानश्री सर्वश्रेष्ठ थे। यही उपाध्याय अतिश नाम से प्रसिद्ध थे। ये तिबबत के राजा चान–चूब के आमंत्रण पर तिब्बत गये थे। इन्होंने तिब्बत के बौद्ध धर्म में सुधार किये। तिब्बती कथा के अनुसार 200 मौलिक एवं अनुवादित ग्रन्थों के रचनाकार बतलाए जाते हैं।

काशी :

वैदिक साहित्य में काशी का नाम विद्या केन्द्र के रूप में नहीं मिलता है। लेकिन उपनिषद् काल में काशी धार्मिक केन्द्र के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुकी थी।[19] यहां का अजातशत्रु विद्वान दार्शनिक के रूप में दिखाई पड़ता है, क्योंकि यह राजा अपना आदर्श मिथिला के राजा जनक को मानता है, क्योंकि राजा जनक एक तत्व ज्ञानी राजा माने जाते थे। कालान्तर में काशी महत्वपूर्ण शिक्षा का केन्द्र हो गया। क्योंकि यहां अधिकतर आचार्य तक्षशिला के स्नात्तक थे। यहां पर सभी दिशाओं से विद्यार्थी शिक्षा हेतु आने लगे। यह 12वीं शताब्दी तक बौद्ध विद्या केन्द्र और तीर्थ केन्द्र के रूप में इसकी ख्याति थी।[20] कोसिय तथा तित्तिरि जातकों से ज्ञात होता है कि काशी के विद्वान आचार्यों द्वारा तीनों वेदों एवं 18 शिल्पों की शिक्षा प्रदान की जाती थी। अमित जातक से पता चलता है कि 16 वर्ष के आयु वाले विद्यार्थी शिक्षा के लिए यहाँ पर उमड़ पड़ते थे।

संदर्भ :

1. रामायण 7—101.10.16
2. महाभारत—1—3,20
3. सुमजातक जिल्द—5 पृ॰ 405
4. जातक संख्या— 456
5. तिलमत्ति जातक— 252
6. जातक संख्या— 378
7. जातक संख्या— 489
8. जातक संख्या— 336
9. महावग्ग— आठवां अध्याय
10. जातक संख्या—490
11. वही
12. वैटर्स भाग—2, पृ॰ 164 तथा लाइफ पृ॰ 110—111
13. वही
14. वही, पृ॰ 167
15. इत्सिंग ने यह संख्या दी है जो 10 वर्ष तक यहां रहा था।
16. इत्सिंग, पृ॰ 106
17. इत्सिंग, पृ॰ 01
18. विद्याभूषण, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लॉजिक, पृ॰ 516
19. लेग कृत फाह्यिान, पृ॰ 32 वैटर्स, पृ॰ 240—245
20. हिन्दू राजा गोविन्द चन्द की बौद्ध पत्नी कुमारदेवी ने 12वीं शती के उत्तरार्द्ध में सारनाथ में एक बौद्ध विहार को दान दिया था। यह विहार 1200 ई॰ तक था। इसका पता खुदाइयों से मिला है।

***

भारतीय दर्शन में योग विचार की प्रासंगिकता

*रजनी गोस्वामी**

परिचयात्मक टिप्पणीः

भारतीय दर्शन में योग का अपरिहार्य योगदान है। योग का शाब्दिक अर्थ एकत्व होता है। यह शब्द संस्कृत धातु युज से निर्मित हुआ है जिसका का अर्थ होता है जोड़ना। योग में मूल रुप से आत्मा को परमात्मा से जोड़ने की तत्वमीमांसिक व ज्ञानमीमांसीय चर्चा होती है।

भारत में योग विचार हज़ार वर्षो से महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। वैदिक काल से ही हमें योग के साक्ष्य मिलते रहें है। बोद्ध तथा जैन परम्परा में भी योग का किसी न किसी रुप में उल्लेख है।

महर्षि पतंजलि के योगसूत्र के अतिरिक्त हमें वेदव्यास की योगभाण्य तथा नागेश भट्ट की योग सूत्रवृत्ति भी मिलती है जो योग को भारतीय दर्शन का अभिन्न अगं बनाती है। भगवत गीता में भी योग शब्द का बार बार उल्लेख किया गया है। महर्षि पतंजलि के अनुसार योग की परिभाषा है **योगश्रितवृत्ति निरोधः** जिसका अर्थ होता है चित्त की वृत्तियों का निरोध। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतू अभ्यास एवं समझ अति आवशयक है।

इस शोध लेख का प्रमुख उद्देश्य भारतीय दर्शन में योग विचार के महत्व को उजागर करना है तथा यह दर्शना है कि योग विचार भारतीय दर्शन के मूल में है जिसके अभाव में भारतीय दर्शन की कल्पना भी नही की जा सकती।

योग दर्शनः

योग दर्शन में अष्टांग अर्थात आठ अगं होते है जिनमें यम, नियम आसन, प्रणायाम, धारणा, ध्यान, प्रात्याहार तथा समाधि सम्मिलित है। विद्वानों के शोध से पता चलता है कि योग का प्रत्येक अगं अति महत्वपूर्ण है। जिसके अभ्यास से मनुष्य मुक्ति की ओर अग्रसर होता है तथा चित्त की व्रत्तियों का निरोध होता है। **अभ्यास वैराग्याम्यां तन्निरोधः** अर्थात अभ्यास के साथ वैराग्य भी अति आवश्यक है।

योग में प्राणायाम का विशेष महत्त्व है। प्राण का अर्थ होता है जीवन शक्ति। इसमें श्वास द्वारा प्राण पर नियंत्रण किया जाता है तो उसे प्राणायाम कहते हैं। अनुलोम–विलोम कपालभाति प्राणायाम और भ्रामरी प्राणायाम, प्राणायाम के तीन मुख्य प्रकार है।

योग **"चित्त वृत्ति निरोधः"** है। योग एक अभ्यास है जो मन के उतार–चढ़ाव को निष्क्रिय करता है। जब मानसिक उतार–चढ़ाव होता है तो दुख निर्मित होता है। योग दुख से मुक्ति का मार्ग है।

---

* शोधार्थी, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग

योग मानसिक तरंगों के प्रभाव को सीमित करता है तथा हम और अधिक स्पष्ट रूप से देखने में सक्षम होते हैं। अधिक स्पष्ट रूप से देखकर हम वास्तविकता की प्रकृति और उसके भीतर स्वयं के बारे में अधिक सटीक दृष्टिकोण विकसित कर सकते हैं और ऐसा करने में शांति की गहरी भावना प्राप्त कर सकते हैं।

तो पतंजलि के अनुसार योग मन का विज्ञान है। सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि योग का इतिहास किसी भी भौतिक वस्तु के रूप में विकसित होने से पहले मनोविज्ञान और दर्शन के दायरे में आता है। अपने सबसे पुराने रूप में योग हमें चेतना की प्रकृति के बारे में गहन प्रश्न पूछने में सक्षम बनाता है।

पतंजलि के योग का मानना है कि एक निश्चित आत्मनिरीक्षण जागरूकता विकसित करना सीखकर स्वयं के उद्देश्यपूर्ण अवलोकन करने की प्रतिबद्धता के साथ – हम दैनिक जीवन के दबावों और दर्द से दूर एक यात्रा शुरू कर सकते हैं। हम चीजों को वैसे ही देखने में सक्षम हो जाते हैं जैसे वे हैं।

योग का आध्यात्मिक आधार सांख्य है। सांख्य का उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र में योग और चार्वाक के साथ अन्विकिकी दर्शन की तीन श्रेणियों में से एक के रूप में किया गया है। योग और सांख्य में कुछ अंतर हैं योग ने एक व्यक्तिगत ईश्वर की अवधारणा को स्वीकार किया और सांख्य हिंदू दर्शन की एक तर्कसंगत गैर–आस्तिक प्रणाली थी। (1)

पतंजलि की प्रणाली को कभी–कभी **सेश्वर सांख्य** कहा जाता है जो इसे कपिला के निरीवर सांख्य से अलग करती है। योग और सांख्य के बीच समानताएं इतनी करीब थीं कि मैक्स मूलर कहते हैं दोनों दर्शन सामान्य बोलचाल में एक दूसरे से अलग थे जैसे सांख्य और सांख्य बिना भगवान। (2)

वेदिक काल में योग विचारः

योग विचार के प्रमाण वेदिक काल से ही प्राप्त होते रहे हैं। व्हिचर के अनुसार विद्वान ऋषियों की चिंतन प्रथाओं और योग प्रथाओं के बीच संबंध को देखने में विफल रही है। (3) वह कहता है वैदिक ऋषियों का आद्य–योग यज्ञ रहस्यवाद का एक प्रारंभिक रूप है और इसमें बाद के योग की विशेषता वाले कई तत्व शामिल हैं। जिसमें शामिल हैं एकाग्रता, ध्यानपूर्ण अवलोकन, अभ्यास के तपस्वी रूप, तप अनुष्ठान के दौरान पवित्र भजनों के पाठ के साथ श्वास नियंत्रण का अभ्यास, आत्म–बलिदान की धारणा, पवित्र शब्दों का त्रुटिहीन सटीक पाठ, रहस्यमय अनुभव और हमारी मनोवैज्ञानिक पहचान या अहंकार से कहीं अधिक वास्तविकता के साथ जुड़ाव।

जैकबसेन ने 2018 में लिखा था, 'शारीरिक मुद्राएं वैदिक परंपरा में तपस्या की परंपरा से निकटता से संबंधित हैं वैदिक पुजारियों द्वारा

"बलिदान के प्रदर्शन के लिए उनकी तैयारी में" इस्तेमाल की जाने वाली तपस्वी प्रथाएं योग के अग्रदूत हो सकती हैं'। (4)

ऋग्वेद 10.136 में गूढ़ लंबे बालों वाले मुनि के उत्साहपूर्ण अभ्यास और ब्राह्मणवादी अनुष्ठान आदेश के बाहर या उसके बाहर अथर्ववेद में व्रत–एस के तपस्वी प्रदर्शन ने शायद योग की तपस्वी प्रथाओं में अधिक योगदान दिया है। फ्लूड के अनुसार, 'योग शब्द प्रथम बार कथा उपनिषद में देखने को मिलता है'। (5)

एक अन्य विद्वान वर्नर के अनुसार बुद्ध अपनी योग प्रणाली के संस्थापक थे हालांकि उन्होंने अपने समय के विभिन्न योग शिक्षकों के तहत प्राप्त कुछ अनुभवों का उपयोग किया। (6) हेनरिक ज़िमर के अनुसार योग एक गैर–वैदिक प्रणाली का हिस्सा है जिसमें हिंदू दर्शन, जैन धर्म और बौद्ध धर्म के सांख्य स्कूल शामिल हैं। (7)

उपनिषद काल में योग विचारः

वैदिक काल के उत्तरार्ध में रचित उपनिषदों में योग के स्पष्ट प्रमाण मिलते है। आधुनिक अर्थों में योग शब्द का प्रयोग कथा उपनिषद में मिलता है जहाँ इसे स्थिर नियंत्रण के रूप में परिभाषित किया गया है। यहाँ योग मुक्ति का एकमात्र साधन माना गया है जिससे मन एक स्थाई तथा अति शातं अवस्था में पहुचँ जाता है।

कथा उपनिषद सांख्य और योग की अवधारणाओं के साथ प्रारंभिक उपनिषदों के अद्वैतवाद को एकीकृत करता है। योग को आंतरिककरण या चेतना के आरोहण की प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है। उपनिषद सबसे प्रारंभिक साहित्यिक कृति है जो योग के मूल सिद्धांतों पर प्रकाश डालती है। योग सूत्र से पहले एक छह गुना योग विधि का भी उल्लेख पाया जाता है। सांस, नियंत्रण इंद्रियों का आत्मनिरीक्षण, और ध्यान। इसके प्रमाण मैत्रायणीय उपनिषद में मिलते हैं। (8)

भगवद गीता में योग विचारः

भगवद गीता में भी योग विचार का उल्लेख विस्तार में मिलता है। मैलिन्सन और सिंगलटन के अनुसार गीता 'उस त्यागी परिवेश से उपयुक्त योग की तलाश करती है जिसमें यह उत्पन्न हुआ है। गीता में तीन महत्वपूर्ण प्रकार के योग का उल्लेख हैः कर्म योग, भक्ति योग तथा ज्ञान योग। इस प्रकार हम देखते है गीता दर्शन के मूल में भी योग है क्योंकि योग ही एकमात्र मुक्ति का मार्ग है। इस प्रकार हम देखते है कि योग भारतीय दर्शन का आधार है। भगवान श्री कृष्ण योग साधने का उपदेश देते है क्योंकि योग राक्षस रूपी कलेशो काम, क्रोध, लोभ तथा मोह से मुक्ति प्रदान करता है।

वैशेषिक दर्शन में योग विचारः

वैशेषिक विचारधारा के वैशेषिक सूत्र में योग की चर्चा है। जोहान्स ब्रोंखोर्स्ट के अनुसार, वैशेषिक सूत्र योग को "एक ऐसी अवस्था के रूप में वर्णित करता है जहां मन केवल स्वयं में रहता है और इसलिए इंद्रियों में नहीं। यह प्रत्याहार के समान है। सूत्र में दावा किया गया है कि योग

आध्यात्मिक मुक्ति की यात्रा में ध्यानपूर्ण कदमों का वर्णन करते हुए पीड़ा की अनुपस्थिति की ओर ले जाता है। (9)

वेदांत में योग विचारः

उपनिषदों और ब्रह्म सूत्रों ब्रह्म ज्ञान पाने का मार्ग बताते है। भारतीय दर्शन में आदि शंकराचार्य अद्वैत वेदांत की चर्चा कर ज्ञान योग पर ज़ोर देते हैं। अद्वैत वेदांत का उद्देश्य ब्रह्म के साथ व्यक्तिगत चेतना की पहचान को उजागर करना है। अद्वैत में योग "विशेष से हटने और सार्वभौमिक के साथ पहचान का एक ध्यानपूर्ण अभ्यास है, जिससे स्वयं को सबसे सार्वभौमिक, अर्थात् चेतना" के रूप में माना जाता है। (10)

अद्वैत वेदांत योग विद्वानों के लिए एक प्रमुख संदर्भ रहा है। इसमें योग अभ्यास के सात चरण होते है जबकि पतंजलि के योग में आठ चरण हैं। लेकिन व्यवहारिक रुप से दोनों का उद्देश्य परम ज्ञान पाना तथा जीवन के देखो से मुक्ति पाना है। एक अन्य ग्रंथ जो अद्वैत दृष्टिकोण से योग सिखाता है वह है **योग याज्ञवल्क्य।**

बौध दर्शन में योग विचारः

भगवान बुद्ध ने ज्ञान प्राप्त करने से पहले, बहुत योग गुरूओ से शिक्षा प्राप्त की। बहुत विद्वान मानते है कि योग से उन्हें लाभ नही हुआ। परन्तु यह बिल्कुल ही गलत है क्योंकि बुद्ध ने मुक्ति का जो अष्टांगिक मार्ग बताया वो योग के अष्टांगिक मार्ग से मेल खाता है। इस प्रकार बुद्ध का मार्ग भी योग का ही एक नवीन रूप है।

उपसहांरः

इस शोध लेख में स्पष्ट विश्लेषण किया गया है कि भारतीय दर्शन में योग विचार का अति महत्वपूर्ण स्थान है। सभी आस्तिक एवं नास्तिक विचारधाराएं कही न कही योग से जुड़ी हुई है।

विभिन्न विद्वानो के शोध से जानकारी मिलती है कि योग दर्शन के अष्टांग अर्थात आठ अगं – यम, नियम, आसन, प्रणायाम, धारणा, ध्यान, प्रात्याहार तथा समाधि किसी न किसी रुप में भारतीय दर्शन के लगभग सभी विचारधाराओं में मिलते है, चार्वाक दर्शन को छोड़कर। बुद्ध का अष्टांगिक मार्ग में भी योग विचार की स्पष्ट छाप मिलती है।

'योगश्रितवृत्ति निरोधः'' अर्थात योग से चित्त वृत्तियों का निरोध होता है। तथा अभ्यास के साथ ही वैराग्य भी आवश्यकत है – **''अभ्यास वैराग्याम्यां तन्निरोधः''**। शोध से पता चलता है कि योग का प्रत्येक अगं अति महत्वपूर्ण है। जिसके अभ्यास से मनुष्य मुक्ति की ओर अग्रसर होता है।

योग में प्राणायाम का विशेष महत्त्व है। प्राण का अर्थ होता है जीवन शक्ति। इसमें श्वास द्वारा प्राण पर नियंत्रण किया जाता है तो उसे प्राणायाम कहते हैं। अनुलोम–विलोम, कपालभाति प्राणायाम और भ्रामरी प्राणायाम, प्राणायाम के तीन मुख्य प्रकार है।

वेद तथा उपनिषद काल से ही योग भारतीय दर्शन के मूल में रहा है जिसके साहित्यिक साक्ष्य स्पष्ट रूप से प्राप्त होते है। भगवत गीता में श्री कृष्ण योग को साधने का सन्देश देते है। वहीं आदि शंकराचार्य के अद्वैत वेदान में योग का विशेष महत्व है। इस प्रकार भारतीय दर्शन में योग का योगदान अपरिहार्य है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. ओलिवल, पैट्रिक (2013), किंग, गवर्नेंस, और प्राचीन भारत में कानूनः कौटिल्य का अर्थशास्त्र, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. मुलर मैक्स (1899) भारतीय दर्शन की छह प्रणालियाँ सांख्य और योग नया और वैशेषिक। कलकत्ता सुशील गुप्ता (इंडिया लिमिटेड।
3. व्हिचर, इयान (1998)। योग दर्शन की सत्यनिष्ठाः शास्त्रीय योग पर पुनर्विचार। सनी प्रेस. आईएसबीएन 978–0–7914–3815–2।
4. जैकबसेन, नट ए., एड. (2018), योग का सिद्धांत और अभ्यासः गेराल्ड जेम्स लार्सन के सम्मान में निबंध, ब्रिल।
5. फ्लड, गेविन डी. (1996)। हिंदुत्व का परिचय। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
6. वर्नर, कारेल (1998)। योग और भारतीय दर्शन (1977, 1998 में पुनर्मुद्रित)। मोतीलाल बनारसीदास पब्लिक. आईएसबीएन 81–208–1609–9।
7. ज़िमर, हेनरिक (1951)। भारत के दर्शन। न्यूयॉर्क, न्यूयॉर्कः प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस। आईएसबीएन 0–691–01758–1।
8. जोहान्स ब्रोंखोर्स्ट (1993)। प्राचीन भारत में ध्यान की दो परंपराएं। मोतीलाल बनारसीदास। पी। 64.
9. सिंगलटन, मार्क (2010)। योग शरीरः आधुनिक मुद्रा अभ्यास की उत्पत्ति। ऑक्सफोर्ड यूनिवरसिटि प्रेस। आईएसबीएन 978–0–19–539534–1। ओसीएलसी 318191988।
10. सैमुअल, जेफ्री (2008)। योग और तंत्र की उत्पत्ति। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस। आईएसबीएन 978–0–521–69534–3।
11. योग। ओईडी ऑनलाइन। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। 9 सितंबर 2015।
12. "योगः इसने दुनिया को कैसे जीत लिया और क्या बदला है?"। बीबीसी समाचार। 22 जून 2017। 14 जून 2021 को लिया गया।
13. व्हाइट, डेविड गॉर्डन (2011)। "योग, एक विचार का संक्षिप्त इतिहास" (पीडीएफ)। अभ्यास में योग। प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस। पीपी. 1–23.
14. बिबेक देबरॉय (2005), द भगवद गीता, पेंगुइन बुक्स, आईएसबीएन 978–0–14–400068–5, परिचय, पृष्ठ •–•प.
15. विष्णुदेवानंद, स्वामी (1999)। ध्यान और मंत्र। मोतीलाल बनारसीदास। पी। 89. आईएसबीएन 978–0143422235।
16. ब्रायंट, एडविन एफ. (2009), द योग सूत्र ऑफ पतंजलिः ए न्यू एडिशन, ट्रांसलेशन एंड कमेंट्री, न्यूयॉर्कः नॉर्थ पॉइंट प्रेस, आईएसबीएन 978–0865477360.
17. एडविन ब्रायंट (2011, रटगर्स यूनिवर्सिटी), पतंजलि के योग सूत्र।

***

स्त्री अस्मिता और मृदुला गर्ग

*अनुपमा व्यास**

हिन्दी साहित्य के परिदृश्य में जब स्त्री विमर्श की धूम नहीं थी तब अपने कथा साहितय में स्त्री की स्वाभिमानी प्रकृति तथा आत्मचेतना से युक्त नायिकाओं को लेकर मृदुला गर्ग का पदार्पण हुआ था। मृदुला जी ने पाश्चात्य और भारतीय दोनों ही पृष्ठभूमि में स्त्री जीवन की व्याख्या की है जिसमें उन्होंने नारी–जीवन से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर ण्विस्तृत रूप से सर्वांगीण व्याख्या प्रस्तुत की है। सवाल यह उठता है कि उनका स्त्री विमर्श कितना व्यावहारिक है। क्या वह सामाजिक उत्तरदायित्व की दृष्टि किया गया लेखन है? या उसमें केवल विचारों की अभिव्यक्ति ही है। जिसमें सम्पूर्ण विश्व की आधी आबादी के प्रति पुरुष की शोषक वृत्ति और भोग्या मानने की प्रवृत्ति पर सम्यक् विवेचन हो सके। यदि वर्तमान साहित्य में स्त्री को नवीन चेतना वास्वत में प्राप्त हुई है तो सर्वप्रथम विचार का विषय यह बनता है कि नारी–चेतना है क्या? चेतना का सम्बन्ध निजी जीवन दृष्टि से होता है जिसे परखकर इतिहास, संस्कृति और मानवीय संबंधों को पुनः विश्लेषित किया जाता है।..... जो दृष्टि नारी की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक छवि के तिलिस्म को तोड़े वह नारी चेतना है...। उसका सम्बन्ध वर्ग, वर्ण, लिंग या धर्म से नहीं दृष्टि से है। वह अनुभूति की सामाजिक और वैयक्तिक यात्रा में विकसित होती है।'[1]

उपर्युक्त कथन को विवाद के रूप में लिया जा सकता है क्योंकि स्त्री–चेतना परपुरुष–लेखन को अक्सर चुनौती दी जाती रही है कि उसमें वह संवेदना अनुभूति नहीं है। इसके साथ एक अन्य सवाल भी उठता है कि स्त्री चेनता के संबंध में स्त्री लेखन को ही शत–प्रतिशत प्रामाणित कैसे माना जा सकता है जब स्त्रियों की वर्तमान दशा के लिए स्त्री भी उतनी ही जिम्मेदार है? नारी अपना दर्द तो व्याख्यायित कर लेती है, परन्तु नारी की जो आज सामाजिक, पारिवारिक स्थिति है उसके लिए तो नारी ही जिम्मेदार है, स्त्री को स्त्री बनाने में उसका भी उतना ही हाथ है जितना हाथ पुरुष का। स्त्रियाँ जो दुःख पाती हैं या आत्महत्या करती हैं उसमें जितना हाथ पुरुष का होता है उतना ही औरत का, सास–ननद का होता है।[2] दरअसल जिस पारिवारिक और सामाजिक वातावरण में जिन जिम्मेदारियों के साथ स्त्री जीती आयी है वे संस्कार उसका स्वभाव बन चुके हैं। वह एक यंत्र की तरह चेतना रहित होकर परम्परा का अनुकरण करती चली आ रही है। जिस परम्परा ने उसका सम्पूर्ण वजूद ही संकट में डाल रखा है उसका

---

* (शोध-छात्रा-हिंदी), महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, (हिंदी विभाग) के सम्बद्ध लालता सिंह राजकीय महिला महाविद्यालय अदलहालट मिर्जापुर

कोई अपना चेहरा ही नहीं रहा। नारी चेतना असली लड़ाई स्त्री के स्वभाव, संस्कार व प्रकृति के विषय में भारतीय मानव में घर किये हुए इन सामान्यीकरण से ही है। उनका वास केवल भारतीय पुरुष के मानस में ही नहीं, भारतीय स्त्री के मानस में भी है।'[3] जिस पारिवारिक माहौल में स्त्री जिन जिम्मेदारी के साथ जीती आयी है, वे संस्कार उसका स्वभाव बन चुके हैं। वह एक यंत्र की तरह परम्परा का अनुकरण करती चली आ रही है। यदि परम्परा का अनुकरण नहीं करती है तो समाज का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा न चाहकर भी उसे परम्परा का अनुकरण करना पड़ता है और परिवार, समाज उन पर हावी भी हो सकता है। जैसे पति का होना उसके एक स्थिति है जिसके भीतर से कुछेक सुखदायक स्थितियाँ पैदा होती है जैसे बच्चे का होना, घर का होना, घर में ढेरों सामान का होना और अपनी तरह के जोड़ों के साथ सामाजिक ताल्लुकात होना। पति का होना उनके लिए एक तरह का व्यवसाय है।[4] वह अपने पहचान के लिए सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तरीके के संस्कारों को भी निभाने का पूरा प्रयत्न करती है।

जागरूकता और स्वावलम्बन चेतना की दिशा को प्रशस्त करने वाले प्रमुख कारकों के रूप में उनकी कहानियों तथा उपन्यासों में चित्रित किये गये हैं अधिकारों की प्राप्ति के लिए तत्संबंधित जागरूकता शिक्षा एवं संघर्ष को बल प्रदान करने वाले स्वावलम्बन की जरूरत होती है। शैक्षिक पिछड़ापन जागरूकता जनित चेतना का बाधक तत्व है। जिसके परिणामस्वरूप नारी वर्तमान दुर्दशा को प्राप्त हुयी है। उसने अपने आपको घरेलू और सेवा प्रदान करने वाले कार्यों तक सीमित कर रखा था। साथ ही पालतूपन को अपनी नियति मान रखा था। शिक्षा और अधिकार बोध के फलस्वरूप आज नारी की चेतना विकसित हुई है। पारिवारिक हिंसा से निबटने के लिए 1984 में संसद में पारिवारिक अदालत अधिनियम पास किया गया है इसके अलावा विभिन्न महिलाओं, समितियों एवं स्त्री मुक्ति आंदोलनों ने भी महिलाओं में जागृति लाने का कार्य शुरू किया गया है। 73वें संवैधानिक संशोधन के माध्यम से सरकार ने पंचायतों में स्त्रियों के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण की सुविधा दी है। इससे स्पष्ट होता है कि स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में जागरूक हो चुकी हैं विश्व मंच पर तमाम महिला संगठन अपने अधिकारों की माँग करते दिखाई पड़ते हैं। मृदुला जी स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को लेकर बेहद संजीदा हैं। उनके अनुसार मेरे पास एक स्वतंत्र अस्तित्व है जो कोई मुझसे छीन नहीं सकता।'[5] अर्थात् आवश्यकता है स्त्री द्वारा व्यक्तित्व के स्वतंत्रता की पहचान करने की पुरुषवादी व्याख्या और अस्मिता निर्धारण से मुक्त होने के साथ ही मानसिक व आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने की। उनकी कहानियों एवं उपन्यासों के स्त्री पात्र आत्म चेतना युक्त तथा आत्म निर्भर नायिकाए हैं। वह प्राकृतिक रूप से सामाजिक बन्धनों से भी स्वतंत्र भी है। वह अधिकार के संबंध में पुरुष के बराबर में चलती हैं चुनाव का अधिकार हर इंसान को है।[6] वह स्त्री हो या पुरुष। वे

परम्परागत धारणा के साथ आत्मानुभूति को पालतूपन के स्थान पर आत्म निर्भरता को महत्व देती है। यह स्त्री मुक्ति का प्रथम सोपान कहा जा सकता है। उसके हिस्से की धूप उपन्यास की नायिका (मनीषा) को आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भरता ही महत्वपूर्ण है। वह चाहे किन परिस्थिति में आत्म निर्भर होने के लिए मजबूर क्यों न हो।

व्यक्ति परिवार और समाज सभी का अलग महत्व हो सकता है, परन्तु जब हम अस्मिता सम्बन्धी प्रश्न पर विचार करते हैं तो हमें व्यक्ति देखते हुए सोचना होगा न कि समाज को देखते हुए। परन्तु हमारे देश में समाज सर्वोपरि है जो व्यक्ति के आत्म निर्णय को प्रभावित करता है। फिर व्यक्ति भीड़ का एक भाग भर होता है। स्त्रियों के साथ भी ऐसा ही हुआ पुरुषवादी व्यवस्था में अपने बनाये परम्परागत प्रचलित सामाजिक नियमों को सम्पूर्ण स्त्री जाति पर लाद रखा है। इस सम्बन्ध में मृदुला जी कहती है 'हमारे देश में समाज सर्वोपरि है, परिवार प्रमुख और व्यक्ति गौण। शादी भी होती है तो व्यक्ति से नहीं परिवार से। स्त्री पत्नी बनकर नहीं बहू बनकर दूसरे घर में प्रवेश करती है और मरती है सास बनकर....।[7] ऐसी स्थिति में नारी के स्वतंत्र अस्तित्व की बात कैसे की जा सकती है। यही कारण है कि मृदुला गर्ग ने विवाह संस्था को स्त्री की पराधीनता का प्रतीक माना है। जाहिर है यदि विवाह के कारण स्त्री की अपनी पहचान शून्य हो जाये तो बतौर एक संस्कार अथवा कर्मकाण्ड विवाह संस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाना स्वाभाविक है। वे सवाल उठाती है कोई भी पुरुष किसी स्त्री का स्वामी क्यों हो? स्त्री का मूल्य उसके व्यक्तित्व में निहित है या पुरूष से उसके सम्बन्ध में....।[8] अपनी कहानियों में वे विवाह से जुड़े तमाम सवालों को उठाती है– क्या विवाह प्रेम और सौहार्द्र की आधारभूमि है या विवाह नारी अस्मिता को प्रभावित नहीं करते? क्या यह सुरक्षा की भावना मात्र से किया गया एक समझौता तो नहीं? क्या विवाह के साथ ढेर सारी परम्परागत अनिवार्यताएँ या औपचारिकताएं नहीं जुड़ी है। जिनसे स्त्री की अस्मिता प्रभावित होती है? जाहिर है इन प्रश्नों का सकारात्मक उत्तर दे पाना आज भी कठिन है। आखिर विवाह से अलग भी स्त्री–पुरुष का एक रिश्ता तो बनता ही है। एक रिश्ता है स्त्री–पुरुष का। दिखावे और तमाशे से परे मुक्ति से पारदर्शी क्षण का। क्या बचा रहता है उसमें एक–दूसरे से बंधे रहने में– एक थोथा खोल, एक अंतहीन नाटक, खरीददार और दुकानदार के बीच एक सौदा।[9]

तुरु, एक और विवाह, खरीददार, मेरा, वितृष्णा आदि इनकी कहानियाँ इसी आधारपर लिखी गयी स्पष्ट होती है। मृदुला गर्ग की कहानियों तथा उपन्यासों के पात्र प्रेम और सम्बन्ध में भी अपना स्वतंत्र दृष्टिकोण रखते हैं। वे कहीं भी परम्परागत नैतिकता की धारणा से प्रभावित नहीं हैं। वे विवाह पूर्व और विवाहेत्तर सम्बन्ध भी रखते हैं। उनके लिए उनकी आत्मानुभूति अहम होती है। प्रेम मनुष्य को उसकी सम्पूर्ण यांत्रिकता से अलग हटाकर आदिमानव बना देता है। उसके हिस्से की धूप उपन्यास

मूलतः प्रेम और मुक्त सम्बन्धों की कथा है जिसमें नायिका प्रेम के लिए पति को छोड़कर प्रेमी के पास जाती है और जब प्रेमी से विवाह करती है तो पूर्व पति के पास जाती है। स्त्री–पुरुष के सम्बन्ध में सब एक तरफा है, कहीं भी समानता नहीं है, मर्यादा का अभाव है वहाँ। दरअसल यह रिश्ता आश्रित और आश्रयदाता का है, क्योंकि इस रिश्ते के कारण ही स्त्री का सुहाग अमर रहेगा प्रेम नहीं।[10]

मृदुला गर्ग का लेखन विवाह, दाम्पत्यस, प्रेम एवं सम्बन्ध आदि के सम्बन्ध में प्रचलित धारणाओं एवं नैतिक मूल्यों के विरूद्ध संघर्ष का लेखन है सवाल उठता है क्या उनके लेखन में नवीन मूल्यों की स्थापना भी है? स्पष्ट रूप से नहीं में उत्तर दिया जा सकता है परन्तु आज का काल मूल्यों की दृष्टि से संक्रमण और शून्यता का काल है और प्राचीन दुहरे नैतिक मूल्यों के मलबे पर नवीन मूल्यों का सृजन संभव होगा, जिसकी प्रतीक्षा है। यह बात भी उचित नहीं है कि खण्डहरों के लोभ में महलों के स्वप्न को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। क्योंकि यह सवाल अस्मिता का है सम्बन्धों के चित्रण में रमेश दवे का कथन खरा प्रतीत होता है। मृदुला की कथा की न वर्जना है न अर्चना बल्कि यह एक स्वाभाविक वृत्ति है संवेग है, सहज कर्म है।[11]

अस्मित के सम्बन्ध में मृदुला जी के उपन्यास के पात्रों के कुछ अंश है जो स्त्री अस्मिता को उद्घाटित करते हैं कि उनका सम्बन्ध सिर्फ व्यक्तिगत जीवन से है जिसका ताल्लुकता स्त्री के पहचान से है 'मनीषा यह उसका अपना नाम है। इसका ताल्लुक न जितेन राय से है न मधुकर नागपाल से है।[12] स्त्री अस्मिता की प्राप्ति के अपराध बोध एक बाधक तत्व है। सामाजिक व्यवस्था से टाइप्ड व्यक्ति की मानसिक कंडीशनिंग उसे व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह से रोकती है और विकार ग्रस्त भी कर देती है। फलस्वरूप उसकी मुक्ति की संभावनाओं पर प्रश्न चिन्ह पैदा हो जाता है। इस बेवजह के अपराधबोध को मृदुला जी ने अस्मिता की खोज में बाधक माना है स्त्री का स्त्री होने के अपराधबोध से ग्रसित होना इनमें प्रमुख हैं। नैतिकता पर प्रहार को लेकर भी उनकी नायिकाएँ अपराधबोध से ग्रस्त नही होती बल्कि यह स्वाभाविकता में घटित होता है, अपने किये को लेकर उनकी नायिकाओं में पछतावा, कुंठा या वर्जना का भाव बिल्कुल नहीं है। उनकी कहानियों जहाँ मूलभूत समस्याओं के विस्तार है, जहाँ स्त्री को उसकी स्वाभाविकता के साथ चित्रित किया गया है। यह उपन्यास में भी परिलक्षित होता है। पर उपन्यास पर की गयी रमेश दवे की यह टिप्पणी वस्तुतः उनकी संपूर्ण रचनाधर्मिता पर सटीक बैठती है कि उन्होंने स्त्री को उसकी सम्पूर्ण भौतिकता में रचना है। उसका देहगत वासना के साथ भी और देहमुक्त व्यथा और विद्रोह के साथ भी। उनका प्रत्येक उपन्यास स्त्री की देह और मानस की कथा है उसके प्रेम और विराग की कथा है, उसकी उत्तेजतना और उद्वेलन की कथा है और पतित्व या पत्नीत्व से बंधे आजीवन

कारावास के विरूद्ध, विद्रोह और विचन की कथा है। किसी वाद या पूर्वाग्रह से मुक्त होकर उनके कथा साहित्य का पाठ नवीन ऊर्जा का संचार करता है। शायद इसलिए उनका उपन्यास अपने समय से आगे की कथा कही जा सकती है और यह समय के साथ आधुनिक प्रतीत होती रहेगी।

संदर्भ सूची :

1. मृदुला गर्ग, चुकते नहीं सवाल, पृ0 44
2. मृदुला गर्ग, चुकते नहीं सवाल, पृ0 53–53
3. प्रतिभा अग्रवाल (प्रसिद्ध रंग कर्मी) का साक्षात्कार, इन्दु जोशी द्वारा स्त्री गाथा, सम्पादक माला वैद, पृ0 61
4. मृदुला गर्ग, तुक कहानी (संगति विसंगति भाग 1), पृ0 325
5. मृदुला गर्ग, रंग ढंग, पृ0 34
6. मृदुला गर्ग, उसके हिस्से के धूप, पृ0 23
7. मृदुला गर्ग, रंग ढंग, पृ0 26
8. मृदुला गर्ग, चुकते नहीं सवाल, पृ0 74
9. मृदुला गर्ग, एक और अजनबी, पृ0 7
10. स्त्री–गाथा, सम्पादक माला वैद (आशापूर्णा देवी का साक्षात्कार– इन्दु जोशी द्वारा), पृ0 162
11. पुनश्च (पत्रिका), 2004, रमेश दवे, पृ0 16
12. मृदुला गर्ग, उसके हिस्से की धूप, पृ0 30

***

महाकवि कालिदास कृत मेघदूत में अर्थान्तरन्यास प्रयोग

डॉ. वन्दना पाण्डेय *

कविकुलगुरु कालिदास ने अपने काव्य चमत्कार से समस्त संसार में ख्याति प्राप्त की है। दूर–दूर देशों में, नाना भाषा–भाषियों ने इनके ग्रन्थों को पढ़कर उनका रसास्वादन करके इन गुणों से मुग्ध होकर इनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। इनके पदलालित्य रचना चातुर्य, इनकी कल्पनाशक्ति, प्रकृति–वर्णन, इनके चरित्र–चित्रण, इनके काव्य की सरसता इत्यादि गुणों का गान सुनकर भारतवर्ष का प्रत्येक निवासी प्रफुल्लित होता है, परन्तु कालिदास में विचार–गाम्भीर्य भी है, उनके पदों से उपदेश भी मिलता है। उनकी उक्तियाँ आज भी हमारा पथ–प्रदर्शन करती है। इन वाक्यों में संसार का अनुभव है, जीवन के बहुमूल्य सिद्धान्त हैं कालिदास के विषय में बाण ने यह सत्य ही कहा है कि–

निर्गतासु न वा कस्य, कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुर सान्द्रासु मंजरीष्विव जायते।।[1]

कालिदास की सूक्तियाँ मधुर सरस मंजरी के समान सचेतनों की चेतना को हर लेती हैं। वे जिस किसी भी विषय को आश्रय लेते हैं वहीं चमत्कार और रम्यता सिद्ध होती है।

कालिदास की उपमाओं में जो भावाभिव्यक्ति और रस सौन्दर्य मिलता है, उसके समकक्ष ही अर्थान्तरन्यास की ज्ञान धारा भी बहती है। किसी ने यथार्थ ही कहा है कि –

उपमा कालिदासस्य नोत्कृष्टेति मतं मम।
अर्थान्तरस्य विन्यासे कालिदासो विशिष्यते।।

कालिदास भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के प्रतीक थे। इस विशाल तथा विराट देश की संस्कृति कालिदास की वाणी में बोलती है। भारतीय ऋषियों द्वारा प्रचारित चिरन्तन तथ्यों को मनोभिराम शब्दों में भारतीय जनता के हृदय में उतारने का काम कालिदास की कविता ने सुचारू रूप में किया है। इस कविता का प्रणयन मानव हृदय की शाश्वत प्रवृत्तियों तथा उदात्त भावों का आलम्बन लेकर किया गया है। यही कारण है कि इसके भीतर ऐसी उद्दीप्त उदात्त भावना विद्यमान है जो भारतीयों को ही नहीं, प्रत्युत मानव–मात्र को सदा प्रेरणा तथा स्फूर्ति देती रहेगी। कवि जयन्त ने अपने 'न्यायमंजरी' में इन्हीं अर्थान्तरन्यासों के माध्यम से व्यक्त कालिदास की सूक्तियों के विषय में कहा है–

---

* एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत), सर्वोदय पी. जी. कॉलेज, घोसी, मऊ

अमृतेनेव संसिक्ताश्चन्दनेनेव चर्चिताः।

इस भारतीय कवि की वाणी में इतना रस है, इतना ओज भरा हुआ है कि दो सहस्र वर्षों के दीर्घकाल ने भी उसमें किसी प्रकार का फीकापन नहीं आने दिया। उसकी मधुरिमा आज भी भावुकों के हृदय को उसी प्रकार रसमय करती है जिस प्रकार उत्पत्ति के प्रथम क्षण में। मानव कल्याण के लिये इन काव्यों में मधुर शब्दों में स्थान–स्थान पर उपदेश भी दिये गये हैं। आज का मानव समाज परस्पर कलह तथा वैमनस्य से छिन्न–भिन्न हो रहा है। प्रबल समरानल के भीतर संसार की अनेक जातियाँ अपना सर्वस्व स्वाहा कर रही हैं विश्व नितान्त उद्विग्न है। मानवता के लिये महान संकट का समय है। कालिदास की ये सूक्तियाँ मानवों को उनका कर्तव्योद्बोधन कराने में सर्वथा सक्षम है तथा विषण्ण हृदय व्यक्तियों के लिये अमृत के समान है, जैसा कि जयन्त ने अपनी न्यायमंजरी में कहा भी है–

अमृतेनेव संसिक्ताश्चन्दनेनेव चर्चिताः।
चन्द्रांऽशुभिरिवोद्घृष्टा कालिदासस्य सूक्तयः।[2]

कालिदास की सभी रचनाएं अपना मौलिक स्थान रखती है। उसी प्रकार मेघदूत भी संस्कृत साहित्य का एक जाज्वल्यमान हीरक है, यह काव्य कोटि कल्पना का फल नहीं है, अपितु लौकिक काम और श्रृंङ्गार रस की सूक्ष्म भावनाओं का वर्णन करने के लिये ही उन्होंने मेघदूत लिखा, जिसमें यह वर्णन किया है कि प्रकृति के समरस होते हुये भी प्राणी को मनुष्य सुलभ विपत्ति और वियोग में सूक्ष्म भावनाओं का अनुभव किस प्रकार होता है और कैसे होना चाहिए।

सम्प्रति मेघदूत में महाकवि द्वारा अर्थान्तरन्यास का प्रयोग यह विचारणीय विषय है। मेघदूत वस्तुतः विरहपीड़ितउत्कण्ठित हृदय की मर्मभरी वेदना है जिसके प्रत्येक पद्य में प्रेम की विह्वलता, विवशता तथा विकलता अपने को अभिव्यक्त कर रही है।

आषाढ़ के पहले दिन कामदगिरि के शिखर पर लटके हुये मेघ को देखते ही कान्ताविरही कामी–यक्ष विरह से व्याकुल हो उठा और जिस मेघ को देखकर दूर देशस्थ पथिक भी अपने घर लौटने को उत्सुक हो जाता है। उस समय शापग्रस्त यक्ष की क्या दशा हुई होगी यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है, उसकी इस स्वाभाविक आकुलता का वर्णन करते हुये कालिदास ने कहा है–

मेधा लोके भवति सुखिनोऽप्यन्थावृत्तिचेतः।
कण्ठाश्लेशप्रणयिनि किं पुनर्दूरसंस्थे।।[3]

अर्थात्–बादल को देखकर जब सुखी लोगों का मन डोल जाता है तब उस वियोगी का तो कहना ही क्या, जो दूर देश में पड़ा हुआ अपनी प्रियतमा के आलिंगन के लिये अहर्निश व्याकुल रहता है।

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि ने मेघदर्शन से उत्कण्ठित हृदय वाले अश्रुदल को रोककर चिन्तित कुबेर के अनुचर उस यक्ष की अन्तर्व्यथा का अर्थान्तरन्यास के माध्यम से अत्यंत स्वाभाविक अंकन किया है।

इस प्रकार मेघ दर्शन से उत्कण्ठित वह यक्ष मेघ के ही हाथों अपनी प्रियतमा के प्राणेां की रक्षा के लिये संदेश भेजता है। सोचिये कहाँ तो धुआँ, अग्नि, जल और वायु से बना हुआ मेघ और वहाँ चतुर लोगों से पहुँचाया जाने वाला सन्देश, किन्तु कामार्त में इतनी समझ कहाँ रह जाती है कि वह जड़–चेतन का भेद कर सके, वह तो उत्सुकता उत्कण्ठा का शिकार बन गया है–

कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।।[4]

इस यक्ष के प्रति सहानुभूति रखते हुये महाकवि ने इसके द्वारा जड़मेघ के माध्यम से प्रिया को संदेश भेजने के कार्य को अनुचित नहीं ठहराया, बल्कि यह कहकर कि कामार्त्त में चेतनाचेतन के विवेक सामर्थ्य कहाँ, कहा भी है–

न पश्यति च जन्मान्धः कामान्धो नैव पश्यति।
मदोन्मत्ता न पश्यन्ति ह्यर्थी दोषं न पश्यति।।

इस प्रकार यहाँ भी आर्तहृदय यक्ष की विकलता की गम्भीरता दर्शनीय है, वह प्रिया विरह में इतना अधीर हो गया है कि अचेतन मेघ को ही अपनी दीनदशा दिखलाकर अपनी प्रिया के पास सन्देश ले जाने का अनुरोध करने लगता है। यहाँ कवि ने अर्थान्तरन्यास द्वारा ही उसके इस कार्य की भर्त्सना न करके–कामार्त्ता हि प्रकृति कृपणाश्चेतनाचेतनेषु कहकर समर्थन किया है।

यक्ष ने प्रिया के पास संदेश प्रेषण हेतु मेघ से याचना की, क्योंकि वह लोकविख्यात पुष्कर और आवर्तक मेघों के कुल में उत्पन्न और इच्छानुसार रूप लेने वाला क्या इन्द्र का प्रधान पुरुष है, मेघ सभी सद्गुणों से युक्त है, इन्द्र का विश्वासपात्र तथा उच्चकुलोत्पन्न है अतः उससे की गयी याचना निष्फल होने पर भी उत्तम है, क्योंकि कालिदास का यह विश्वास है कि–

याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमें लब्धकामा।।[5]

अर्थात्–सज्जन से निष्फल याचना भी अच्छी, नीच से सफल याचना भी अच्छी नहीं। गुणी व्यक्ति से की गयी याचना निष्फल होने पर भी नीच व्यक्ति से की गयी याचना निष्फल होने पर भी नीच व्यक्ति से की गयी। सफल याचना से अच्छी है। यहाँ कवि ने अर्थान्तरन्यास के माध्यम से ही अपने इस कथन की पुष्टि की है यह कालिदास का स्वयं का अनुभव है, दुष्ट व्यक्ति कभी भी किसी का भला नहीं कर सकता जैसे कोयला गरम रहने पर हाथ जलाता है तथा ठण्डा होने पर हाथ काला करता है–''ऊष्णो दहति चाङ्गारः शीतकृष्णायते करम्।।'' किन्तु गुणी व्यक्ति से अनिष्ट की आशंका नहीं रहती तथा साथ ही उत्तम साध्य के लिये उत्तम साधन भी

होना चाहिये, निम्न साधनों द्वारा उच्च साध्य की साधना युक्तिसंगत नहीं, यह भारतीय नैतिकता का मापदण्ड है।

इसी प्रकार मेघदूत में कालिदास के अर्थान्तरन्यास के अनेक प्रयोग हैं, जो संक्षेप में इस प्रकार वर्णित हैं–

आशाबन्धः कुसुमसहशं प्रायशो ह्यंगनानां,
सद्यःपाति प्रणथि हृदयं विप्रयोगे रूणद्धि।।[6]

अर्थात् आशारूप बन्धन प्रेमपूर्ण फूल के समान सुकुमार तथा विरह में तत्क्षण नष्ट होने वाले अबलाओं के जीवन को अक्सर रोक रखता हैं अर्थात् विरह में वनिता के पुष्पसदृश हृदय को आशा ही कुम्हलाने से बचाती है।

यह अर्थान्तरन्यास भी न केवल वनिता अपितु जीवमात्र के प्रति अत्यंत स्वाभाविक है। संसार के लोग दुःख का दिन इसी आशा के सहारे काटते हैं, जो उन्हें सुख से मिलाती है। कोई फल की आशा में कार्य करता है, तो कोई किसी से मिलन की आस लिये अत्यंत दुःसह जीवन को जीता है। इस प्रकार यह उक्ति अत्यंत स्वाभाविक है।

यक्ष मेघ से कहता है कि जब तुम मूसलाधार वृष्टि से (दावाग्नि को बुझाकर) आम्रकूट पर्वत के जंगलों की आग बुझाओगे तो वह तुम्हारा उपकार मानकर और मार्गपरिश्रम से क्लान्त जानकर बड़े प्रेम से तुम्हें अपनी चोटी पर आदर के साथ ठहरायेगा, क्योंकि–

न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय,
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः।।[7]

जब क्षुद्र लोग भी आये हुये मित्र के उपकार का ध्यान करके उसका सत्कार करने में नहीं चूकते तो आम्रकूट जैसे ऊँचे लोगों का कहना ही क्या?

अन्तः सारं धनं तुलयितुनानिलः शक्ष्यति त्वां
रिक्तः सर्वा भवति हि लधुः पूर्णता गौरवाय।।[8]

प्रस्तुत अर्थान्तरन्यास का प्रयोग सम्पन्न व विपन्न लोगों के सम्मानित व अपमानित होने को लक्ष्य कर किया गया है, यक्ष मेघ से कहता है कि हे मेघ देखो! वहाँ जल बरसा चुको तो जंगली हाथियों के सुगन्धित मद में बसा हुआ और जामुन की कुंजों में बहता हुआ रेवा का जल पीकर तब आगे बढ़ना। जल पीकर तुम जब भारी हो जाओगे तो वायु तुम्हे इधर–उधर झुला नहीं सकेगा। देखो! जिसके हाथ रीते होते हैं उसी को सब धिक्कारते हैं, और जो भरा–पूरा होता है उसका सभी आदर करते हैं, यह तो जनसामान्य के अनुभव का विषय है, नीतिशतक में भी कहा गया है–

अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
अन्यः भवति क्षणमिति मे वितर्कः।[9]

प्रणय का प्रथम लक्षण स्त्री का हाव–भाव है, इसका बड़े सुन्दर ढंग से कवि ने अर्थान्तरन्यास के माध्यम से प्रतिपादन किया है–

स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु।।[10]

यक्ष कहता है कि मेघ, मार्ग में तरंग के चलने से शब्द करने वाले पक्षी ही जिसकी करधनी के समान है, पत्थरों पर गिरने से मनोहरता के साथ बहने वाली तथा नाभि के सदृश भंवर को दिखलाने वाली निर्विन्ध्या नाम की नदी के पास आकर उसके रस को ग्रहण करने में अन्तरंग बनो, क्योंकि स्त्रियों की प्रणयी जनों में श्रृंगार चेष्टा ही प्रथम प्रणयवाक्य हो जाता है। स्त्रियों की चेष्टा से ही उनका प्रेम जाना जाता है, 'शाकुन्तलम्' में भी दुष्यंत शकुन्तला के आंगिक चेष्टाओं के द्वारा उसका अपने प्रति प्रेम जानकर कहा–अहो कामी स्वतां पश्यति– अर्थात् कामी को सब बात अपने ही मन की दिखायी देती है। कालिदास का यह अर्थान्तरन्यास मानों प्रणयानुमान का प्रथम सूत्र है।

इसी प्रकार सुहृदजनों के कार्य सिद्धि के लिये किया जाने वाला प्रयास तब तक शिथिल नहीं करना चाहिये जबतक कि उनका अभिलषित न सिद्ध हो जाय, इस बात को समझाते हुये यथा मेघ से कहता है कि, हे मेघ! बहुत समय तक चमकने से परिश्रान्त बिजली रूप पत्नी वाले आप सोये हुये कबूतरों से युक्त किसी घर की छत पर उस रात को बिताकर सूर्योदय के अनन्तर वहाँ प्रस्थान कर देना क्योंकि जो सज्जन अपने मित्र के कार्य को करने का बीड़ा उठाता है, वह उसमें आलस्य नहीं किया करता। भर्तृहरि ने भी कहा है–

'प्रारभ्यचोत्तमजना न परित्यजन्ति'

अर्थात् सज्जन पुरुष कार्य को प्रारम्भ करके उसे पूरा होने पर ही छोड़ते हैं। तथा इसी प्रकार–'अंगीकृतः सुकृतिनः परिपालयन्ती' इस उक्ति के अनुसार सत्पुरुष जिस बात के लिये प्रतिज्ञा कर लेते हैं उसे कभी भी बीच में ही नहीं छोड़ते हैं। इन्हीं सब नीतिवचनों का समर्थन कालिदास भी अपने इस अर्थान्तरन्यास के माध्यम से करते हैं–

मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः।[11]

कालिदास सभी विषयों के मर्मज्ञ थे। कामीजन को हठात् आकर्षित कर लेने वाली विवृतजघन प्रदेश वाली स्त्री के दर्शन के उपरान्त उन्हें किसी भी प्रकार से उसका उपभोग किये बिना दूर नहीं किया जा सकता। इस बात को अर्थान्तरन्यास के माध्यम से कवि व्यक्त करते हैं–

ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः।[12]

यक्ष मेघ से कहता है कि हे सखे! बेत की शाखतक पहुँचे हुये और हाथ से कुछ पकड़े गये के समान तद्रूप नितम्ब को छोड़ने वाले नीलवर्णयुक्त गम्भीरा नदी से जलरुप वस्त्र को हटाकर ठहरे हुये तुम्हारा प्रस्थान कष्ट से होगा, क्योंकि यौवन रस का अनुभव किया हुआ कौन सा पुरुष जघन को प्रकट करने वाली स्त्री का त्याग करने में समर्थ होगा? ऐसे व्यक्ति के लिये सभी उपदेश जर्जर पात्र में से जल के समान बह जाते हैं–

कुसुमशरशरप्रहाजर्जरिते हि हृदये जलमिव गलत्युपदिष्टः।[13]

सज्जन व्यक्ति सदा ही दीन–दुखियों के ताप का शमन करते हैं। विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिपरेषाम् परिपीडनाय।

तो इसका उत्तर दिया गया है–विपरीतमेतत् खलु साधवाय ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय। अर्थात् सज्जनों की विद्या ज्ञान के लिये, धन दान के लिये, तथा शक्ति निर्बलों की रक्षा के लिये होती है। इसीलिये यक्ष मेघ से कहता है कि–अंधड़ के चलने से देवदार के वृक्षों के आपस में रगड़ने से जब जंगल में आग लग जाय और उसके उड़ते हुये अंगारे जब चमरी गाय के लम्बे बाल समूह को जलाने लगे, तब तुम घनघोर वर्षा करके उसे बुझा देना, क्योंकि सज्जनों या बड़े लोगों की समृद्धियाँ आपदग्रस्तों की पीड़ा दूर करने वाली होती है। यहाँ भी कवि ने अर्थान्तरन्यास प्रयोग से बड़े ही सुन्दर ढंग से सज्जनों की सज्जनता की परिभाषा दी है–

आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदोह्युत्मानाम्।[14]

मूर्खों के निरूद्देश्य प्रयास को विफल कर देना ही उचित है यह बात समझाते हुये यक्ष मेघ से कहता है कि जब शरभ जाति के हरिण तुम्हारे दूर रहने पर भी तुम पर बिगड़कर उछलने के लिये मचलें और हाथ पैर तुड़वाने के लिये तुम पर सींग चलाने को झपटें, तो तुम उन पर घनघोर ओले बरसा कर उन्हें तितर–बितर कर देना, क्योंकि निरर्थक काम करने वाला कौन तिरस्कार का पात्र नहीं होता–

के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः।[15]

सहृदय व्यक्ति दूसरों के दुःख से दुःखी हो जाता है, इसका समर्थन कालिदास ने भी किया है–

प्रायः सर्वोभवतिकरुणावृत्तिराद्रान्तरात्मा।[16]

इसी प्रकार प्रियतम वियुक्त स्त्री के लिये प्रिय सन्देश उनके मिलन से कुछ ही कम होता है, इस लिये उनका संदेश लाने वाला भी समादृत होगा, यह बात मेघ को समझाते हुये यक्ष इस अर्थान्तरन्यास के माध्यम से अपनी बात का समर्थन करता है–

सीमान्तिनीनां कान्तोदन्तः सुहृदुपगतः संगमात्किंचदूनः।[17]

इस संसार में सुख–दुःख का क्रम बना हुआ है, कोई न तो सदा सुखी रहता है न दुखी ही, यह बात कवि ने यक्ष के माध्यम से समझाते हुये कही है कि, हे! कल्याणि तुम भी अब ज्यादा अधीर मत हो; क्योंकि–

कस्यान्त्यन्तं सुखमुपनवं दुःखमेकान्ततो वा,
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।।[18]

विरह में प्रेम की आवृत्ति का वर्णन करते हुये कवि ने कहा है–

स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगाद
दिष्टे वस्तुन्युपचिरसाः प्रेमराशिभवन्ति।[19]

अर्थात् न जाने लोग क्यों कहा करते हैं कि विरह में प्रेम कम हो जाता है– 'स्नेहः प्रवासाश्रया विनश्यति–'नीतिशतक।' सच्ची बात तो यह है कि जब

चाही हुई वस्तु नहीं मिलती तभी उसके पाने के लिये प्यास बढ़ जाती है और प्रेम ढेर होकर इकट्ठा हो जाता है–विरह में भोग न होने पर अभीष्ट वस्तु में तृष्णा की वृद्धि से स्नेह प्रेम की राशियों में परिणत हो जाते हैं।

यक्ष इतना चतुर है कि मेघ की स्वीकृति की भी चिन्ता नहीं करता और पूछता है–बन्धु तुमने मेरा काम करना निश्चित किया या नहीं। पर इससे यह न समझ बैठना कि तुम्हारी स्वीकृति लेकर ही मैं तुम्हें इस काम के योग्य समझूँगा क्योंकि तुम तो चातक के माँगने पर बिना कुछ कहे ही जल दे देते हो, सज्जनों की रीति ही यह है कि दूसरों का काम पूरा करना ही उनका उत्तर होता है।

प्रयुक्तं हि प्रणयिषुसतामीप्सितार्थक्रियैव।[20]

इस प्रकार कालिदास ने सुख–दुःख के अनुभव से आप्लावित होकर अपनी रागात्मिका अनुभूति को अपनी हार्दिक भावना की पूर्णता के कारण 'मेघदूत' के माध्यम से बाह्य अभिव्यक्ति के रूप में परिणत किया है। मेघदूत में अर्थान्तरन्यास का प्रयोग कवि ने बड़े स्वाभाविक ढंग से किया है, चाहे वह सज्जनों के स्वभाव का वर्णन हो, चाहे प्रणय विषयक बातें, चाहे वियोगावस्था की प्रबल वेदना हो चाहे सुखदुखात्मक जगत् का सहज चित्रण। सभी को उन्होंने अर्थान्तरन्यासों का प्रयोग कर प्रबल आधार दिया है। कालिदास ने अर्थान्तरन्यास का प्रयोग कर जिन सुन्दर बातों का उपदेश दिया है। वे सुभाषित या सूक्ति के रूप में समादृत हैं तथा इनका शिक्षण भी रतिलीला के समान आनन्दित करता है जैसा कि गोवर्द्धनाचार्य ने कहा है–

साकूत मधुरकोमलविलासिनीकण्ठकूजितप्राये।
शिक्षासमयेऽपि भुदे रतिलीलाकालिदासोक्ति।।[21]

इन श्लोकों का प्रणयन मानव हृदय की शाश्वत प्रवृत्तियों तथा उदात्त भावों का आलम्बन लेकर किया गया है। यही कारण है कि इसके भीतर ऐसी उद्दीप्त उदात्त भावना विद्यमान है, जो भारतीयों को ही नहीं प्रत्युत मानव मात्र को सदा प्रेरणा तथा स्फूर्ति देती रहेगी साथ ही 'अर्थान्तरस्य विन्यासे कालिदासो विशिष्यते' इस कथन को भी सार्थक सिद्ध करती है।

सन्दर्भ सूची :–

1. बाणभट्ट
2. जयन्त, न्यायमंजरी
3. मेघदूत, पूर्व मेघ, श्लोक 3
4. मेघदूत, कालिदास, श्लोक 5
5. मेघदूत, कालिदास, श्लोक 6
6. मेघदूत, कालिदास, पूर्वमेघ, श्लोक 9
7. मेघदूत, कालिदास, श्लोक 17
8. मेघदूत, कालिदास, श्लोक 20

9. नीतिशतक, भर्तृहरि
10. मेघदूत, कालिदास
11. मेघदूत, कालिदास, पूर्व मेघ, श्लोक 42
12. मेघदूत, कालिदास, पूर्व मेघ, श्लोक 45
13. बाणभट्ट, कादम्बरी (शुकनासोद्देश)
14. मेघदूत, कालिदास
15. मेघदूत, कालिदास, पूर्व मेघ, श्लोक 58
16. मेघदूत, कालिदास
17. मेघदूत, कालिदास
18. मेघदूत, कालिदास, पूर्व मेघ, श्लोक 49–30
19. मेघदूत, कालिदास, पूर्व मेघ, श्लोक 52
20. मेघदूत, कालिदास
21. गोवर्धनाचार्य

***

जनपद मैनुपरी : एकीकृत ग्राम्य विकास योजना एवं ग्रामीण विकास

*डॉ. (श्रीमती) मधु यादव**

भारत जैसे विकासशील देश के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी तीन–चौथाई जो कि लगभग 5.5 लाख गावों में बसी हुई है, के जीवन स्तर में गुणात्मक सुधार करें। इस सन्दर्भ में महात्मा गाँधी का विचार 'भारत गॉवों में निवास करता है, 'उचित ही है। अतः ग्रामीण अंचल के संतुलित एवं समग्र आर्थिक विकास हेतु कृषि उत्पादन में वृद्धि तथा उद्योगों का आधुनिकीकरण वर्तमान समय की आवश्यकता है। यही नहीं, इसके लिए प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि तथा औद्योगिक उत्पादन की बिक्री के लिए बाजार का विस्तार भी आवश्यक है। भारत के ग्रामीण विकास में गरीबी, निरक्षरता, अज्ञानता, अन्धविश्वास तथा बेरोजगारी विशेष रूप से बाधक बनी हुई है। देश की कुल आबादी का 50 प्रतिशत से अधिक भाग भयावह गरीबी में जीवनयापन कर रहा है। गरीबी के कारण जहाँ उत्पादन एवं शक्ति के श्रोत प्रभावित हुए हैं, वहीं विकास के अवसर भी कम हुए हैं। लघु एवं कुटीर उद्योग तथा कृषि उत्पादन में साधनों की कमी ने ग्रामीण विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। विगम पाँच दशकों में आर्थिक विकास के लिए चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन के बावजूद भी ग्रामीण विकास अपने लक्ष्य को पूरा नहीं कर पाया है।

भारत में सन् 1971–75 की अवधि में संचालित कार्यक्रमों के द्वारा कृषि के क्षेत्र में विकास तो हुआ, किन्तु उसका प्रभाव देश की सम्पूर्ण जनसंख्या के सभी वर्गो पर समान रूप से परिलक्षित नहीं हुआ। परिणाम स्वरूप सन् 1975 में भारतीय विज्ञान कॉग्रेस' के अधिवेशन में वैज्ञानिकों द्वारा एक ही योजना के तहत विकास कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने हेतु 'एकीकृत ग्राम्य विकास कार्यक्रम को मूल आधार रूप में स्वीकार किया गया और छठी पंचवर्षीय योजना (सन् 1978–79) से निर्धनता उन्मूलन एवं अतिरिक्त रोजगार सृजन के लिए भारत सरकार द्वारा इस योजना को आरम्भ किया गया। प्रारम्भ में यह योजना सम्पूर्ण देश के चयनित 2300 विकास खण्डों में, तत्पश्चात 2 अक्टूबर 1980 को देश के समस्त 5011 विकास खण्डों तथा उत्तर प्रदेश के समस्त 885 विकास खण्डों में प्रारम्भ की गई। इस आशा के साथ कि यह योजना सम्पूर्ण देश में 15 मिलियन परिवारों को प्रतिवर्ष प्रति विकास खण्ड की दर से औसतन 500 परिवारों को लाभान्वित करेगी। एकीकृत ग्राम्य विकास योजना की मूल इकाई, जिसको निर्धनता–सीमा रेखा से ऊपर उठाने का दायित्व सौपा गया है, परिवार है न कि एक व्यक्ति। सरकार द्वारा प्रति परिवार प्रति वर्ष 3500 रूपये से कम आय को गरीबी की सीमा रेखा निर्धारित किया गया जिसे आठवीं पंचवर्षीय योजना (वर्ष 1991–92) में बढ़ाकर 11000 रूपये कर दिया गया है। वर्तमान में ऐसे समस्त परिवारों, जिनकी आय 11000 रूपये वार्षिक से कम है, को

* एसोसियेट प्राफेसर भूगोल विभाग, आदर्श कृष्ण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोजाबाद)

एकीकृत ग्राम्य विकास योजनान्तर्गत सम्मिलित किया गया है। इस योजना का प्राथमिक व मूल उद्देश्य आर्थिक दृष्ट स कमजोर परिवारों (यथा–लघु किसान, सीमान्त किसान, खेतिहर मजदूर, ग्रामीण दस्तकार व अन्य) को आर्थिक सहायता प्रदान कर उत्पादन में वृद्धि करते हुए आर्थिक–सामाजिक रूप से उत्थान करके गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने का प्रयास करना है। इस योजनान्तर्गत देश में चयनित परिवारों की आय तथा रोजगार बढाने के लिए कृषि तथा अन्य सहायक व्यवसायों के रूप में लघु एवं कुटीर उद्योगों को स्थापित करने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान कर परिवारों को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने के सतत प्रयास हो रहे हैं।

योजना वर्गीकृत श्रेणियों में अनुदान अनुसूचित जाति के लघु किसान को 25 प्रतिशत एकीकृत ग्राम्य विकास योजना से तथा 25 प्रतिशत स्पेशल कम्पोनेन्ट योजना द्वारा सीमान्त किसान व भूमिहीन मजदूर एवं ग्रामीण दस्तकार व अन्य को 33.33 प्रतिशत एकीकृत ग्राम्य विकास योजना से व 16.67 प्रतिशत स्पेशल कम्पानेन्ट योजना से देने का प्रावधान है। इसी प्रकार सवर्ण जाति के लघु किसान परिवारों को 25 प्रतिशत एकीकृत ग्राम्य विकास योजना से तथा सीमान्त किसान, भूमिहीन मजदूर, ग्रामीण दस्तकार व अन्य परिवारों को 33.33 प्रतिशत केवल एकीकृत ग्राम्य विकास योजना से देय होगा।

एकीकृत ग्राम्य विकास योजना उत्तर प्रदेश में सन् 1978–79 से निरन्तर प्रगति पथ पर है। बैंकों द्वारा इस योजनान्तर्गत चयनित गरीब परिवारों को निरन्तर आर्थिक सहायता प्रदान की गयी है। योजना की सफलता एवं क्रियान्वयन का स्वरूप जानने के उद्देश्य से योजनान्तर्गत लाभान्वित परिवारों की आय में होने वाले परिवर्तन का अध्ययन करने के लिए, लाभान्वित परिवारेां की आर्थिक सहायता प्राप्त होने से पूर्व एवं पश्चात की आर्थिक स्थिति के तुलनात्मक अध्ययन को उपकल्पना स्वरूप चुना गया है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत अध्ययन में जिन विशिष्ट उद्देश्यों का अध्ययन किया गया है, निम्नवत् है :–

1. उक्त योजनान्तर्गत जिन परिवारेां को बैंक द्वारा आर्थिक सहायता प्रान की गयी है, उनकी आर्थिक सामाजिक दशाओं का अध्ययन करना।
2. चयनित परिवारेां को विभिन्न मदों पर बैंक द्वारा ऋण वितरण व उन मदों की पूर्ति व कारणों का अध्ययन करना।
3. योजनान्तर्गत प्रदत्त पूॅजी से लाभान्वित परिवारों की आय पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
4. योजनान्तर्गत प्रदत्त पूँजी से लाभान्वित परिवारों के व्यय पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
5. योजनान्तर्गत प्रदत्त पूँजी के परिणमस्वरूप लाभान्वित परिवारेां को होने वाले शुद्ध लाभ का अध्ययन करना।

विधि तन्त्र :–

उत्तर प्रदेश राज्य के मैनपुरी जनपद में सन् 1980–81 से क्रियान्वित एकीकृत ग्राम्य विकास योजनान्तर्गत निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति में आर्थिक सहायता प्रदान करने वाले बैंकों में ''जिला सहकारी बैंक'' का सर्वाधिक योगदान रहा है। अध्ययनकर्ताओं द्वारा उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु जनपद के समस्त नौ विकास खण्डों (सुल्तानगंज, बेबर, किशनी,

जांगीर, मैनपुरी, घिरोर, कुरावली, करहल, बरनाहल) के अन्तर्गत आने वाले कुल 862 गांवों में से सर्वप्रथम 150 गॉवों को ''दैव निदर्शन की लाटरी विधि'' द्वारा चुना गया है। चयनित गॉवों से चयनित वित्तीय सहायतार्थ परिवारेां को जांतिगत आधार पर तीन श्रेणियों (अनुसचित जाति, पिछड़ी जाति व सवर्ण जाति) में विभक्त किया गया है। प्रत्येक श्रेणी के लाभान्वित परिवारेां में से आनुपातिक आधार पर 2250 परिवारों को चयन ''सौद्देश्य निदर्शन विधि'' से किया गया है।

अध्ययन के अन्तर्गत तथ्यों का संकलन प्राथमिक एवं द्वितीयक ऑकड़ों के रूप में क्रमशः उत्तरदाताओं तथा विकास खण्ड कार्यालयों से किया गया है। निदर्शित परिवारों के मकानों को संरचना, आय तथा व्यय से सम्बन्धित ऑकड़ों को आर्थिक सहायता प्राप्त करने से पूर्व तथा पश्चात दोनों ही स्थितियों में अध्ययनकर्ताओं ने ''साक्षात्कार–अनुसूची'' के माध्यम से स्वतः ही संकलित किया है।

निदर्शित परिवारों की वार्षिक आय तथा वार्षिक व्यय के सम्बन्ध में ऑकड़े एकीकृत ग्राम्य विकास योजनान्तर्गत आर्थिक सहायता प्राप्त होने से पूर्व तथा पश्चात सन्दर्भ काल 1994–95 और 1996–97 के मध्य अगस्त 1995 से फरवरी, 1997 की समयावधि के अन्तर्गत एकत्रित किये गये हैं।

परिणाम एवं विवेचन :–

एकीकृत ग्राम्य विकास योजनान्तर्गत निदर्शित लाभान्वित परिवारों की विशेषताओं एवं प्राप्त ऋण को सारणी–1 में दर्शाया गया है –

सारणी–1

एककृत ग्राम्य विकास योजनान्तर्गत लाभान्वित परिवारों को प्रदत्त कुल पूॅजी

श्रेणी	परिवारों की आवृत्ति	व्यक्तियों की आवृत्ति	शिक्षितों की आवृत्ति	प्रदत्त कुल पूॅजी (रूपयों में)		
				अनुदान (क)	ऋण (ख)	योग (क+ख)
1– अनुसूचित जाति	750	3975	255	26,51,250 (50.00)	26,51,250 (50.00)	53,02,500 (100.00)
2–पिछड़ीजाति	750	3465	510	33,51,850 (32.07)	70,99,150 (67.93)	1,04,51,000 (100.00)
3–सवर्ण जाति	750	3165	690	38,36,575 (31.94)	81,74,309 (68.06)	1,20,10,875 (100.00)
कुल योग	2250	10605	1455	98,39,675 (35.44)	1,79,24,700 (64.56)	2,77,64,375 (100.00)

सारणी के तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि पारिवारिक सदस्य संख्या सबसे कम सवर्ण जाति के परिवारों में, अपेक्षाकृत अधिक पिछड़ी जाति के परिवारों में तथा सर्वाधिक अनुसूचित जाति के परिवारों में पायी गयी है, जिसका कारण सवर्ण जाति के परिवारों का अन्य जाति के परिवारों की तुलना में शिक्षा का अधिक प्रतिशत उन्नत सामाजिक आर्थिक स्तर का होना है जिसके फलस्वरूप सवर्ण जाति के परिवारों में छोटे परिवारों के प्रति अधिक जागरूकता पायी गयी है। जबकि शिक्षितों की संख्या सबसे कम

अनुसूचित जाति के परिवारों में, अपेक्षाकृत अधिक पिछड़ी जाति के परिवारों में तथा सर्वाधिक सवर्ण जाति के परिवारों में पायी गयी है, जिसका कारण सवर्ण जाति के परिवारों में शिक्षा के प्रति अधिक जागरूकता तथा अन्य जाति के परिवारों की तुलना में आर्थिक रूप से अधिक मजबूत होना ही है। तीनों श्रेणियों के समस्त निदर्शित परिवारों पर दृष्टिपात करने पर एक विशेष तथ्य सामने आया है कि तीनों ही श्रेणियों में विश्वविद्यालय स्तर तक की शिक्षा प्राप्त एक भी सदस्य नहीं पाया गया है। निदर्शित लाभान्वित परिवारों द्वारा प्राप्त की गयी पूँजी के तुलनात्मक अध्ययन में पाया गया कि सवर्ण जाति के परिवारों को सर्वाधिक, अपेक्षाकृत कम, पिछड़ी जाति के परिवारों को तथा सबसे कम अनुसूचित जाति के परिवारों को आर्थिक सहायता प्रदान की गयी है। कुछ प्रदत्त वित्तीय सहायता को दो भागों , एक अनुदान (छूट), दूसरा ऋण में विभाजित कर तुलनात्मक अध्ययन करने पर पाया गया है कि अनुदान (छूट) का भाग सर्वाधिक अनुसूचित जाति (50.00%) के परिवारों को, अपेक्षाकृत कम, पिछड़ी जाति (32.07%) के परिवारों को तथा सबसे कम सवर्ण जाति (31.94%) के परिवारों को प्रदान किया गया है। सवर्ण जाति के परिवारों में अनुदान का प्रतिशत कम होने का कारण, सवर्ण जाति की तुलना में पिछड़ी जाति में सीमान्त कृषक, भूमिहीन श्रमिक, ग्रामीण दस्तकार एवं अन्य के परिवारों का अधिक संख्या में पाया जाना है। अर्थात् पिछड़ी जाति की तुलना में सवर्ण जाति के परिवारों में लघु किसानें की संख्या अधिक पायी गयी है। ऋण भार सर्वाधिक सवर्ण जाति के परिवारों पर, अपेक्षाकृत कम पिछड़ी जाति के परिवारों पर तथा सबसे कम अनुसूचित जाति के परिवारों पर पाया गया है। निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि अनुदान (छूट) का अधिक प्रतिशत निदर्शित परिवारों में से अनुसूचित जाति को सवर्ण तथा पिछड़ी जाति से अधिक प्राप्त होने के कारण अनुसूचित जाति के परिवारों पर ऋणभार लगभग समान पाया गया है।

सौद्देश्य प्रदत्त पंजी– दकीकृत ग्राम्य विकास योजनान्तर्गत निदर्शित लाभान्वित परिवारों की सौद्देश्य प्रदत्त पंजी को सारणी –2 में दर्शाया गया है–

सारणी–2 ''एकीकृत ग्राम्य विकास योजनान्तर्गत निदर्शित लाभान्वित परिवारों को सौद्देश्य प्रदत्त पूँजी''

सोद्देश्य	अनुसूचित जाति		पिछड़ी जाति		सवर्ण जाति		कुल	
	परिवार की आवृत्ति	प्रदत्त कुल पूँजी (रू0में)	परिवार की आवृत्ति	प्रदत्त कुल पूँजी (रू0में)	परिवार की आवृत्ति	प्रदत्त कुल पूँजी (रू0में)	परिवार की आवृत्ति	प्रदत्त कुल पूँजी (रू0में)
(अ)दुधारू व अन्य पशु तथा कृषि से सम्बन्धित उद्देश्य								
(1) भैंस	195 (26.00)	1755000 (33.09)	181 (24.13)	1719500 (16.45)	165 (22.00)	1648875 (13. 70)	541 (24.04)	5120375 (18.44)
बैल	–	–	173 (23.07)	2422000 (23.17)	105 (14.00)	1680000 (13. 98)	278 (12.26)	4102000 (14.77)
सुअर	315 (42.00)	787500 (14.85)	–	–	–	–	315 (14.00)	787500 (2.83)
(2) भैंसा बुग्गी	–	–	22 (2.93)	352000 (3.36)	30 (4.00)	480000 (3.99)	52 (2.31)	8,2000 (2.99)
(3) पम्पिंग सेट	–	–	8 (1.07)	128000 (1.22)	15 (2.00)	240000 (1.99)	23 (1.02)	368000 (1.32)
योग	510 (88.00)	2542500 (47.95)	384 (51.2)	4621500 (44.22)	315 (42.00)	4045875 (33.69)	1209 (53.73)	11209875 (40.38)
(ब) कृषि से भिन्न उद्देश्य (1) घोड़ा तॉगा	60 (8.00)	1080000 (20.36)	104 (13.87)	1976000 (18.90)	135 (18.00)	2700000 (22.47)	299 (13.29)	5756000 (20.73)
(2) रिक्शा	135 (18.00)	540000 (10.18)	123 (16.4)	553000 (5.29)	120 (16.00)	540000 (4.49)	378 (16.8)	1633500 (5.88)
(3) दुकानें	15 (2.00)	300000 (5.65)	87 (11.6)	1740000 (16.64)	105 (14.00)	2100000 (17.48)	207 (9.2)	4140000 (14.91)
(4) कुटीर उद्योग	30 (4.00)	840000 (15.84)	52 (6.93)	1560000 (14.92)	75 (10.00)	2625000 (21.85)	157 (6.98)	5025000 (18.09)
योग (1+2+3+4)	240 (32.00)	2760000 (52.05)	366 (48.8)	5829500 (55.78)	435 (58.00)	7965000 (66.31)	1041 (46.27)	1655400 (59.62)
समस्त योग	750 (100.00)	5302500 (100.00)	750 (100.00)	10451000 (100.00)	750 (100.00)	12010875 (100.00)	2250 (100.00)	27764375 (100.00)

सारणी के ऑकड़ो के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि निदर्शित 2250 परिवारों में से 53.75 1209 परिवारों को दुधारू व अन्य पशु तथा तथा 46.27 1041 परिवारों को अन्य विभिन्न व्यवसायों को चलाने के लिए ऋण प्रदात किए गये है। अतः कहा जा सकता है कि योजनान्तर्गत दुधारू व अन्य पशु एवं कृषि से सम्बन्धित उद्देश्यो के लिए ऋण प्राप्त परिवारों की संख्या अपेक्षाकृत अन्य विभिन्न के लिए ऋण प्राप्त परिवारों से अधिक थी। दुधारू व अन्य पशु एवं कृषि से सम्बन्धित उद्देश्य के लिए कुल ऋण प्राप्त परिवारों को 1209 में से सबसे कम 23 परिवारों को पम्पिंग सेट, 52 परिवारों का भैसा बुग्गी , 278 परिवारों के बैल जोड़ी ,315 परिवारों को सूअर तथा 54 परिवारों को दुधारू भैंसे के लिए योजनान्तर्गत ऋण प्रदान किया गया है। इसी प्रकार अन्य विभिन्न व्यवसायों के लिए कुल ऋण प्राप्त परिवारों 1041 में से 157 परिवारों को कुटरी उद्योग यथा– जूता उद्योग, आलू चिप्स, हथकरघा , बान व रस्सूसी बनाना , तेल धानी , घरेलू माचिस इकाई, कुम्हार उघोग, कुटरी चर्म उद्योग, बढईगीरी , बीड़ी बनाना , डलिया बनाना , चूडी उद्योग तथा मत्स्य पालन इत्यादि 207 परिवारों को दुकानें यथा टेलरिंग , साइकिल रिपेंरिग , जनरल स्टोर , टाईप राईटिंग , पान–बीड़ी की दुकान , स्वेटर बुनाई फोटोग्राफी , मसाला पिसाई, नाई की दुकान तथा किराना इत्यादि 209 परिवारों को घोड़ा–तॉगा तथा 378 परिवारों रिक्शा के लिए योजनान्तर्गत ऋण प्रदान किया गया है। सोद्देश्य वितरित ऋण के तुलनात्मक अध्ययन के एक रूचिकर स्थिति स्पष्ट होती है। कि अनुसूचित जाति के परिवारों में से 68.00 परिवारों को दुधारू व अन्य पशु एवं कृषि से सम्बन्धित उदृदशेय के

लिए तथा 48.8 परिवारों को अन्य विभिन्न व्यवसायों के लिए ऋण प्रकदान किया गया है। सवर्ण जाति के परिवारों ने संभवतः अन्य विभिन्न व्यवसायों के लिए ऋण लिए ऋण की अधिक मॉग इसलिए की क्योकि सवर्ण– जाति के अधिकांश परिवारों के पास पहिले से ही दुधारू व अन्य पशु मौजूद थे। निष्कर्षत, कहा जा सकता है कि निर्देशित अनुसूचित जाति के परिवारों का दुधारू व अन्य पशु के लिए तथा सवर्ण जाति के परिवारों को अन्य विभिन्न व्यवसायों के लिए ऋण अधिक प्रदान किया गया है। जबकि पिछड़ी जाति के परिवारों को दुधारू व अन्य विन्नि व्यवसायों के लिए लगभग समान रूप से ऋण प्रदान किया गया हैं।

सारणी–3 : ''एकीकृत ग्राम्य विकास योजनान्तर्गत प्रदत्त पूॅजी का लाभान्वित परिवारों की आय पर प्रभाव''

श्रेणी	ए0ग्रा0वि0यो0 के पूर्व आय (रू.में)	ए0ग्रा0वि0वो0 के पश्चात आय (रू.में)	आय अन्तर	आय वृद्धि प्रतिशत
1– अनु0जाति 2– पिछड़ीजाति 3– सवर्ण जाति	17958584.00 18355588.00 19107788.00	20104577.80 22014296.80 23137953.40	2145993.80 3658708.80 4030170.40	11.95 19.93 21.09
मध्यमान	18473985.00	21752276.66	3278291.66	17.66

सारणी 3 में योजनान्तर्गत निदेर्शित परिवारों की आय वृद्धि में हुए अन्तर को दर्शाया गया है। सारणी के ऑकडो के विश्लेषण से स्पष्ट है कि निदर्शित अनुसूचित जाति के परिवारों की आर्थिक सहायता प्राप्त करने से पूर्व वार्षिक आय 1,79,58,584.00रू0 तथा पश्चात् बढकर 2,1,04,577.80 रू0 हो गयी है। पिछडी जाति के परिवारों की आर्थिक सहायता प्राप्त करने से पूर्व वार्षिक आय– 1,83,55,588.00 रू0 तथा पश्चात बढकर 2,2014,296.80रू0 हो गयी है। इसी प्रकार सवर्गा जाति के परिवरों की आर्थिक सहायता प्राप्त करने से पूर्व वार्षिक आय 1,91,07,783.00 रू0 तथा पश्चात बढकर 2,31,37,953.40रू0 हो गयी हैं। अतः कहा जा सकता है। कि योजनान्तर्गत आर्थिक सहायता प्राप्त करने के पश्चात् अनुसूचित जाति के परिवारों की आय में 21,45,993.80रू. की तथा सवर्ण जाति के परिवारों की आय में 40,30,170.00 रू0 की वृद्धि हुयी है। यहॉ पर यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि आय वृद्धि के रूप में केवल योजनान्तर्गत प्रदत्त अर्थिक सहायता से होने वाली आय की ही की गयी है। यद्यपि योजनान्तर्गत सम्मिलित तीनों श्रेशियो के परिवारों की वार्षिक आय में वृद्धि हुई है लेकिन तुलनात्मक अध्ययन में पाया गया कि आय वृद्धि–सवर्ण जाति के परिवारों सर्वाधिक 21.09 पिछड़ी जाति के परिवारों में अपेक्षाकृत कम 19,93 तथा अनुसूचित जाति के परिवारों में सबसे कम 11.95 हुई है। तीनों श्रेणियों में हुई आय वृद्धि का प्रतिशत के आधार पर तुलनात्मक विश्लेषण करें तो स्पष्ट

होता है कि अनुसूचित जाति के परिवारों की आय वृद्धि 11.95 की तुलना में पिछडी जाति के परिवारों में 66.78 अधिक तथा सवण जाति के परिवारों में 76.49 अधिक आय वृद्धि पायी गयी है जबकि पिछडी जाति के परिवारों की आय वृद्धि 19.93 की तुलना में सवर्ण जाति के परिवारों में 5.82 अधिक आय वृद्धि पायी गयी है जिसका कारण यह है कि सवर्ण जाति के परिवारों को ऐसे उदेश्यों के लिये ऋण प्रदान किया गया जिनमें होने वाले शुद्व लाभ की मात्रा अधिक पायी गयी है तथा साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि पिछड़ी एवं सवर्ण जाति के परिवारों ने अनुसूचित जाति के परिवारों की तुतना में प्रदत्तपूंजी ने अनुसूचित जाति के परिवारों की तुलना में प्रदंत्तपूंतजी का अधिक सदुपयोग किया में।

सारणी–4 : ''एकीकृत ग्राम्य विकास योजनान्तर्गत प्रदत्त पूॅजी का लाभान्वित परिवारों की व्यय पर प्रभाव''

श्रेणी	ए0ग्रा0वि0यो0 के पूर्व व्यय (रू.में)	ए0ग्रा0वि0वो0 के पश्चात व्यय (रू.में)	व्यय अन्तर	व्यय वृद्धि प्रतिशत
1– अनु0जाति	1,87,52,079.00	2,09,41,666.20	21,89,587.20	11.68
2– पिछड़ीजाति	1,88,47,176.00	2,25,86,000.80	37,38,824.80	19.84
3– सवर्ण जाति	1,99,13,496.00	2,41,02,062.40	41,88,566.40	21.03
मध्यमान	1,91,70,917.00	2,25,43,243.46	33,72,326.46	17.52

सारणी 4– में योजनान्तर्गत निदर्शित परिवारों का तीनो श्रेणियों में प्रदत्त लाभांश से पूर्व तथा पश्चात का वार्षिक व्यय एवं अन्त्र दर्शाया गया है। तालिका के ऑकडों के विशलेषण से ज्ञात होता है। कि अनुसूचित जाति के परिवारों का आर्थिक सहायता प्राप्त करने से पूर्व वार्षिक व्यय 1,87,52,079.00रू0 तथा पश्चात् वार्षिक व्यय 2,09,41,666.20रू0 और अन्तर 21,89,587.20रू0 पाया गया है। इसी प्रकार पिछडी जाति के परिवारों का आर्थिक सहायता प्राप्त करने से पूर्व वार्षिक 1,88,47,176.00 तथा पश्चात वार्षिक व्यय 2,2586,000.00रू0 और अन्तर 37,38,824.80रू0 पाया गया है। जबकि जाति के परिवारो का आर्थिक सहायता प्राप्त करने से पूर्व वार्षिक व्यय 1,99,13,496.00 रू0 तथा पश्चात वार्षिक व्यय 2,41,02,062.40रू0 और अन्तर 41,88,566.40 रू0 पाया गया है। इस प्रकार योजनान्तर्गत तीनो श्रेणियों में व्यय वृद्धि के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि व्यय वृद्धि–सर्वण जाति के परिवारों में सर्वाधिक 21.03,पिछडी जाति के परिवारों में अपेक्षाकृत कम 19.84 तथा अनुसूचित जाति के परिवारों मे सबसे कम 11.68 हुई है। तीनों श्रेणियों में हुई वृद्धि का प्रतिशत के आधार पर तुलनात्मक विश्लेष्ण करें तो स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति के परिवारों की व्यय वृद्धि 11.68 की ततुलना में पिछड़ी जाति के परिवारों की व्यय वृद्धि 19.84 की तुलना में सवर्ण जाति के परिवारों में 6.00 अधिक व्यय वृद्धि पायी गयी है। सर्वेक्षण के दौरान सर्वेक्षणकर्ताओं ने पाया कि अनुसूचित जाति के

परिवारों की पिछड़ी एवं सवर्ण जाति के परिवारों ने अपनी आय से प्राप्त धन का अपने दैनिक व सामाजिक कार्यक्रमों को पूरा करने में अधिक व्यय अर्थात् उपयोग किया है।

सारणी–5:''एकीकृत ग्राम्य विकास योजनान्तर्गत प्रदत्त पूँजी के परिणामस्वरूप लाभान्वित परिवारों को होने वाला शुद्ध लाभ''

श्रेणी	आय में अन्तर	व्यय में अन्तर	कुल लाभ (रू0 में)		
			कुल	प्रतिपरिवार	प्रति व्यक्ति
1– अनु0जाति	2148993.80	2189587.20	43593.60	58.12	10.97
2– पिछड़ीजाति	3638708.80	3738824.80	80116.00	106.82	23.12
3– सवर्ण जाति	4030170.40	4188566.40	158396.00	211.20	50.05
मध्यमान	3278291.66	3372326.46	94035.20	125.38	28.05

सारणी–5 में योजनान्तर्गत निदर्शित लाभान्वित परिवारों को होने वाला शुद्ध लाभ प्रति परिवार व प्रति व्यक्ति दर्शाया गया है। तालिका के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि योजनान्तर्गत एक वर्ष के पश्चात् शुद्ध लाभ प्रति परिवार सवर्ण जाति को सर्वाधिक अर्थात् 211.20 रू0, 106.82 रू0 पिछड़ी जाति को सवर्ण जाति का अपेक्षाकृत कम अर्थात् लगभग आधा तथा सबसे कम 58.12 रू0 अनुसूचित जाति को हुआ है। तीनों श्रेणियों में होने वाले प्रति परिवार शुद्ध लाभ का प्रतिशत के आधार पर तुलनात्मक विश्लेषण करें, तो स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति का प्रति परिवार शुद्ध लाभ 58.12 रू0 की तुलना में पिछड़ी जाति के प्रति परिवार को 83.79% अधिक तथा सवर्ण जाति के प्रति परिवार को 263.38% अधिक शुद्ध लाभ हुआ है जबकि पिछड़ी जाति के प्रति परिवार के शुद्ध लाभ 106.82 रू0 की तुलना में 97.72% अधिक (लगभग दुगुना) सवर्ण जाति के प्रति परिवार को शुद्ध लाभ हुआ है। इसी प्रकार योजनान्तर्गत शुद्ध लाभ प्रति व्यक्ति सवर्ण जाति को सर्वाधिक 50.05 रू0, पिछड़ी जाति को अपेक्षाकृत कम (23.12 रू0) तथा सबसे कम 10.97 रू0 अनुसूचित जाति को हुआ है। तीनों श्रेणियों में होने वाले प्रति व्यक्ति शुद्ध लाभ का प्रतिशत के आधार पर तुलनात्मक विश्लेषण करें तो स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति को प्रति व्यक्ति शुद्ध लाभ 10.97 रू0 की तुलना में पिछड़ी जाति के प्रति व्यक्ति को 110.76% अधिक तथा सवर्ण जाति के प्रति व्यक्ति को 356.24% अधिक शुद्ध लाभ हुआ है जबकि पिछड़ी जाति के प्रति व्यक्ति शुद्ध लाभ 2.12 रू0 की तुलना में सवर्ण जाति के प्रति व्यक्ति को 116.47% अधिक शुद्ध लाभ हुआ है, जो कि इस तथ्य की ओर संकेत है कि योजनान्तर्गत प्रति परिवार एवं प्रति व्यक्ति आय वृद्धि सवर्ण जाति में सामयिक समुचित, पिछड़ी जाति में सामयिक रूप से लगभग सन्तोषजनक जबकि अनुसूचित जाति में सामयिक रूप से असन्तोषजनक पायी गयी है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि

एकीकृत ग्राम्य विकास योजनान्तर्गत लाभान्वित परिवारों में से अनुसूचित जाति के परिवारों की सामाजिक–आर्थिक उन्नति प्रभावहीन, पिछड़ी जाति के परिवारों की सामाजिक–आर्थिक उन्नति में बहुत मामूली सी सफलता जबकि सवर्ण जाति के परिवारों की सामाजिक आर्थिक उन्नति में सीमित सफलता ही प्राप्त हो सकी है।

समालोचना :–

ग्रामीणों की गरीबी का मूल कारण प्राकृतिक आपदाएंह ँ, जो केवल अनुसूचित जाति के लिए ही नहीं अपितु सभी जातियों व वर्गो को समान रूप से प्रभावित करती है। ग्रामीण गरीब परिवारों में सीमान्त कृषकों की अधिकता स्पष्ट रूप से यह प्रदर्शित करती है कि सीमित भूमि पर इन परिवारों की बढ़ती हुई जनसंख्या का दबाव, अशिक्षा एवं अन्य सहायक आय के श्रोतों की कमी पायी जाती है, किन्तु भूमिहीन श्रमिकों में पारिवारिक सदस्य संख्या की अधिकता, अशिक्षा तथा कृषिविहीन साधनों व श्रोतों का न होना, उनकी गरीबी का मूल कारण है।

योजनान्तर्गत तीनों श्रेणियों में वितरित ऋण के सर्वेक्षित अध्यन से यह तथ्य सामने आया कि सवर्ण व पिछड़ी जाति के परिवारों को अनुसूचित जाति के परिवारों की तुलना में अधिक तथा भिन्न–भिन्न उद्देश्यों के लिए ऋण वितरित किया गया जबकि अनुसूचित जाति के परिवारों को सबसे कम तथा मुख्यतः तीन–चार उद्देश्यों के लिए ही ऋण वितरित किया गया है, जिससे स्पष्ट है कि क्षेत्रीय ऋण वितरित करने वाले आिकारियों द्वारा अनुसूचित जाति के परिवारों के प्रति भेदभाव पूर्ण नीति अपनायी गयी है। इस योजना के अन्तर्गत अधिकाशतः ऋण दुधारू व अन्य पशु तथा कृषि से सम्बन्धित उद्देश्य के लिए दिया गया है। किन्तु तीनों श्रेणियों (अनुसूचित जाति, पिछड़ी जाति तथा सवर्ण जाति) के सर्वेक्षित अध्ययन से यह तथ्य सामने आया है कि यह विचार उचित नहीं है क्योंकि गरीबों की पारिवारिक आय बढाने में अन्य विभिन्न व्यवसायों (यथा–घोड़ा, ताँगा, रिक्शा, कुटीर उद्योग तथा दुकानें इत्यादि) की क्षमता अधिक पाई गयी है।

योजनान्तर्गत प्रदत्त आर्थिक लाभांश से तीनों श्रेणियों के अन्तर्गत ऋण दिये गये परिवारों की आय बढ़ी है किन्तु विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि बैंक द्वारा दिये गये ऋण ने सवर्ण जाति के परिवारों को अधिक प्रभावित किया है। इसमें वास्तविकता यह है कि इन सवर्ण जाति के परिवारों को कृषि रहित अन्य विभिन्न व्यवसायों जैसे–घोड़ा–तॉगा, रिक्शा, कुटीर उद्योग तथा दुकानें इत्यादि के लिए अधिक मात्रा में ऋण दिया गया है। साथ ही अनुसूचित जाति के परिवारों की तुलना में सवर्ण व पिछडी जाति के परिवारों की अधिक आय वृद्धि का कारण पिछड़ी व सवर्ण जाति के परिवारों ने अनुसूचित जाति के परिवारो ंकी तुलना में प्रदत्त पूँजी का अधिक सदुपयोग किया है। योजनान्तर्गत तीनों श्रेणियों के परिवारो ंकी आय वृद्धि के साथ ही व्यय वृद्धि भी हुई है, जो कि इन परिवारों के सामाजिक–आर्थिक स्तर में सुधार को दर्शाती है। अनुसूचित जाति के परिवारों की तुलना में पिछड़ी व सवर्ण जाति के परिवारों में अधिक व्यय वृद्धि के कारण के सन्दर्भ में सर्वेक्षणकर्ताओं ने पाया कि अनुसूचित जाति के परिवारों की तुलना में पिछड़ी जाति व सवर्ण जाति के परिवारों ने अपनी आय से प्राप्त धन का अपने दैनिक सामाजिक कार्यक्रमों को पूरा करने में अधिक व्यय अर्थात् उपयोग किया है। योजनान्तर्गत प्रदत्त पूँजी से तीनों श्रेणियों (अनुसूचित जाति, पिछड़ी जाति तथा सवर्ण जाति) के

निदर्शित परिवारों की आय वृद्धि में प्रति परिवार व प्रति व्यक्ति आशानुरूप विशेष रूप से कोई महत्वपूर्ण लाभ नहीं हुआ है, किन्तु इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता है, कि योजनान्तर्गत प्रदत्त पूँजी से निदर्शित परिवारों की योजना से पूर्व की आर्थिक सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ है विशेष रूप से यह कहा जा सकता है कि योजनातर्गत निदिर्शत अनुसूचित जाति के परिवारों की प्रति परिवार व प्रति व्यक्ति आय वृद्धि में शुद्ध लाभ असन्तोषजनक है।

अतः प्रक्षेपित सामान्यीकरण के अनुसार भविष्य में एकीकृत ग्राम्य विकास योजनान्तर्गत ग्रामीण आर्थिक–सामाजिक स्तर में सुधार हेतु सरकार को इस योजना की संगठनात्मक प्रणाली एवं कार्यात्मक प्रविधि को भली भाँति व प्रभावी रूप प्रदान करना चाहिए। क्योंकि संगठनात्मक प्रणाली में योजनान्तर्गत गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों की सूची ग्राम प्रधानों, खण्ड विकास अधिकारी, पंचायत सचिव, ग्राम्य विकास अधिकारी एवं कृषि विकास अधिकारी इत्यादि बैठक कर तैयार करते हैं। इस बैठक में बैंक अधिकारी अथवा बैंक का कोई भी प्रतिनिधि उपस्थितनहीं होता है, जिसका परिणाम यह होता है कि योजनान्तर्गत ऋण वितरण के लिए चयनित लाभार्थियों की सूची बैंक शाखाओं को या तो उपलब्ध नहीं कराई जाती है और यदि सूची उपलब्ध कराई जाती है, तो देर से अथवा जो आवेदन पत्र बैंकों को अग्रसारित किये जाते हैं, वे पूर्णतया सही नहीं होते हैं जिससे उन पर ऋण स्वीकृत किया जाना सम्भव नहीं होता है। प्रायः ग्रामीण विकास प्रशासनिक इकाई और बैंक अधिकारियों के बीच सौहार्द पूर्ण सम्बन्ध नहीं पाये जाते हैं और जहॉ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध पाये जाते हैं वहॉ कार्य उच्च कोटि का पाया गया है। साथ ही कमजोर वर्गो को ऋण देने की प्रणाली और उसके मानदण्ड सरल और व्यवहारिक होने चाहिए। परन्तु बैंक के उच्च प्राधिकारियों द्वारा इस सम्बन्ध में दिये गये सम्बन्धित अनुदेशों का क्षेत्र स्तर पर वास्तविक रूप में पालन नहीं किया जाता है। सर्वेक्षण में यह भी पाया गया कि मध्यस्त इकाई के लोग बीच में पड़कर लाभार्थी को मिलने वाला लाभ स्वयं ले जाते हैं। इसी प्रकार कार्यात्मक प्रविधि में गरीबी की रेखा से नीचे के परिवारों का उचित चुनाव न होना, कार्यक्रम व सम्बद्ध व्यवसाय की पूर्ण जानकारी तथा तकनीकी व वैज्ञानिक जानकारी न देना, ऋण देने के पश्चात् पुनः सम्पर्क स्थापित न करना, फर्जी नाम पर ऋण प्रदान करना, वार्षिक प्रगति की रिपोर्ट में झूँठे आँकड़े प्रस्तुत करना, उन्नतिशील किस्म के पशु क्रय न करना, बाखरी भैंस क्रय कराना तथा दूध के विक्रय की उचित व्यवस्था न होना, कच्चा माल उपलब्ध कराने तथा निर्मित सामान के विक्रय की व्यवस्था न होना, एक ही गॉव के कई महिलाओं को समान व्यवसाय की सुविधा देना, अधिकारियों का बर्ताव अच्छा न होना तथा भ्रष्टाचार (सुविधा शुल्क) इत्यादि इस प्रकार के दोष हैं, जिनको दूर करने की दिशा में सचेष्ट प्रयास की आवश्यकता है। साथ ही योजनान्तर्गत वित्तीयन की प्रतिशतता भी बढ़ा देनी चाहिए। जिसके परिणामस्वरूप निर्बल वर्गीय ग्रामीण परिवार गरीबी की रेखा से ऊपर उठकर अपने सामाजिक–आर्थिक स्तर में सुधार कर सकें।

सन्दर्भ :

1. गुप्ता, एस0पी0 (1987) 'भारत में ग्राम विकास के चार दशक' ग्राम विकास प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. सिंह प्रमोद एवं तिवारी, अभिताभ (1986) 'ग्रामीण विकास–संकल्पना, उपागम एवं मूल्यांकन'।
3. सांख्यिकीय पत्रिका–जनपद मैनपुरी–1997–98।
4. जिला वार्षिक योजना–जनपद मैनपुरी–1997–98।
5. जिला जनगणना पुस्तिका– 1991।

***

धर्म क्या है, धर्म के विभिन्न स्वरूप

*डॉ. योगेन्द्र कुमार**

सार – प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में धर्म की परिभाषा, धर्म के लक्षण, का वर्णन किया गया है। तथा अलग–अलग सम्प्रदाय अलग–अलग आश्रम, समाज, तथा राजनीति के धर्मों का स्वरूप बताया गया है। धर्म के नाम से लोगों में उत्पन्न भ्रान्तियों के विषय में प्रकाष डाला गया है। तथा धर्म का अनुषरण करने से कैसे देष की, समाज की, परिवार की तथा कुल परम्परा की रक्षा की जा सकती है धर्म का पालन करने वाला मनुष्य कष्टों को शत्रुओं को परास्त करके समाज में अपनी पहचान बना सकता है तथा धर्म से विमुख हुआ प्राणी पशुवत होता है इत्यादि पर प्रकाष डाला गया है।

शब्द संकेत – **धर्म, आश्रम धर्म, वर्णाश्रम धर्म, अध्यात्म, मानवता, कर्तव्य, जीवन मूल्य।**

प्रस्तावना – प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में भौतिकवादी एवं भोगवादी प्रवृत्तियों के आधिक्य के फलस्वरूप मनुष्य के समकक्ष कुण्ठा, संत्रास, बिखराव, अपराध जैसी समस्याएं विकराल रूप में उपस्थित हो गयी है। बौद्धिकता एवं वैज्ञानिकता को ही सर्वोपरि मानने की कवायद हो रही है। किंतु धर्म विहीन वैज्ञानिकता सभ्य एवं विकसित समाज को दिशा देने में सक्षम हो सकता है कि नहीं, यह एक विचारणीय प्रश्न है। वस्तुतः सामाजिक एवं राजनीतिक विखराव का कारण अनैतिक एवं अधार्मिक आवरण ही है, इसलिए आवश्यकता इस बात के विचार की है कि मानवता के अस्तित्व की रक्षा किस प्रकार हो सकती है? धर्म का आश्रय लेकर अथवा उसको नकार कर। इसी संदर्भ में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि धर्म का स्वरूप क्या है? और दूसरा यह कि क्या धर्म से निरपेक्ष हुआ जा सकता है।

धर्म का इतिहास मनुष्य का इतिहास है क्योंकि जब से मनुष्य है वह धर्म के साथ संयुक्त है। धर्म मनुष्य के संपूर्ण जीवन को स्पर्श करता है। धर्म शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद के प्रथम मंडल के 22 वें सूक्त के 18 में मंत्र में इस प्रकार पाया जाता है।

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्म्माणि धारयन् ।।

धर्म मूल अर्थ में कर्तव्य, स्वभाव तथा जीवन मूल्यों को व्यक्त करता है। किसी वस्तु की, आत्म या अनात्म की विधायक वृत्ति को उसका धर्म कहते हैं। प्रत्येक पदार्थ का व्यक्तित्व जिस वृत्ति पर निर्भर हो, वही उस पदार्थ का धर्म है। जब हम कहते हैं कि माता– पिता का आदर करना पुत्र का धर्म है, तब उसका अर्थ कर्तव्य होता है। जब यह कहा जाता है कि जलाना अग्नि का धर्म है, तब यहां धर्म स्वभाव के अर्थ में लिया गया है।

---

* असिस्टेंट प्रोफेसर ज्योतिष, महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय मध्य-प्रदेश।

और जब हम यह कहते हैं कि सत्य एवं अहिंसा का पालन मनुष्य का धर्म है, तब वह जीवन मूल्य माना जाता है। किंतु किसी भी अर्थ में धर्म संप्रदाय या मतवाद के अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता। कालांतर में इस शब्द को इतना रूढ़ कर दिया गया है कि जिस से निकलना आज भी संभव नहीं प्रतीत होता। धर्म वस्तुतः किसी संप्रदाय या मत का द्योतक न होकर आचरण की संहिता या जीवन विधि है। यह मनुष्य एवं समाज को व्यवस्थित करता है तथा उसका क्रमशः विकास करता हुआ उन्हें उनके लक्ष्य तक पहुंचने योग्य बनाता है। इस आधार पर धर्म को दो भागों में बांटा गया है– स्रोत एवं स्मार्त।

वैदिक संहिता एवं ब्राह्मणों में उल्लेखित कृत्यों एवं संस्कारों का जिसमें समावेश होता है, वह स्रोत धर्म के अंतर्गत आता है, जिसे अग्नि की प्रतिष्ठा, पूर्णिमा एवं अमावस्या के यज्ञ आदि। स्मार्त धर्म का संबंध स्मृतियों तथा वर्णाश्रम धर्म से है।

महाभारत के अनुशासन पर्व में स्रोत एवं स्मार्त के साथ शिष्टाचार को भी धर्म का एक अंग माना गया है। एक अन्य विभाजन के अनुसार धर्म के 6 प्रकार बताए गए हैं– वर्ण – धर्म, आश्रम धर्म, वर्णाश्रम धर्म, (ब्राह्मण ब्रह्मचारी को पलाश का दंड धारण करना चाहिए आदि) गुण–धर्म (राजा को प्रजा की रक्षा करनी चाहिए) नैमित्तिक धर्म (वर्जित कार्य करने पर प्रायश्चित) तथा साधारण धर्म।2

महाभारत के अंतिम श्लोकों में से एक श्लोक में कहा गया है कि–

न जातु कामान्नभयान्नलोभाद, धर्म्मत्यजेज्जीवियस्यापिहेतो।
धर्मोनित्यः सुखदुःखेती नित्य, जीवो नित्यः हेतुरस्याप्यनित्यः ।।

यहां शरीर धर्म की नहीं बल्कि जीव धर्म की चर्चा की गई है क्योंकि मनुष्य केवल शरीर ही नहीं है। यहां जीव के नित्यत्व के साथ धर्म का भी नित्यत्व स्वीकार किया गया है। इस परिभाषा के अनुसार धर्म शब्द का प्रयोग सभी वस्तुओं के साथ हो सकता है। आकाश, पृथ्वी, अग्नि, शरीर, जीव, पशु, मनुष्य तथा साधारण धर्म आदि के रूप में धर्म का विस्तृत प्रयोग उसके यौगिकार्थ का ही द्यौतक है। वैदिक काल में 'ऋत' की कल्पना की गई थी जिसका शाब्दिक अर्थ है नैतिक–व्यवस्था। यही आगे चलकर कर्तक– मीमांसा का रूप ग्रहण कर लेता है और धर्म का समानार्थक हो गया और कहा गया है कि –

धरती धारयति वा लोकम् इति धर्मः।

अर्थात जो लोक को धारण करता है वह धर्म है। धर्म नैतिक नियमों द्वारा विश्व को शासित और व्यवस्थित करने का कार्य करता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति एवं समाज की सत्ता जिस पर आधारित है वह धर्म है। इसलिए कहा गया है कि–

धर्मेण हीनः पशुभिः समाना।

मनुष्य एक चेतन आत्मा है जिसका लक्ष्य है पूर्णता की प्राप्ति। पूर्णता की ओर अग्रसर करने एवं उसकी प्राप्ति के लिए मूल्यों का अनुसंधान आवश्यक है। इसलिए मनुष्य को धर्म की आवश्यकता है। आत्मा की उच्चतम स्थिति की प्राप्ति के लिए अब युद्ध एवं निःश्रेयस दोनों ही आवश्यक हैं, इसलिए वैशेषिक सूत्रों में कहा गया है –

यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः सः धर्मः।

भारतीय संस्कृति में धर्म को कर्म से अलग नहीं किया गया है बल्कि कर्म के माध्यम से ही धर्म की अभिव्यक्ति होती है। कर्म– मीमांसा का पहला सूत्र है–

अथातो धर्म जिज्ञासा।

अर्थात अब हम धर्मानुकूल कर्म को जानने की इच्छा से उस पर विचार करेंगे और निष्कर्ष के रूप में यह प्रतिपादित किया है कि वेद, ऋषि आदि द्वारा जिस कर्म को करने की प्रेरणा हो वही धर्म है। यहां यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि किस के लिए कौन सा कर्म अनुकूल है? आचरण का मानदंड क्या होना चाहिए? क्या कुछ सामान्य कर्म भी हैं जो सभी देश एवं काल के लिए समान हैं? साधारण दशा और विपत्ति के कर्तव्य अलग है या एक हैं?

धर्म को यदि जीवन मूल्य या नैतिक मूल्य के अर्थ में लिया जाए तो धर्म कर्म किसी विशेष जाति और देश के लिए न होकर प्राणी मात्र के लिए है। जो सबके लिए करणीय है उन्हें सामान्य धर्म की श्रेणी में रखा जाता है, किंतु वेद विहित यज्ञानुष्ठान आदि विशिष्ट शास्त्रानुकूल कर्म है जिसका आचरण सभी के लिए नहीं है। मनु ने धर्म का लक्षण बताते हुए कहा है कि श्रुति, स्मृति, सदाचार और अपनी आत्मा को संतोष धर्म के यही चार महत्वपूर्ण लक्षण हैं।3

इस लक्षण में धर्म के सभी पक्षों का समन्वय हो गया है। नास्तिक श्रुति एवं स्मृति को नहीं मानते लेकिन बाद के दोनों रूप तो उन्हें भी मान्य होने चाहिए। स्मृतियों में पहले मनुष्यों के साधारण धर्मों का वर्णन किया गया है जो सबके लिए करणीय हैं तथा जिसके पालन में ही मनुष्य समाज की रक्षा है। पुनः वर्णों एवं आश्रमों के अनुसार कर्तव्यों का विभाजन किया गया है (जिसे आधुनिक युग के संदर्भ में विवादास्पद माना गया है) इस धर्म के पालन के लिए संयम एवं संस्कार की आवश्यकता होती है।

साधारण या सामान्य धर्म जैसे सत्य एवं अहिंसा का पालन तो सबके लिए है। अतिप्राचीन काल से सत्य को सर्वोपरि कहा गया है। ऋग्वेद में कहा गया है कि सत्य एवं असत्य में प्रतिस्पर्धा चलती है। सोम सत्य की रक्षा एवं असत्य का हनन करता है।4

शतपथ ब्राह्मण में मनुष्य को सत्य के अतिरिक्त और कुछ न बोलने की शिक्षा दी गई है।5

तैत्तिरीय उपनिषद् में गुरु शिष्य को ''सत्यम वद धर्मं चर'' का आचरण करने के लिए प्रेरित करता है। छांदोग्योपनिषद में दान, अहिंसा, सत्य वचन की चर्चा है। बृहदारण्यकोपनिषद में
तदेतानि जपेद् असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय की अनुशंसा है। इसी में सबके लिए दम, (आत्म–निग्रह), दान एवं दया तीन प्रधान गुणों का वर्णन किया गया है।

कठोपनिषद में भी आत्मज्ञान के लिए दुराचरण त्याग, मनः शांति एवं मनोयोग की आवश्यकता पर बल दिया गया है। महाभारत के शांति पर्व में कहा गया है कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अक्रोध, तपस्या, दान, मन और इंद्रियों का निग्रह विशुद्ध बुद्धि किसी से ईर्ष्या न करना, उत्तम शील स्वभाव का परिचय देना ही धर्म है। अहिंसा परमो धर्मः और ''धर्म न दूसर सत्य समाना'' से धर्म के स्वरूप का परिचय मिलता है महाभारत में ही आगे कहा गया है कि मनसा, वाचा, कर्मणा, अहिंसा, संदिच्छा एवं दान श्रेष्ठ पुरुषों का शाश्वत कर्म है – अद्रोह सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा। अनुग्रहश्च दानं च सता धर्म सनातनः।6 गौतम धर्म सूत्र में दया, शांति, शौच, असूया, अकार्पण्य आदि आत्म गुणों को ब्रह्मलोक ले जाने वाला ठहराया गया है। मनु ने भी सभी वणों के धर्म के रूप में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इंद्रिय निग्रह को स्वीकार किया है। इस प्रकार धर्म शास्त्रकारों ने वर्णाश्रम धर्म की व्याख्या के साथ ही साथ नैतिक गुणों को भी अत्यधिक महत्व दिया है। पुराणों में भी कुछ अंतरों से इन्हीं गुणों को स्वीकार किया गया है नैतिक गुणों के उत्थान के बिना किसी प्रकार का यज्ञ, तप आदि निष्प्रभावी होगा। इसके साथ ही साथ धर्म– पालन के लिए अंतः करण को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। मनु ने कहा है वही करो जो तुम्हारी आत्मा को संतुष्टि दें। यहां यह प्रश्न हो सकता है कि इन उदाहरणों की आवश्यकता होती ही क्यों है? इसके उत्तर के लिए हमें अपनी संस्कृति एवं दार्शनिक विचार परंपराओं का अवलोकन करना होगा। हमारी दार्शनिक विचारधारा अहम् ब्रह्मास्मि तत्वमसि और सर्वं खलु इदं ब्रह्म है। अंतरण को संतुष्ट करते हुए जो नैतिक मूल्यों का पालन करता है पर था अथवा कर्तव्य मार्ग पर चलता है वह समस्त विश्व में एक ही आत्मा का दर्शन करने लगता है। और आत्मनः प्रतिकूलानि परेषाम् न समाचरेत् अर्थात जो अपने लिए प्रतिकूल हो उसे दूसरों के लिए नहीं करना चाहिए इसका पालन भी आसानी से करने लगता है।

वस्तुतः यही धर्म का वास्तविक स्वरूप है इसी से मानवीय मूल्यों की रक्षा की जा सकती है लेकिन इसके साथ ही साथ श्रद्धा एवं कर्मकांड को भी विशिष्ट स्थान दिए बिना मनुष्य की धार्मिक बुद्धि को संतुष्टि नहीं मिलती। श्रद्धा को तो धर्म का प्राण कहा गया है, लेकिन वह अंध श्रद्धा न होकर तर्क की कसौटी पर कसी हुई श्रद्धा होनी चाहिए क्योंकि बिना तर्क या बुद्धि के श्रद्धा अंधविश्वास का रूप ग्रहण कर लेती है और धर्म के

वास्तविक स्वरूप को आच्छादित करके उसे धार्मिक मतवाद या संप्रदाय के रूप में परिवर्तित कर देती है। अनेक धार्मिक संप्रदायों के स्वरूप का विवेचन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि रूढ़ियों के वशीभूत होकर इस्लाम धर्म अन्य धर्मावलंबियों का शत्रु हो गया। भाईचारे और विश्व बंधुत्व की शिक्षा देने वाले ईसाई धर्म में रूढ़ियों के कारण कैथोलिक एवं प्रोटेस्टेंण्ट नामक दो संप्रदाय हुए और दोनों में भयानक रक्तपात हुआ। इसी तरह नैतिक मूल्यों को सर्वोपरि मानने वाला और अहिंसा परमो धर्मः का उद्घोष करने वाला बौद्ध–धर्म रूढ़ियों और अंधविश्वास के कारण वज्रपात और तंत्रयान के रूप में घोर अनैतिकता का गढ़ बन गया था। हिंदू धर्म में भी शैव, शाक्त, वैष्णव आदि का कलह जगत प्रसिद्ध है। वस्तुतः धर्म का वास्तविक स्वरूप केवल श्रद्धा के आधार पर नहीं बल्कि तर्क एवं विवेक से समीक्षित होकर ही परिलक्षित हो सकता है। यही दार्शनिकता धार्मिक मतों को रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों में जकड़ने से बचाता है।

कुछ विद्वानों के अनुसार कर्मकांड या विशिष्ट प्रकार की पूजा प्रार्थना इत्यादि को भी धर्म के एक आवश्यक अंग के रूप में स्वीकार किया जाता है जिसके माध्यम से व्यक्ति परमतत्व के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता है। लेकिन इसे धर्म के आवश्यक अंग के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि धार्मिक होने के लिए विशिष्ट प्रकार का कर्मकांड हो ही यह आवश्यक न होकर कर्तव्य पालन आवश्यक है। गांधी जी का कथन है कि मनुष्य का जन्म धर्म की साधना के लिए हुआ है किंतु मनुष्यता से एकाकार हुए बिना धर्म पालन नहीं किया जा सकता यहां मनुष्यता की सेवा एवं आराधना ही कर्मकांड है। कबीर ने भी विशिष्ट प्रकार के कर्मकांड का विरोध करते हुए कहा है कि ''जहॅ – जहॅ डोलू सो परिचर्या, जो–जो करूं सो पूजा'' कर्तव्यों का उचित निर्वहन ही पूजा एवं परिचर्या है।

इस प्रकार मानवता से संबंधित धर्म ही वास्तविक धर्म है यह व्यक्ति के साथ ही साथ समाज का भी विधायक है– इसलिए कहा गया है कि– धर्मो धारयति प्रजा किंतु वर्तमान युग में राजनीतिज्ञों द्वारा धर्म एवं रिलीजन (संप्रदाय या मतवाद) को समानार्थक मानकर धर्म को अत्यंत ही संवेदनशील मुद्दा बना दिया गया है। जबकि दोनों का तात्पर्य एक दूसरे से बिल्कुल ही भिन्न है। रिलीजन के मुख्यतः दो तत्व बताए गए हैं एक दैवीय शक्ति की अनुज्ञा और दूसरा है एक मजहबी संगठन में संगठित होने की अभिलाषा। इस प्रकार रिलीजन का स्वरूप रूढ़ी ग्रस्त होने के कारण विद्वेष, संघर्ष रक्तपात का कारण बना। रिलीजन बंधन का कारण है क्योंकि उसका रूप संप्रदायगत है जबकि धर्म का व्युत्पत्तिलब्ध अर्थ और उसका स्वरूप दोनों ही रिलीजन से भिन्न हैं। ध्रियतेयः सः धर्मः। व्यक्ति, वस्तु एवं समाज की सत्ता जिस पर आधारित है वह धर्म है। इसलिए यास्क में निरुक्त में नैतिक नियमों को ही धर्म कहा है क्योंकि बिना नैतिक हुए मनुष्यत्व सुरक्षित नहीं रह सकता। इसलिए भारतीय संस्कृति में धर्म की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए उसे पुरुषार्थों की श्रेणी में रखा गया है। वह अर्थ और काम का नियामक तथा मोक्ष को प्रदान

करने वाला माना गया है। मनुष्य के समक्ष आसन्न एवं परम प्रेरणा एवं लक्ष्य होता है इसमें से उसे आसन्न की अपेक्षा परम का चुनाव करना है इसलिए इन नैतिक गुणों को अपनाना धर्म पर चलना है और धर्म एक पुरुषार्थ के रूप में स्वीकृत किया गया है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अपने कर्तव्यों का पालन और मानव मात्र को आत्मवत समझना ही सनातन धर्म का लक्षण है। इस सार्वभौमिकता का कारण यह है कि व्यक्ति के रूप में सनातन धर्म का कोई आदि प्रवर्तक स्वीकार नहीं है बल्कि धर्म की धारा अनादिकाल से प्रवाहित है। समय–समय पर उसमें विभिन्न महापुरुषों द्वारा परिलक्षित सत्य का भी समावेश किया गया है और इस प्रकार उसका रूप परिवर्धि्दत एवं संवर्धि्दत हुआ है, उसमें किसी प्रकार की संकीर्णता उत्पन्न नहीं हुई क्योंकि इस धर्म में व्यक्ति पूजा को नकारा गया है इसलिए धर्म की यह सनातन धारा अनेक प्रकार के सांप्रदायिक आघातों से जूझने के बाद भी सुरक्षित है। इसलिए कहा जाता है कि धर्म से हर प्रकार की रक्षा हो सकती है जो व्यक्ति धर्म का पालन करता है उसकी सभी जगह रक्षा होती है एक जगह किसी विद्वान ने भी कहा है –

धर्मेण हन्यते व्याधि धर्मेण हन्यते ग्रहाः।धर्मेण हन्यते शत्रून् यतो धर्मस्ततो जयः।।

धर्म करने से संपूर्ण प्रकार के क्लेश, दुख ,दोष का निवारण होता है धर्म ही एक ऐसा साधन है जिससे मनुष्य स्वयं और अपने संपूर्ण बंधु बांधवों के कष्टों का निवारण करने में समर्थ होता है धर्म करने से रोग की शांति होती है धर्म करने से ग्रहों की अनुकूलता होती है धर्म करने से शत्रुओं में आपके प्रति अनुकूलता आती है जहां धर्म होता है वही विजय होता है धर्म सदैव सन्मार्ग के प्रति प्रेरित करता है इसलिए हम सब को सदैव धर्म करना चाहिए

धर्म का अर्थ है सत् कर्म, अच्छा कर्म जिसे स्वयं को एवं सामने वाले को संतुष्टि हो , उचित हो वह धर्म है । धर्म से संपूर्ण प्रकार के दोषों का शमन किया जा सकता है । धर्म करने से सब प्रकार के रोगों को भी समाप्त किया जा सकता है । धर्म करने से संस्कारों का प्रादुर्भाव होता है । धर्म करने से असहाय की सेवा होती है । धर्म करने से ईश्वर प्रसन्न होता है । इसलिए सदैव धर्म करना चाहिए ।

संदर्भ :

1. अनुशासन पर्व– 151 / 65
2. धर्मशास्त्र का इतिहास भाग– 1 पृष्ठ 102
3. वेदः स्मृति सदाचारः स्वस्य च प्रियात्मनः। एतच्चतुर्विध प्राहु साक्षाद्धर्म्मस्य लक्षणम्। मनुस्मृति– 2 / 12
4. ऋग्वेद– 7 / 04 / 12
5. स वै सत्यमेव वदेत – शतपथ ब्राह्मण शान्ति पर्व – 162 / 2

***

जम्मु-कश्मीर में गोजरी संगीत को ऊंचाई पर ले जाती महिला गायिकाएं

हिमानी गुप्ता *

लोक साहित्य मनुष्य की जिंदगी का दर्पण होता है और यह लोक समूह के द्वारा रचा जाता है क्योंकि यह परंपरा की वस्तु है। इसलिए मौखिक परंपरा के द्वारा ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संचार करता हुआ कई पीढ़ियों का सफरतय कर जाता है। लोक साहित्य अलग–अलग रूपों या कह लिया जाए कि विधाओं का संगम है। यह निरंतर बह रहे दरिया की तरह है जिसमें बहुत सारी विद्याएं रूपी नहरें आकर समा जाती है। इन विद्याओं में से लोक गीत एक प्रमुख विद्या है और यह लोक साहित्य का बहुत कीमती खजाना है। लोक गीत का शाब्दिक अर्थ लोगों में प्रचलित गीत, लोगों द्वारा निर्मित गीत या लोगों के विषयों से जुड़े गीतों में मिलते है। पंजाबी के महान लेखक डॉ. बंजारा बेदी अनुसार लोक गीत जाति के अंदरूनी जस्बातों का काव्यमयी प्रवाह होते हैं। लोक गीत अपनी भूमि पर बसने वाले लोगों के सामाजिक, आर्थिक, अध्यात्मिक व ऐतिहासिक रूपों को समय–समय पर उजागर करते रहते हैं। गोजरी लोक गीतों का जायजा अगर थोड़ा ध्यान से लगाए तो पता चलता है कि समय–समय अनुसार दरपेश मामलों के कारण उभरे जस्बातों का इजहार गोजरी लोक गीतों में बाखूबी मौजूद है। गोजरी लोक गीत गुज्जरों के रंगीले जीवन की मुंह बोलती तस्वीर होते हैं। इन लोक गीतों में इनके परंपरागत जीवन, साहित्य और सभ्याचार की पेशकारी भरपूर मात्रा में हुई मिलती है। इन लोक गीतों में उपभाषी व समूह विशेष वाले सारे गुण मौजूद है। गोजरी लोक गीत गुज्जरों के पूरे जीवन चक्र को रूपमान करते हैं। इन लोक गीतों में इनके जीवन का उतार–चढ़ाव, सामुहिकता, भाईचारा, मेहनतकश जिंदगी, प्यार भावना, विरह, विछोड़ा, वियोग, संयोग, खुशी–गम, एक–दूसरे के प्रति शिकवें, नाराजगी आदि का प्रगटावा भरपूर तरीके से हुआ है। गुज्जरों की मानसिक चेतनता का अध्ययन लोक गीतों के विषयों, भाषा, शैली, शाब्दिक प्रबंध से सहज ही हो जाता है।

बहुभाषी और अनेक संस्कृति वाले प्रदेश जम्मू और कश्मीर की जनसंख्या में भी एक बहुसंख्यक खंड गुज्जर समुदाय है। यह इस क्षेत्र के लिए गर्व की बात है कि जम्मू और कश्मीर के गुज्जरों ने कई बहुमुखी कलाकारों, प्रसिद्ध कवियों, प्रख्यात लेखकों और विद्वानों को जन्म दिया है, जिन्होंने अपनी मेहनत से गोजरी में गुणवत्तापूर्ण साहित्य का निर्माण किया है। इसके अलावा उन्होंने अपने जोश से प्रदर्शन कला, गोजरी लोक और

* छात्रा, एम. ए. म्युजिक, युनिवर्सिटी ऑफ जम्मू, जम्मू-कश्मीर

हल्के संगीत को नई ऊंचाइयां दी हैं। सांस्कृतिक और आदिवासी प्रतिबंधों के बावजूद गीतों और संगीत के सार्वजनिक प्रदर्शन को हतोत्साहित करने के बावजूद, गुज्जर महिलाओं ने गोजरी संगीत को लोकप्रिय बनाने और प्रसारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। परंपरागत रूप से उनसे अपेक्षा की जाती थी कि वे अपने प्रदर्शन को चार दीवारों के भीतर होने वाले विवाह जैसे निजी कार्यों तक ही सीमित रखें। जो लोग गायन करियर और शौकिया गायकों के लिए प्रतिबद्ध थे, उन्हें सार्वजनिक उपस्थिति से प्रतिबंधित कर दिया गया था। बड़ों ने सालों तक सार्वजनिक रूप से महिलाओं द्वारा गायन/नृत्य को कलंकित किया। इसे देखते हुए कोई भी महिला गुज्जर गायिका दर्शकों के सामने या रेडियो और टीवी के लिए गाने को तैयार नहीं थी। गुज्जर महिला गायकों की अनुपस्थिति में रेडियो कश्मीर श्रीनगर के गोजरी कार्यक्रमों के लिए, जो 1972 में रेडियो श्रीनगर से और बाद में 1974 में रेडियो जम्मू से शुरू किया गया था, में पंजाबी, कश्मीरी और डोगरी महिला गायकों ने ज्यादातर गोजरी गाने गाए।

80 के दशक के अंतिम पड़ाव में कुछ गुज्जर महिलाओं को भी मंच पर देखा गया। उन्होंने दूरदर्शन केंद्र, श्रीनगर के अलावा जम्मू और श्रीनगर के रेडियो स्टेशनों पर प्रसारित होने वाले गोजरी कार्यक्रमों के लिए गाना शुरू किया। रेशम बीबी और पार्टी, हलीमा बीबी और पार्टी, बेगम जान और पार्टी, रजिया बेगम और पार्टी, नूर जान इनमें से कुछ अग्रणी थी। गुज्जर और बक्करवाल जनजातियों से संबंधित ये महिला कलाकार अपने क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व विभिन्न प्रकार के संगीत नोट्स और गायन की किस्मों के साथ करती हैं। उनमें से अधिकांश ने अपने श्रोताओं को चार दशकों से अधिक समय तक प्रभावित किया।

गुज्जर संगीत की प्रसिद्ध व उभरती महिला गायिकाएं :

बेगम जॉन :

गोजरी महिला गायिकाओं में सबसे पहला नाम बेगम जॉन का आता है जिन्होंने अपनी मधुर आवाज में गोजरी संगीत को नई ऊंचाई प्रदान की। बेगम जॉन जम्मू और कश्मीर प्रदेश की एक बेहद लोकप्रिय जनजातीय लोग गायिका है जिन्होंने अपना पूरा जीवन गोजरी पारंपरिक गायन को जनता के बीच लोकप्रिय बनाने के लिए समर्पित कर दिया। उनका जन्म उत्तरी कश्मीर के बांदीपोरा के एक दूरदराज गांव अरिगाम में 1954 में एक खानाबदोश परिवार में हुआ। उन्होंने नौ साल की उम्र में कश्मीरी और डोगरी के बाद जम्मू–कश्मीर की तीसरी सबसे बड़ी बोली जाने वाली भाषा गोजरी में गाना शुरू कर दिया था। बाद में उन्होंने कश्मीर की आदिवासी और खानाबदोश लड़कियों की मदद से लड़कियों का पहला गोजरी समूह बनाया और जम्मू–कश्मीर और भारत के आसपास के राज्यों में आदिवासी गायन और गोजरी संगीत को लोकप्रिय बनाने के लिए एक सामूहिक प्रयास शुरू किया। आदिवासी समुदाय की इस प्रख्यात गायिका ने गुज्जर

महिलाओं को सशक्त बनाने में पेश आने वाली बाधाओं को तोड़ने के लिए बहुत त्याग किया। उन्होंने अपने बेटे और भाई को भी आतंकवादियों के हाथों खो दिया क्योंकि आतंकवादी चाहते थे कि बेगम जॉन गाना बंद कर दे। बेगम जान ने गोजरी लोक गीतों और संगीत के माध्यम से अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के लिए मान्यता प्राप्त करने के लिए अपने और भाषा के खिलाफ भेदभाव के वर्षों तक संघर्ष किया। 80 के दशक के अंतिम पड़ाव में बेगम जॉन गोजरी भाषा और संस्कृति की जम्मू–कश्मीर की सबसे प्रसिद्ध कलाकार के रूप में उभरीं, जिन्होंने आदिवासी गायन और खानाबदोश गुज्जरों के संगीत में नए विषयों को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने अपना पूरा जीवन गोजरी लोक–गीतों के प्रचार और प्रसार में बिताया और गोजरी में बीट, बारामही, बार, शोपिया, ताजजा और अन्य प्रकार के गायन की परंपरा को लोकप्रिय बनाया और जम्मू–कश्मीर की संपूर्ण लोक–गायन बिरादरी के लिए प्रवृत्ति स्थापित की। उनकी अनूठी और मधुर आवाज और लोक गीतों और पारंपरिक संगीत के प्रस्तुतिकरण ने जम्मू–कश्मीर की पूरी आदिवासी आबादी को रेडियो की ओर आकर्षित किया। उन्हें 2009 में जम्मू और कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी सहित कई संस्थानों द्वारा गोजरी संगीत में उनके जीवन भर के योगदान के लिए सम्मानित किया गया। रेडियो कश्मीर के 50 साल के जश्न के दौरान उन्हें रेडियो कश्मीर, श्रीनगर/जम्मू द्वारा भी सम्मानित किया गया। दूरदर्शन श्रीनगर ने उनके लोकप्रिय कार्यक्रम ''कारवां'' के लिए उनके गायन पर एक श्रृंखला भी तैयार की। इसके अलावा भारत के कई सामाजिक और सांस्कृतिक संगठनों जिसमें गुर्जर देश चौरिटेबल ट्रस्ट जम्मू, ट्राइबल रिसर्च एंड कल्चरल फाउंडेशन और बजम–ए–अदब कंगन शामिल हैं, ने कश्मीर के आदिवासी संगीत में योगदान के लिए बेगम जॉन को सम्मानित किया। उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, उत्तर क्षेत्र सांस्कृतिक केंद्र, जम्मू–कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, संगीत नाटक अकादमी नई दिल्ली और अन्य निकायों द्वारा आयोजित राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों में अपने गायन के माध्यम से जनजातीय संगीत का प्रतिनिधित्व किया। भारत सरकार के जनजातीय मामलों के मंत्रालय द्वारा आयोजित कई कार्यक्रमों में एक कलाकार के रूप में नई दिल्ली में प्रदर्शन करने के लिए उन्हें जम्मू और कश्मीर से दो बार चुना गया। वह अब जम्मू और कश्मीर में कई गोजरी कलाकारों का मार्गदर्शन कर रही हैं और उनकी मदद से कई गोजरी लोक गीतों के नोटेशन सहेजे गए हैं। बेगम जॉन बताती है कि सभी बाधाओं के बावजूद उन्होंने अपने सपने को जीया। गांव में रहते हुए उन्हें हमेशा घुटन महसूस होती थी लेकिन उन्होंने कभी हार नहीं मानी। जैसे–जैसे उन्होंने प्रसिद्धि प्राप्त करना शुरू किया, बाकी समुदाय ने भी उनके प्रति अपना दृष्टिकोण बदल दिया। जिन्होंने उनका विरोध किया, उन्होंने अपनी बेटियों को लोक गायन में

ढालने के उपाय बताए। वह अपने समुदाय की लड़कियों के लिए दर–दर भटकता रही। उन्होंने हमेशा अपने उत्तराधिकारियों के लिए रास्ता सुगम करने के बारे में सोचा। जब गुज्जर लड़कियां मंच पर गाती हैं और दर्शकों से तालियां बटोरती हैं तो उन्हें अपनी जीत का अहसास होता है।

परवीना चौधरी :

–लोकप्रिय गोजरी गायिका बेगम जॉन की बेटी परवीना चौधरी ने अपने जीवन के शुरुआती वर्षों में गाना शुरू कर दिया था। उन्होंने "पंछी", ''कियोन रूसो दिलबर जानियान'', ''जी महिया मेरिया'', ''जी वही शोपिया जी'', ''ओह मेरा जंग बाजा रे'', ''सी हार्फी'', ''बरमाह'' सहित कई गोजरी गाने/लोक गीतों का निर्माण किया। ''बीट'', ''दूली'', ''बीट'', ''नूरा बेगम'' जो तुरंत हिट हो गई। परवीना का लक्ष्य गोजरी लोक संगीत की परंपरा को अपनी मां, अपनी प्रेरणा से लोगों के दिलों और दिमागों में जिंदा रखना है। जम्मू–कश्मीर अकादमी के माध्यम से, उन्हें दिल्ली, चंडीगढ़, राजस्थान और भारत के अन्य राज्यों में आयोजित जनजातीय मामलों के मंत्रालय, भारत सरकार के तहत राष्ट्रीय जनजातीय समारोहों के अलावा, अंतर–राज्य सांस्कृतिक आदान–प्रदान कार्यक्रमों में कई प्रदर्शनों के दौरान गाने के कई अवसर मिले हैं।

रजिया अशरफी :

जम्मू और कश्मीर के बारामुला जिले में भारत और पाकिस्तान के बीच वास्तविक नियंत्रण रेखा के पास एक गांव घरकोट उड़ी की रहने वाली एक युवा आदिवासी (चेची–गुज्जर) गायिका रजिया अशरफ गुर्जरों–बकरवालों के बीच अपनी आकर्षक और सुंदर आवाज के लिए जानी जाती है। सोलह साल की उम्र में उन्होंने दूरदर्शन, रेडियो और जम्मू–कश्मीर अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेज कार्यक्रमों में प्रदर्शन करना शुरू कर दिया। अपने करियर के दस वर्षों के भीतर उन्होंने गायन में अपनी खुद की एक शैली विकसित की जो बहुत जोर से लेकिन अत्यधिक लयबद्ध है।

फरहा चौधरी :

पुंछ जिले में मेंढर के एक दूरदराज गांव की रहने वाली फरहा चौधरी गुज्जरों–बकरवालों के बीच अपनी सुरीली आवाज के लिए बहुत लोकप्रिय हैं। उन्होंने जम्मू–कश्मीर अकादमी, रेडियो और दूरदर्शन के लिए कई विशेष संगीत कार्यक्रम किए हैं। इसके अलावा, फरहा चौधरी गोजरी लोक और प्रकाश गायन में एक जाना–पहचाना नाम हैं। वह हमेशा विभिन्न संस्थानों द्वारा आयोजित किए जा रहे साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में जम्मू–कश्मीर की आदिवासी महिलाओं की भागीदारी के पक्ष में रही हैं, क्योंकि उनके अनुसार यह बड़े पैमाने पर महिलाओं को सशक्त बनाएगा।

अनीसा करीम :

गोजरी कवि करीम दरहलवी की बड़ी बेटी अनीसा करीम दरहल जम्मू–कश्मीर के राजौरी जिले की रहने वाली हैं। वह गुज्जर समुदाय की पहली महिला हैं जिन्होंने 2017 में जम्मू विश्वविद्यालय से संगीत में स्नातकोत्तर किया। अनीसा गोजरी में हल्का संगीत गाती हैं और जम्मू–कश्मीर सांस्कृतिक अकादमी, रेडियो और टीवी चौनलों द्वारा आयोजित कई संगीत कार्यक्रमों में भाग ले चुकी हैं। हालांकि उनके पास कई लोकप्रिय गीत हैं, लेकिन उन्हें ''एक पांची थरी याद मां'', ''कोई गल अंबरी की दास घड़्या'', ''कबोरान की चल चल गय'' और अन्य जैसी रचनाओं के लिए जाना जाता है।

शबीना चौधरी :

शबीना जिला जम्मू–कश्मीर के डोडा जिले से संबंधित है जिस जिले ने बशीर मस्ताना, यूसुफ अरमान, जान मोहम्मद हकीम, खुदा बख्श ख्याली और अन्य जैसे कई गोजरी गायकों और कवियों को जन्म दिया है। 2000 में डोडा के गांव शैली में जन्मी शबीना चौधरी अपनी हाई–पिच वॉयस क्वालिटी के लिए जानी जाती हैं। वह मुख्य रूप से लोक गीतों के अलावा गोजरी हल्का संगीत गाती हैं और युवा आदिवासी लड़कियों को अपना संगीत बनाने और गाने के लिए प्रेरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनके लोकप्रिय रिकॉर्ड ''दोपत्तो महारा सजना गो'', ''बैत'', ''कुकू बलियस गया'' और अन्य हैं।

सलीमा चौधरी :

सलीमा एक खानाबदोश परिवार से ताल्लुक रखती है जो वर्तमान में बोलिचक, आरएसपुरा जम्मू में रह रही है। उन्होंने जम्मू विश्वविद्यालय से गृह विज्ञान में स्नातकोत्तर किया है। बचपन से ही संगीत के प्रति जुनून के साथ वह पहले भी कई संगीत समारोहों में भाग ले चुकी हैं। स्व–प्रशिक्षित सलीमा ने पिछले दस वर्षों से गजल, गीत और अन्य गीतों के अलावा कई लोक गीतों को रिकॉर्ड किया है। उनके कई गाने यूट्यूब और अन्य सोशल मीडिया साइटों पर उपलब्ध हैं।

शबनम नाज :

जम्मू–कश्मीर में राजौरी जिले के थन्नामंडी के पास स्थित मंगोटा गांव के एक सरपंच और आदिवासी बुजुर्ग की बेटी शबनम नाज गोजरी भाषा में गायन बेड़े में नवीनतम उभरती आवाज है। उन्होंने राजौरी के सरकारी पीजी कालेज से स्नातक की डिग्री की और नई दिल्ली में आयोजित एक महीने तक चलने वाले गणतंत्र दिवस समारोह में गुज्जर संस्कृति का प्रतिनिधित्व कर चुकी है। कई कार्यक्रमों के दौरान उन्होंने भारत के राष्ट्रपति, भारत के प्रधानमंत्री और देश के अन्य गणमान्य व्यक्तियों से भी मुलाकात की। वह गायन की एक अनूठी और जीवंत शैली के लिए जानी जाती हैं जिसने गोजरी संगीत में एक आधुनिक स्वाद जोड़ा है।

संदर्भ :

1. कल्चर हेरिटेज आफ जम्मू एंड कश्मीर(अंग्रेजी) : डॉ. वारिकू
2. हमारा साहित्य(गुज्जर विशेषांक), हिन्दी : अजरा चौधरी
3. हिस्ट्री आफ गोजरी लैंग्वेज एंड लिटरेचर(अंग्रेजी) : डॉ. रफीक अंजुम
4. द गुज्जर्स–अंक 4(अंग्रेजी) : डॉ. जावेद राही
5. गुज्जर और गोजरी– अंक 13 (अंग्रेजी) : डॉ. जावेद राही

***

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के निहतार्थ एवं अनुसंधान का विकास

*डॉ. सुषमा चौरसिया**

उच्चतर शिक्षा मनुष्य और सामाजिक कल्याण के विकास में अति आवश्यक भूमिका निभाती है। जैसा कि हमारे संविधान में भारत को एक लोकतांत्रिक न्यायपूर्ण सामाजिक रूप से सचेत, संस्कारिक और मानवीय राष्ट्र जहाँ सभी के लिए न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भाइचारे का भाव हो एक ऐसे राष्ट्र के रूप में विकसित करने की परिकल्पना की गई है। एक राष्ट्र के आर्थिक विकास और आजीविकाओं को स्थायित्व देने में भी उच्चतर शिक्षा एक महत्वपूर्ण योगदान देती है। जैसे–जैसे भारत ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था और समाज की ओर बढ़ता जा रहा है वैसे–वैसे और अधिक भारतीय युवा उच्चतर शिक्षा की ओर बढ़ेंगे।

इक्कीसवीं सदी की आवश्यकताओं को देखते हुए गुणवत्तापूर्ण उच्चतर शिक्षा का आवश्यक उद्देश्य, अच्छे चिन्तनशील, बहुमुखी प्रतिभा वाले रचनात्मक व्यक्तियों का विकास करना होना चाहिए। यह एक व्यक्ति को एक या एक से अधिक विशिष्ट क्षेत्रों में गहन स्तर पर अध्ययन करने में सक्षम बनाती है और साथ ही चरित्र, नैतिक और संवैधानिक मूल्यों, बौद्धिक जिज्ञासा, वैज्ञानिक स्वभाव, रचनात्मकता सेवा की भावना और विज्ञान, सामाजिक विज्ञान कला मानविकी, भाषा, साथ ही व्यवसायिक एवं तकनीकी विषयों सहित विभिन्न विषयों में 21वीं सदी की क्षमताओं को विकसित करती हैं। उच्चतर गुणवत्ता वाली शिक्षा द्वारा व्यक्तिगत उपलब्धि और ज्ञान, रचनात्मकता, सार्वजनिक सहभागिता और समाज में उत्पादक योगदान को सक्षम करना चाहिए। इसे छात्रों को अधिक सार्थक और सन्तोषजनक जीवन और कार्य भूमिकाओं के लिए तैयार करना चाहिए और आर्थिक स्वतंत्रता को सक्षम करना चाहिए। व्यक्तियों के समग्र विकास के लिए यह आवश्यक है कि पूर्व विद्यालय से उच्चतर शिक्षा तक सीखने के प्रत्येक चरण में कौशल और मूल्यों का एक निर्धारित सेट शामिल किया जाय।

उच्चतर शिक्षा देश में ज्ञान निर्माण और नवाचार का आधार भी बनाती है और इसके कारण राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसलिए उच्चतर शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तिगत रोजगार के अवसरों का सृजन करना ही नहीं बल्कि अधिक जीवंत और सामाजिक रूप से जुड़े हुए सहकारी समुदायों के साथ मिलकर एक अधिक खुशनुमा, सामंजस्यपूर्ण सुसंस्कृत, उत्पादक, अभिनव, प्रगतिशील और समृद्ध राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करना है।

---

* एसोसिएट प्रोफेसर, कन्या महाविद्यालय, आर्य समाज, भूड़, बरेली

उपर्युक्त विवरणों के आलोक में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में उच्चतर शिक्षा में मूलभूत परिवर्तनों के साथ शिक्षा के उद्देश्यों को सफल बनाने का प्रयास किया जा रहा है। नई शिक्षा नीति में उच्च शिक्षा के सुधार के लिए किये प्रयासों का अपना विशिष्ट निहितार्थ है। नई शिक्षा नीति की प्रासंगिकता को उच्च शिक्षा में निहित कमियों और वर्तमान की आवश्यकताओं पर दृष्टिपात किया जा सकता है। वर्तमान भारत में उच्चतर शिक्षण की कुछ समस्याएँ जिनमें खण्डित शैक्षिक परिस्थितकी तंत्र जो उच्चतर शिक्षा की विशेषता बनी हुई है समाप्त करना होगा। इस सन्दर्भ में बैंग्लूर में उपराष्ट्रपति बैंकैया नायडू ने अभिव्यक्त किया कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 छात्रों को सभी क्षेत्रों में नये शिक्षण और सीखने की रणनीतियों तक पहुँच के कारण उचित शैक्षिक परिस्थितिकी तंत्र बनायेगी। उपराष्ट्रपति ने कहा कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पिछले कुछ वर्षों में देश भर में कई नए आई.आई.टी.आई.आई.एम. केन्द्रीय विश्वविद्यालय और कौशल विकास केन्द्र स्थापित किये गये हैं। वास्तव में नई शिक्षा नीति इस समस्या के विकल्प के रूप में स्थापित होगा जिसमें एक लोकतांत्रिक शैक्षिक परिस्थितिकी का निर्माण किया जा रहा है। पूर्व में संज्ञानात्मक कौशल विकास और सीखने के परिणामों पर कम बल दिया गया। जबकि शिक्षा का उद्देश्य उसके परिणामों में निहित है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 संयुक्त राष्ट्र संवहनीय विकास लक्ष्य–4 के अनुरूप है। यह नीति मानवाधिकारों, संवहनीय विकास और जीवन शैली, कौशल मूल्य और आचरण को स्थापित करती है। इस नीति के तहत छात्रों के बहुमुखी विकास की परिकल्पना की गई है, जिसमें सम्पूर्ण भारत में ''समग्र एवं बहुविषयक शिक्षा प्रणाली'' की स्थापना एक महत्वपूर्ण कदम है। इस प्रस्थापना से पूर्व की शिक्षा प्रणाली जिसमें विषयों का कठोर विभाजन, विद्यार्थियों को बहुत पहले ही विशेषज्ञता का निर्धारण और अध्ययन के संकीर्ण क्षेत्रों की ओर धकेला नहीं जा सकेगा अर्थात् कला और विज्ञान, पाठ्यक्रम और पाठ्यक्रमेत्तर गतिविधियों तथा व्यवसायिक और औपचारिक शिक्षा के बीच कठोर विभाजन नहीं होगा।

नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत ''न्यायसंगत और समावेशी शिक्षा'' को दोहराया गया है। इसके पूर्व में सामाजिक, आर्थिक रूप से वंचित क्षेत्रों में विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों का अभाव रहा है जिससे इन समूहों में शिक्षा की पहुँच एक समस्या रही है। वर्तमान शिक्षा नीति के अन्तर्गत न्याय संगतता को समावेशी विचार मानते हुए सामाजिक और आर्थिक रूप से कमजोर समूहों और क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। इसमें राज्यों के विशाल अन्तर को ध्यान में रखा गया है। इसमें कमजोर समूहों की बड़ी आबादी वाले क्षेत्रों को स्पेशल एजुकेशन जोन घोषित करने की सिफारिश की गई है। नीति में यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि जिले में या उसके पास कम से कम एक और पूरे भारत में अधिकतर ऐसे उच्चतर शिक्षा संस्थान हो जो

''स्थानीय और भारतीय भाषाओं में शिक्षा या कार्यक्रमों'' का माध्यम प्रदान करेगा। शिक्षा नीति के माध्यम से देश की भाषाओं के संवर्द्धन के उद्देश्य से भारतीय अनुवाद और विवेचना संस्थान–इण्डियन इण्स्टीट्यूट ऑफ ट्रान्सलेशन एण्ड एटरप्रेटेशन की स्थापना का प्रस्ताव है।

विद्यार्थियों के अनुभव में वृद्धि एक महत्वपूर्ण विषय है। इसके लिए आवश्यक है कि ''शुरूआती बाल्यावस्था देखभाल'' से लेकर ''स्कूली और उच्चतर शिक्षा'' तक सभी स्तरों पर पाठ्यक्रम में तालमेल हो। नीति में स्कूली शिक्षा का पाठ्यक्रम और अध्यापन का ढाँचा आयु, वर्ग और श्रेणी के अनुसार विकास के विभिन्न चरणों में छात्रों की आवश्यकताओं और दिलचस्पी के अनुसार निर्धारित किया जायेगा। नीति में 2030 तक मजबूत अध्यापन पर आधारित गुणवत्तापूर्ण ''प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा के सर्वव्यापीकरण'' का सुझाव दिया गया है।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में योग्यता आधारित कैरियर प्रबंधन और संकाय और संस्थागत प्रगति के लिए ''पर्याप्त तंत्र का अभाव'' है। इस समस्या की पूर्ति हेतु नीति में शिक्षण अनुसंधान और सेवा के आधार पर योग्यता नियुक्तियों और कैरियर की प्रगति के माध्यम से संकाय और संस्थागत नेतृत्व की स्थिति की अखण्डता की पुष्टि करना आवश्यक किया गया। अनुसंधान के क्षेत्र में यह नीति सहकर्मी द्वारा समीक्षा की गई उत्तम अनुसंधान और विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में सक्रिय रूप से अनुसंधान की नींव रखने के लिए राष्ट्रीय अनुसंधान फाउण्डेशन (एनआरएफ) की स्थापना का सुझाव दिया गया है। यह संस्थान विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों में अन्तरविषयक अनुसंधानों समेत अनुसंधान और नवोन्मेष को बढ़ावा देगा। जबकि अधिकांश विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में शोध पर कम बल और विषयक अनुशासनों में पारदर्शी और प्रतिस्पर्धी समीक्षा शोध नीधियों में कमी रही है। वर्तमान नीति में इस समस्या का समाधान होगा।

उच्चतर शोध संस्थानों में गवर्नेंस और नेतृत्व क्षमता का अभाव है। अब ''शैक्षणिक और प्रशासनिक स्वायत्ता वाले उच्चतर योग्य स्वतंत्र बोर्डों'' द्वारा उच्च शिक्षा संस्थान का गवर्नेंस सम्भव होगा। नीति में उच्चतर शिक्षा के लिए ''मानक निर्धारण'' का प्रावधान किया गया है। प्रभावशाली व्यवस्था के सुधार के लिए उच्च शिक्षा में एक भारतीय ''उच्च शिक्षा आयोग के गठन की शिफारिश'' की गई है। यह आयोग उच्चतर शिक्षा में एक मात्र नियामक संस्था होगा। इसके चार स्तम्भ हैं जिनके अन्तर्गत नेशनल हायर एजुकेशन रिसोर्स सेन्टर (एनएचईआरसी), नेशनल एसेसमेंट एण्ड एक्रेडिटेशन कांउसिल (एनएएसी) जो कि उच्चतर शिक्षा के मानक निर्धारण और मान्यता के लिए कार्य करेगी। इसके अतिरिक्त हायर एजुकेशन ग्रांट्स काउंसिल और जनरल एजुकेशन काउंसिल (जीईए) उच्चतर शिक्षा व्यवस्था के सुधार के रूप में स्थापित किया गया है।

उच्चतर शिक्षा संस्थान के अन्तर्गत लचीले और नवीन पाठ्यक्रम में क्रेडिट आधारित पाठ्यक्रम और सामुदायिक जुड़ाव और सेवा, पर्यावरण शिक्षा और मूल्य आधारित शिक्षा के क्षेत्र शामिल होंगे जिससे समग्र एवं बहुविषयक शिक्षा के विचार को धरातल पर लाया जा सके। पर्यावरण शिक्षा में जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, अपशिष्ट प्रबंधन, स्वच्छता, जैविक विविधता का संरक्षण, जैविक संसाधनों का प्रबंधन और जैव विविधता वन और वन्य जीव आरक्षण और सतत् विकास तथा रहने जैसे क्षेत्र शामिल होंगे। मूल्य आधारित शिक्षा के अन्तर्गत मानवीय, नैतिक, संवैधानिक तथा सार्वभौमिक मानवीय मूल्य जैसे सत्य, नेक आचरण, शांति, प्रेम, अहिंसा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नागरिक मूल्य और जीवन–कौशल, सेवा तथा सामूदायिक कार्यक्रमों में सहभागिता समग्र शिक्षा का अभिन्न अंग होगा। जिस प्रकार से विश्व में तीव्र गति आपस में जुड़ती जा रही हे उसी सहयोगी प्रक्रिया के रूप में वैश्विक नागरिक शिक्षा (जीसीईडी) समकालीन वैश्विक चुनौतियों की प्रतिक्रिया विद्यार्थियों में वैश्विक मुद्दों को समझने और शांतिपूर्ण सहिष्णु, समावेशी, सुरक्षित और सतत् समाज के सक्रिय प्रवर्तक बनने के लिए प्रदान की जायेगी।

समग्र एवं बहुविषयक शिक्षा के अन्तर्गत उच्चतर शिक्षा संस्थान अपने ही संस्थानों में अथवा अन्य उच्चतर शिक्षा/शोध संस्थानों में इंटरशिप के अवसर उपलब्ध करायेंगे। जैसे स्थानीय उद्योग, व्यवसाय, कलाकार, शिल्पकार आदि के साथ इन्टर्नशिप और अध्यापकों और शोधार्थियों के साथ, शोध इन्टर्नशिप ताकि छात्र सक्रिय रूप से अपने सीखने के व्यवहारिक पक्ष के साथ जुड़े और साथ ही साथ स्वयं के रोजगार की सम्भावनाओं को भी बढ़ा सकें।

शिक्षा नीति के अन्तर्गत डीग्री कार्यक्रमों की अवधि और संरचना में तदनुसार परिवर्तन प्रस्तावित है। स्नातक की उपाधि तीन या चार वर्ष की अवधि रखी गयी है। इस सन्दर्भ में प्रदान किये जाने वाले प्रमाण–पत्र और निकासी के कई विकल्प होंगे। व्यवसायिक तथसा पेशेवर क्षेत्र सहित किसी भी विषय अथवा क्षेत्र में एक वर्ष पूर्ण करने पर सर्टिफिकेट या दो वर्ष पूर्ण करने पर डिप्लोमा और तीन वर्ष के कार्यक्रम के बाद स्नातक की डिग्री प्रदान की जायेगी। चार वर्षीय स्नातक कार्यक्रम जिसमें बहुविषयक शिक्षा को बढ़ावा दिया जायेगा, क्योंकि इस प्रक्रिया में विद्यार्थी के रुचि के अनुसार चयन किये गये मेजर और माइनर पर ध्यान केन्द्रित करने के अतिरिक्त समग्र एवं बहुविषयक शिक्षा का अनुभव लेने का अवसर प्रदान करता है। एक एकेडमिक क्रेडिट बैंक (एबीसी) के स्थापना की योजना जो कि अलग–अलग मान्यता प्राप्त उच्चतर शिक्षण संस्थानों से प्राप्त क्रेडिट को डिजिटल रूप से संकलित करेगा ताकि प्राप्त क्रेडिट के आधार पर उच्चतर शिक्षण संस्थान द्वारा डीग्री प्रदान की जा सके। यदि छात्र उच्चतर शिक्षा संस्थान द्वारा निर्दिष्ट अध्ययन के अपने प्रमुख क्षेत्रों में कठोर शोध

परियोजना पूर्ण किया है तो उसे चार वर्षीय कार्यक्रम में शोध सहित डिग्री देने का प्रावधान है।

उच्चतर शिक्षण संस्थानों को विभिन्न स्नातकोत्तर कार्यक्रमों को उपलब्ध कराने की स्वतंत्रता प्रदान की जायेगी। ऐसे विद्यार्थियों के लिए जिन्होंने तीन वर्ष का स्नातक कार्यक्रम पूर्ण किया हो उन्हें दो वर्षीय कार्यक्रम प्रदान किये जा सकते हैं जिसमें द्वितीय वर्ष पूर्णतः शोध पर केन्द्रित हो। एक वर्ष के स्नातकोत्तर कार्यक्रम के लिए आवश्यक है कि विद्यार्थी चार वर्ष की स्नातक कार्यक्रम शोध के साथ पूर्ण किया हो। पाँच वर्षों का स्वीकृत स्नातक/स्नातकोत्तर कार्यक्रम की व्यवसाि को अमल में लाया जा सकता है। पी–एच.डी. के लिए या तो स्नातकोत्तर डीग्री अथवा चार वर्षों के शोध के साथ प्राप्त स्नातक डीग्री अनिवार्य होगी।

इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अन्तर्गत शैक्षिक संरचना में परिवर्तन का उद्देश्य है। वस्तुतः यह न्यायोचित है कि एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था का निर्माण हो जिसमें किसी भी व्यक्ति का चहुमुखी विकास सम्भव हो। वर्तमान शैक्षिक नीति की प्रासंगिकता को स्वीकार किया जा सकता है। बहुविषय शिक्षा बहुमुखी विकास का आधार है, वहीं बहुगुण सम्पन्न व्यक्ति देश के विकास का आधार बनेगा। समावेशी शिक्षा एक लोकतांत्रिक शिक्षा व्यवस्था की पूरक है। इस प्रकार पाठ्यक्रम के साथ शिक्षा का परम्परागत ढाँचा समाप्त कर ज्ञान प्राप्ति में तीव्रता लाने का प्रयास किया गया है। नीति के अन्तर्गत स्नातक और स्नातकोत्तर तारतम्यता विद्यार्थी को आगे की शिक्षा में प्रेरणा प्रदान करेगी।

सन्दर्भ सूची :

1. योजना पत्रिका (2022) : राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, वर्ष 66, अंक 2, फरवरी।
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020,, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
3. www.shikshaniti.com.

***

विचित्र भवों द्वारा रसों की पहचान

*अनीता शर्मा**

संगीत और रस का आपस में घनिष्ठ संबंध है। रस के बिना कोई भी संगीत सुनने में आनंद की अनुभूति नहीं कराता। संगीत का मुख्य उद्देश्य आनंद प्राप्ति है। रसात्मक ही संगीत का प्राण है। मन में उठने वाले भावों से ही रस की उत्पत्ति होती है। संगीत द्वारा ही आनंद रसकी निष्पत्ति के कारण होता है संगीत रसनिष्पत्ति करने का सबसे प्रभावशाली माध्यम है। जब गायक या वादक अपनी कल्पना शक्ति द्वारा हृदय में उठते भावों को स्वरों और शब्दों के माध्यम से व्यक्त करता है। इसी को काव्य शास्त्रीय भाषा में रससृष्टि कहा जाता है। तेतरीय उपनिषद में कहा गया है, कला का प्राण रस है और कला का लक्ष्य रसानुभूति। जब कोई संभावित वस्तु थोड़ी सी परिवर्तित होकर मन के अंदर एक साधारण नवीनता उत्पन्न कर देती है तब उसे रस कहते हैं। साहित्य में नव रस माने गए हैं- श्रृंगार ,हास्य ,करूण, रूद्र, वीर ,भयानक, वीभत्स, अदभुत और शांत।

विभिरन्न रसों के अनुरूप स्वर, वाद्ययंत्रों के प्रयोग आदि का निर्देश भी किया गया है- सरी विरेश्ष्दभुते रौद्रे धा,वीभत्से भयानके। कार्यो गनो तु करूणहास्यश्रृगारयोमगौ ।।

संगीत में शब्द, स्वर , लय और साल के सामंजस्य द्वारा विभिन्न रसों की सृष्टि की जाती है। शास्त्रीय संगीत में स्वरों के परस्पर संवाद तथा लय चाल के घेरे में बंधी हुई है। जब अनेक अलंकरणों के साथ स्वर व लय एक दूसरे में समाहित होकर एक रूप हो जाते हैं, शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त भाव केवल स्थायी रूप में ही सामने आते हैं, परंतु स्वर लय के माध्यम से कलाकार उन शब्दों में सुर अर्थ का स्वयं अनुभव करके उसका रसपान रसिकों को कराता है। प्राचीनाचार्यों ने रस सिद्धांत पर गहन चिंतन किया और भिन्न-भिन्न विधाओं के साथ रस के संम्बन्ध का विवेचन किया। किसी भी कला के यह जरूरी है कि उसके मानव हृदय में स्थित भाव जगे, और उन भावों से संबंधित रस की उत्पत्ति हो, तभी मनुष्य आनंद की अनुभूति कर सकता है। इसी को सौंदर्य बोध कहते हैं। भारतीय संस्कृति में भी सौंदर्य का लक्ष्य बिंदु सुंदरता न होकर "रसें" है। अतः संगीत रस निष्पत्ति करने का सबसे प्रभावशाली माध्यम है।तैतरीय उपनिषद में कहा गया है- "रसों हये वायं लव्ध्वाष्ए नहीं भवति"। कला का प्राण रस है और कला का लक्ष्य रसानुभूति। रस की सर्वप्रथम और सर्वाधिक चर्चा संस्कृत ग्रंथों और साहित्य में की गई है। भारत का रस सिद्धांत ही काव्य ,साहित्य ,नाटक,कहानी संगीत आदि अन्य कलाओं पर लागू किया जाता है। संगीत में कलाकार के पास केवल स्वरूप की क्रमबद्ध एवं सामंजस्य समूह रहता है, शुष्क वर्ण रहते हैं, आलाप रहता है, और इन्हीं सीमित साधनों को अपनाकर अनुकूल,काकू और मुद्राओं का आश्रय लेकर वह भाव की अभिव्यक्ति करता है। रसो के प्रमुख आधार भाव ही हैं। इसलिए कहा गया है "स्थायीभाषा: रसमाप्नुवनिन्त" भाग ही रस को प्राप्त होते हैं। जो भाव रस तक नहीं पहुंचते उन भावों को व्यक्ति के हृदय तक पहुंचाने के लिए विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों के सहयोग से रस की निष्पत्ति करते हैं।

* छात्रा, एम. ए. म्युजिक, युनिवर्सिटी ऑफ जम्मू, जम्मू-कश्मीर

भारत ने आठ स्थायी भाव तथा उसके अनुरूप 8 रस बताए हैं। अभिनव गुप्त ने सर्वप्रथम " शांन्तरस" को स्थान देकर 'नवरसकल्पना' की।
स्थायी भाव तथा उनके रस निम्न है:-

स्थायी भाव	रस
रति	श्रृंगार
हास	हास्य
क्रोध	रोद्र
उत्साह	वीर
भय	भयानक
जुगुप्सा	वीभस्य
विस्मय	अदभुत
निवेंश	शांत
शोक	करुण

संगीत रस एवं भाव : -

संगीत तथा रस का संबंध इसयुग की कोई नवीन देन नहीं है। यहां संबंध बहुत प्राचीन समय से चला आ रहा है। जिस प्रकार संगीत का प्राचीन ग्रंथ भरतका नाट्यशास्त्र है, उसी प्रकार संगीत और रस का संबंध विवेचन भी स्वरप्रथम नाट्यशास्त्र मे ही उपलब्ध होता है। भरत के नाट्यशास्त्र के 28 व 29 अध्याय में संगीत संबंधी विषयों के साथ- साथ औरतों का विवेचन भी किया गया है। विभिन्न रसों के अनुरूप स्वर, वाद्ययंत्रों के प्रयोग आदि का निर्देश भी किया गया है। भरत ने स्वर निर्देश निम्न प्रकार किया है:-
स ,रे- वीर,रोद्र तथा अदभुत रसो के
ध - वीभस्य तथा भयानक रसो के
ग, नि- करुण रसो के।
म,प- हास्य और श्रृंगार रसो के पोषक है।

वर्तमान समय में भी संगीत का अटूट संबंध भावों और रसों से माना जाता है। संगीत का प्रयोजन श्रोताओं को आनंद देना है और इस आनंद की चरमावस्था ही रसास्वादन है।पं0 भातखंडे जी ने प्रचलित हिंदुस्तानी संगीत में रसो का समावेश स्वरो के आधार पर किया है। राग के तीन वर्गों में रसों की स्थिति इस प्रकार बताई गयी है:-
1कोमल रे,ध युक्त सधिंप्रकाश राग- इन रागों मे शांत तथा करूण रस की प्रधानता होती है। जैसे: भैरव ,भैरवी ,जोगिया आदि।
2 शुद्ध रे,ध युक्त राग - इन रागों में श्रृंगार रस की अधिकता होती है। जैसे बिलावल,गौड़ सारंग देशकार आदि।
3 कोमल ग,नि युक्त राग- यह राग वीररस प्रधान होते हैं। जैसे:- मालकौंस,आसावरी, बागेश्री आदि।

संगीत में रसनिष्पत्ति के आधार :-

रस संगीत की आत्मा है।संगीत में भी नाद ,श्रुति स्वर, ताल, वाद्य आदि ऐसे साधन तथा तत्व है, जिनके माध्यम से रसों की सृष्टि संभव होती है। संगीत का मूल आधार नाद ही है, अतः उसका महत्व रस निष्पत्ति मे होना स्वाभाविक होता है। नाद में वह शक्ति है जो जड़ प्रकृति को भी प्रभावित करती है। ओमकारनाथ ठाकुर जी ने ठीक ही कहा है, संगीत में शब्द के अर्थ का बोध हुए बिना ही भाव या रस की प्रतीति हो जाती है। यहां तक की शब्द हो या ना हो, नाद के बल से संगीत में रस निष्पत्ति हो जाती है। अतः यह कहना गलत न होगा कि नाद ही संगीत में रस निष्पत्ति का मूलभूत साधन है। शास्त्रकारो ने संगीत में श्रुति संख्या 22 मानी है। इन श्रुतियो को उनके गुना नुसार भिन्न जातियों में बांटा गया था। जाति गायन काल में यह श्रुतीया ही रस निष्पत्ति का साधन मानी जाती थी। उनके नाम दीप्ता, आयता,मध्या, मृदु, तथा करुणा थे। अहोबल जी ने इसका विस्तृत वर्णन किया है। इन जातियों में रसों की निष्पत्ति निम्न प्रकार से मानी गयी है:-

श्रुति की जाति	**रस**
दीप्ता	वीर अदभुत तथा रोद्र रस
आयता	हास्त रस
मध्या	वीभारस भयानक और वियोग रस
मृदु	श्रृंगार रस
करूणा	दैन्य तथा करुण रस

आज हम श्रुतियो का संबंध उपरोक्त प्रकार से रसों से नहीं जोड़ते तथापि श्रुतिया रस से संबंधित हैं, यह तो मानना ही पड़ता है। जैसे: दरबारी के ग का आंदोलन। जब हम कहते हैं दरबारी का ग नीचा है, इसका अर्थ है किसी श्रुति विशेष का प्रयोग उसके आंदोलन में है और यही आंदोलन उसमें गंभीरता प्रदान करता है। भैरव का रे रामकली या कलिंगडा के रे से भिन्न है जो करूण रस पैदा करता है,अतः यह कोमल रे नहीं है वरन उसमें कुछ और ही है, वह है श्रुति प्रयोग।

संगीत का शरीर अथवा व्यक्तित्व ही स्वरों के तान बाने में निहित है। अतः प्राचीन समय से ही स्वरों का रस से संबंध मान्य रहा है। भरत से लेकर भातखंडे तक सभी ने समयानुसार स्वरों से संबंधित भाव तथा उनसे निष्पदित रसों का वर्णन किया है। स्वर के अनेक रूपों द्वारा रस प्रक्रिया संभव होती है। स्वर के वादी,संवादी रूप द्वारा रस की अनुभूति होती हैं स्वर के विविध प्रस्तुतीकरण के तरीके जैसे गमक, मींड,कण, खटका आंदोलन आदि, स्वरों की संख्या अनुकूल जाति, संपूर्ण,षाडव तथा औडव स्वर के सप्तक, तार,मध्य तथा मद्रं आदि सभी वेद रसों को प्रभावित करते हैं। इनमें परिवर्तन द्वारा भाव तथा रस में भी परिवर्तन होता है। स्वरों के अल्पत्व बहुत्व तथा वादी,संवादी से राग बदलते तथा साथ ही रस बदल जाता है। अतः संगीत में रस को नियंत्रित करने वाला प्रमुख घटक स्वर है।

प्रबंध

संगीत में ध्रुपद,धमार, खयाल, तराना, ठुमरी आदि प्रबंध रचनाएं हैं। इन रचनाओं में भी रस का अपना विशेष स्थान है। धमार द्वारा श्रृंगार रस की उत्पत्ति होती है।ध्रुपद द्वारा वीर,करूण और शांत रस की उत्पत्ति होती है। यदि ख्याल तथा छोटे ख्याल द्वारा शब्दानुकूल अथवा रागा नुकूल रेसोत्पत्ति संभव होती है। टप्पा,तराना आदि से श्रृंगार, हास्य तथा रौद्र रस की सृष्टि होती है। ठुमरी,दादरा,चेती आदि से श्रृंगार भावो व रस- निष्पत्ति के लिए श्रेष्ठ कृति है। अतः सिद्ध है कि रचना भी रसोत्पत्ति में एक महत्वपूर्ण घटक है।

राग

भारतीय संगीत चूकि रागप्रधान संगीत है, राग स्वरों से युक्त होने के कारण,उस राग विशेष का वही रस माना जाता है। स्वरों के माध्यम से ही रस की पहचान होती है। राग रसनिष्पत्ति का साधन है। कंठ संगीत भाव और रस का आधार राग ही होते हैं।"यथा रंजकों जन चित्तानाम स रागकवितो बुधैः"। अतः राग में यदि चित्त को आनंदित अथवा रसानुभूति कराने की क्षमता नहीं है, तो वह राग नहीं।

वाद्य

वाद्य अपनी आवाज के आधार पर विभिन्न रसों की निष्पत्ति करते हैं। मोटी आवाज हमेशा गंभीरता पैदा करती है। चाहे वह पुरुष की हो या किसी वाद्य की। किसलिए मियांमल्हार,दरबारी कनाडा, अथवा मारवा आदि रागों की अवतारणा जितनी पुरूष कंठ से होती है, उतनी स्त्री कंठ से नहीं। इसी प्रकार वाद्य में भी भारी आवाज वाले वाद्य वीणा, सारंगी, वायलिन आदि शांत,करुण व गंभीर रस

पैदा करते हैं। दूसरी ओर पतली आवाज वाले वाद्य जैसे सितार ,मुरली,शहनाई आदि श्रृंगार रस पैदा करते हैं। श्रीकृष्ण बांसुरी से रतिभाव ही पैदा करते थे, इसी प्रकार विवाह आदि मांगलिक व श्रृंगारिक वातावरण में शहनाई प्रयोग में लाई जाती रही है। इसी प्रकार अलग-अलग वाद्य के साथ अलग-अलग रस की निष्पत्ति मानी गई है। विलंबित लायक के ठेके- तिलवाड़ा,झूमरा एकताल आदि करुण व शांत रस की प्रधानता के लिए होते हैं। खुले बालों के ठेके चौताल,आड़ाचौताल,सूलताल आदि वीररस और भक्तिरस को पैदा करते हैं। तीनताल, झपताल,कहरवा, दादरा इकताल आदि ताले मध्यलययुक्त होती हैं तथा श्रृंगार रस में सहायक होती हैं। निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि संगीत में शब्द,स्वर,लय और ताल के सामंजस्य द्वारा विभिन्न रसों की सृष्टि की जाती है। हमने इस शोध में देखा कि इन सब का रसों के साथ घनिष्ठ संबंध है। शास्त्रीय संगीत में स्वरों के परस्पर संवाद तथा लय ताल के घेरे में बंधी हुई इनकी क्रमिक बढ़त संगीत को प्रभावशाली,रुचिकर व सुंदर बनाने में उत्तरदायी होती है। सांगितिक संरचना या बंदिश केवल इसका वाह्य शरीर परंतु स्वरो की परिपकता बढ़त इसकी आत्मा होती है। अतः जब अनेक अलंकरणो के साथ स्वर व लय एक दूसरे में समाहित होकर एकरूप हो जाते हैं, शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त भाव केवल स्थायी रूप में ही सामने आते हैं, परंतु स्वर लय के माध्यम से कलाकार उन शब्दों में चिन्हित सुर अर्थ का स्वयं अनुभव करके उसका रसपान रसिकों को कराता है। अतः हमने देखा कि चाहे शब्द हो स्वर,राग, ताल और लय सबके साथ रस का अपना एक कनिष्ठ संबंध है।

संदर्भ :

1) कला के मूल तत्व- चिरंजीलाल
2) काव्य और कला - बाबू गुलाब राय
3) कला एवं साहित्य - लक्ष्मी नारायण गर्ग
4) भारतीय कला परिचय - प्रोफेसर विश्वनाथ प्रसाद
5) संगीत मासिक पत्रिका - कुसुमदास
6) भारतीय संगीत का सौंदर्य विधान - मधुर लता भटनागर
7) कला अंक - पंडित भोलानाथ तिवारी
8) निबंध संगीत- लक्ष्मीनारायण गर्ग

***

प्रौढ़ शिक्षा और जीवन जीने का नया आयाम

*डॉली कुमारी**

प्रस्तावना :

प्रत्येक लोगों की कुछ बुनियादी आवश्यकताएँ हैं,जैसे – रोटी, कपड़ा, मकान और शिक्षा। शिक्षा एक ऐसा रास्ता है जो प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को सुलभ बनाता है। इसे प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति का हक होता है। शिक्षा को ग्रहण करने की कोई उम्र नहीं होती है। हम जीवन भर कुछ न कुछ सीखते हैं। शिक्षा व्यक्ति के वैयक्तिक, नागरिक, आर्थिक और जीवनपर्यन्त जीवन में आगे बढ़ने के उन अनेक रास्तों को खोल देती है, जिससे उस व्यक्ति के जीवन में नया मोड़ आता है। प्रौढ़ शिक्षा एक ऐसी कोशिश है जो उस व्यक्ति के जीवन को एक नई रोशनी देती है, जिससे वह अपने समाज और अपने देश के विकास में मदद करते हैं। वैश्विक स्तर पर विभिन्न आकड़ यह दर्शाते हैं कि किसी देश की साक्षरता दर और उसकी प्रति व्यक्ति GDP में उच्चतर सहसंबध होता है।

अगर एक समुदाय अनपढ़ है तो उसके कई नुकसान है। जिसमें बुनियादि वित्तीय लेनदेन न कर पाना। प्रभावित मूल्य पर खरीदे गए माल की गुणवत्ता नौकरियों, ऋण, सेवाओं, आदि का आवेदन को लिए फार्म न भर पाना सामाचार पत्र मिडिया इत्यादि आदि के सेपेशों को न समझ पाना। अपने ही बच्चों को शिक्षा न दे पाना अगर कोई औरत अनपढ़ है, तो जरूरत पड़ने पर वह बच्चे को दवाइयाँ का ज्ञान ना होने के कारण, उन्हें उचित दवाइयाँ न दे पान। इसलिए प्रौढ़ शिक्षा की वजह से आज प्रत्येक और शहरों या गाँ की जो अपने सही उम्र में नहीं पढ़ पाई, आज इस प्रौढ़ शिक्षा का फायदा उठा रही है, और अपने जीवन को नया मोड़ दे रही है।

प्रौढ़ शिक्षा एक ऐसा रास्ता है जो उन लोगों को पढ़ने का मौका देता है जो कुछ कारण वश नहीं पढ़ पाए। आजादी के बाद हमारी आबादी की आधी संख्या महिला जिस पर उनकी शिक्षा को लेकर ध्यान नहीं दिया गया, बहुत मात्रा में वह अनपढ़ रह गई है। यह प्रौढ़ शिक्षा उनके लिए वरदान है, जो उनके जीवन को पुरुषों के जीवन के समान सहज और सुलभ बना रही है। आज हमारे समाज में बहुत सी बहु–बेटियों ने यह जिम्मा उठाया कि अपने माँ–दादी को पढ़ाइएगी और इसी तरह प्रौढ़ शिक्षा का आरम्भ हुआ। प्रौढ़ शिक्षा प्रौढ़ों को पढ़ाने और शिक्षित करने का अभ्यास हे "विस्तार" अध्ययन कोई या "हक्च शिक्षा का विद्यालय" के माध्यम से प्रौढ़ शिक्षा कार्यस्थल में होती है। अन्य शिक्षण स्थानों में सामुदायिक विद्यालय रोक उच्च विद्याल, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय, पुस्तकालय और

* शोध छात्रा, दर्शनशास्त्र विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

अजीवन सीखने के केन्द्र शामिल है। प्रौढ़ शिक्षा से पूरे समाज और देश की साक्षरता दर में वृद्धि होगी। अपनी बुनियादी साक्षरता में सुधार करने की से प्रौढ़ो को अपनी व्यक्तिगत जीवन में भी पुरी क्षमता तक पहुँचने का मौका मिलेगा जिसकी वजह से वह अपने जीवन के छोटे से दायरे से बाहर निकल पाएगें, और जीवन को नई दृष्टि से देख सकेंगे। उसके वजह से उनके ऊपर आत्मविश्वास अपत्र होगा।

प्रौढ़ शिक्षा का इतिहास :–

1926 में अमेरिकन लाइब्रेरी एसोसिएशन के अध्ययन पुस्तकालयों और वयस्क शिक्षा का प्रकाशन किया गया था। एसोसियन ने रिपोर्ट के साथ पुस्तकालय और वयस्क शिक्षा पर बोर्ड की स्थापना की प्रौढ़ के लिए यह रही शिक्षा की एक एजेंसी के रूप में पुस्तकालय की अवधारणा अमेरिकी समाज में दृढ़ता से स्थापित हो गई। पुस्तकालयों और वयस्क शिक्षा की अपनी ऐतिहासिक समीक्षा में मागरेट ई० मोनरों ने इसकी शताब्दी के पहले छमाही के दौरान, पुस्तकालयों द्वारा वयस्कों को प्रदान की जाने वाली विभिन्न प्रकार की पुस्तकालय सेवाओं की पहचान की। जिसमें प्रौढ़ शिक्षा के पहलुओं को शामिल किया गया था। कई पुस्तकालयों में एक साक्षरता केंन्द्र है, तो उनके समुदाय के भीतर या भवन में, अन्य लोगों को वयस्कों के लिए घर में पढ़ाने वाले (टयूटर) के लिए कम से कम जगह की पेशकश करते है, गांधी जी के जन्मदिन के 2 अक्टूबर 1978 को राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का शुभारम्भ किया गया। प्रौढ़ो को समाजिक चेतना अपत्र करने की प्रेरणा दी गयी 15–35 आयुवर्ग के निरक्षर प्रौढ़ो के लिए निरौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था करने को प्राथमिक दी गई।

प्रौढ़ शिक्षा नवभारत साक्षरता का उद्देश्य– इसका उद्देश्य वर्ष 2022–27 के दौराण 5 करोड़ शिक्षार्थी को बुनियादी साक्षरता और अंक ज्ञान प्रदान करना है। इसे प्रति वर्ष एक करोड़ शिक्षार्थियों के हिसाब से रखा गया है जिसमें आन– शिक्षण, पठन–पाठन और मूल्यांकन प्रणाली का उपयोग किया जायेगा। इस योजना का उद्देश्य न केवल आधारभूत साक्षरता की संख्यात्मकता प्रदान करना है, बल्कि टार्क सही के नागरिक के लिए आवश्यक अन्य घटकों को भी शामिल करना है, जैसे महत्वपूर्ण जीवन कैशल, स्वास्थ्य देख–भाल भारत में प्रौढ़ शिक्षा– जे० सी० अग्रवाल
प्रकाश–विद्या बिहार,
संस्करण–2006
और जागरूकता सहित, शिशु देखभाल तथा शिक्षा एवं परिवार कल्याण व्यावसायिक कौशल विकास (स्थानीय रोजगार प्राप्त करने की दृष्टि से) बुनियादी शिक्षा (प्रारम्भिक, मध्य और माध्यमिक स्तर की समक्षता सहित) और सत शिक्षा (कला, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, संस्कृति, खेल और मनोरंजन में समग्र प्रौढ़ शिक्षा पाठयक्रम के साथ–साथ स्थानीय शिक्षार्थियों के लिए रूचि

पर उपयोग के अन्य विषयों जैसे–महत्वपूर्ण जीवन कौशल पर अधिक अन्य सामग्री सहित)

निष्कर्ष :– निष्कर्षतः हम कह सकते सभी का हक है। इस जो लोग अपने बचपन में नहीं सिख पाते है, उन्हें एक और मौका मिलना ही चाहिए, जो हमें प्रौढ़ शिद्वाा द्वारा मिलता है। जिससे हम अपने जीवन के अन्धकार को दूर करके रोशनी को फैला सकते है। हमें वह ज्ञान मिलता है जो किसी कारण वश हम उससे वंचित रह जाते है। सरकार ये कोशिश अब एक नया रूप ले चुकी है, अधिकतर गाँव की महिलाएँ अब शिक्षित हो रही है, और अपने अधिकार को समझ कर अपने हक के लिए लड़ने को तैयार है। वह आत्मनिर्भर, स्वालम्बी। अपने देश के विकास में कदम–कदम मिलाकर चलने को तैयार है। आज देश का लगभग 40 प्रतिशत प्रौढ़ वर्ग निरक्षर है। इसलिए वह मानसिक दृष्टि से कमजोर है सामाजिक रूप से पिछड़ा है, धार्मिक रूप से अंध–विश्वासी है और राजनीतिक रूप से 'वोट' के महत्व से अनिलिए है, परिणामतः वह उत्हास और निरदार का पात्र और शोषण का शिकार है। अत्यन्त भोला होने से वह धूततो के माया–जाल से जल्दी फँस जाता है। प्रौढ़ शिक्षा के द्वारा पुरखों एवं महिलाओं में चेतना एवं जातीय अपत्र करना है जिससे वे शिक्षा के महत्व को समझ सके। और उनका शोषण बन्द हो जाए। इस प्रकार शिक्षा हमारे जीवन की आवश्यकता है। और इसके लिए उम्र कोई बाधा नहीं बनना चाहिए। प्रौढ़ शिक्षा के द्वारा जो लोगों दिन में नहीं पढ़ पाते है उन्हें रात्रि में शिक्षा दिया जाता है। इस सरकार की मुटिम से हम कह सकते है पढ़ेगा इंडिया तभी तो बढ़ेगा इंडिया। भारत एक विशाल जनसंख्या को प्रदर्शित करता है इसलिए जो लोग शिक्षित है उन्हें प्रौढ़ शिक्षा में योगदान देना चाहिए। जो ज्ञान से अनमिज्ञ है उन्हें शिक्षा का ज्ञान देना साधारण काम नहीं है।

Bibliography :

1. स्वतंत्र भारत में प्रौढ़ शिक्षा –हरिलाल बाछेतिया Edition First 2016 Publisher-K Prakashan.
2. प्रौढ़ शिक्षा–डॉ० सुरेन्द्र पाल Publisher-Arjun Publishing House, Edition-2017.
3. शिक्षा में नवीन प्रवृत्तियाँ–राणा बलवन्त
4. प्रौढ़ शिक्षा एवं सतत् शिक्षा–डॉ० संजीव पुरोहित Edition-2014, Publisher-Himanshu Publiation.
5. प्रौढ़ शिक्षा–डॉ० रामशकल पाण्डेय डॉ० करूणा शंकर मिश्र Publisher- Sri Vinod Pustak Mandir Edition-Latest.

***

नई शिक्षा नीति 2020 के तहत् 21वीं सदी में विद्यालयी शिक्षा

*डॉ. शुभलेश कुमारी**

केन्द्रीय शिक्षा मंत्री ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्माण से लेकर कार्यान्वयन के दौरान तक निरन्तर संवाद एवं चर्चा के माध्यम से राष्ट्र और मंत्रालय का मार्गदर्शन करने के लिए प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी का आभार व्यक्त किया। क्योंकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) 21वीं सदी की पहली ऐसी शिक्षा नीति है जिसका उद्देश्य हमारे देश के विकास की बढ़ती जरूरतों को पूरा करना है। यह नीति संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित सतत विकास एजेंडा 2030 के अनुरूप है राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का निर्माण पहुँच, समता, गुणवत्ता, सामर्थ्य और जवाबदेही के बुनियादी स्तम्भों पर किया गया है।"

नई शिक्षा 2020 में दो बातों पर विशेष ध्यान दिया गया है स्कूली शिक्षा की नींव और दृष्टिकोण। हम भारतीय बुनियाद (स्कूली शिक्षा की नींव) पर खड़े होंगे, जब कि हमारा दृष्टिकोण अंतरराष्ट्रीय होगा। नई शिक्षा नीति में इन दोनों के बीच संतुलन का विशेष ध्यान रखा गया है।

"नई शिक्षा नीति 2020 इक्कीसवीं सदी के भारत के नवनिर्माण की ओर बढ़ते कदम है" "21वीं सदी में स्कूली शिक्षा विषय पर आयोजित (10 सितम्बर 2020) संगोष्ठी को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने कहा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 21वीं सदी के भारत को एक नई दिशा देने जा रहीं है और हम एक ऐसे क्षण का हिस्सा बन रहे है जो हमारे देश के भविष्य के निर्माण की नींव रख रहा है। उन्होंने कहा कि पिछले तीन दशकों में हमारे जीवन का शायद ही कोई पहलू पहले जैसा रहा हो, फिर भी हमारी शिक्षा प्रणाली अभी भी पुरानी व्यवस्था के तहत् चल रही है। उन्होंने कहा कि नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 नई आकांक्षाओं, एक नये भारत के नये अवसरों को पूरा करने का एक साधन है।"

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पिछले 3 से 4 वर्षों में हर इलाके हर क्षेत्र एवं हर भाषा के लोगों की कड़ी मेहनत का परिणाम है इस नीति के क्रियान्वयन के साथ वास्तविक कार्य अब शुरू होगा। उन्होंने शिक्षकों से राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रभावी कार्यान्वयन हेतु मिलकर कार्य करने का आग्रह किया। क्योंकि जब भी किसी नीति की घोषणा की जाती है उसके बाद उस नीति की सफलता–असफलता पर अनेक प्रश्न उठाए जाना जायज है। क्योंकि इसी के आधार पर नीति में सुधार सम्भव है।

---

* एसोसिएट प्रोफेसर (बी.एड. विभाग), श्रीमती बी.डी. जैन गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, आगरा छावनी, आगरा।

ऐसा माना जाता है ऊर्जावान युवा किसी भी देश के विकास के साधन होते है और यदि युवा वर्ग की ऊर्जा का सही समय पर सही सदुपयोग किया जाये जो देश तरक्की की राह पर चल पड़ता है। इसके लिए आवश्यक है उनका विकास उनके बचपन से ही शुरू हो जाना चाहिए। क्योंकि बच्चों की शिक्षा और उन्हें मिलने वाला सही माहौल काफी हद तक यह निर्धारित करता है कि वह व्यक्ति भविष्य में क्या बनेगा और उसका व्यक्तित्व कैसा होगा ? नई शिक्षा नीति 2020 के माध्यम से भारत 21वीं सदी की ओर नव निर्माण हेतु प्रथम कदम बढ़ा कर अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराएगा।

जैसा कि हम सभी जानते हैं प्री स्कूल वह अवस्था है, जहाँ बच्चे अपनी इन्द्रियों, अपने कौशल को बेहतर ढंग से समझने लगते हैं। इसके लिए स्कूलों एवं शिक्षकों को बच्चों को मजेदार तरीकों से सीखने, खेल–खेल में सीखने, गतिविधि आधारित सीखने तथा खोज आधारित सीखने का माहौल प्रदान करने की आवश्यकता है जैसे–जैसे बच्चे की उम्र बढ़ती है उसमें अधिक से अधिक सीखने की भावना, वैज्ञानिक एवं तार्किक सोच, गणितीय सोच तथा वैज्ञानिक चेतना विकसित करना बहुत आवश्यक है नई शिक्षा प्रणाली को 5+3+3+4 की शिक्षा प्रणाली में बदल दिया गया है। अब प्री स्कूल की खेल के साथ शिक्षा जो शहरों में निजी स्कूल तक सीमित थी इस नीति के लागू होने के बाद गांव–गांव में पहुँच जाएगी।

नई शिक्षा नीति में बुनियादी शिक्षा पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया गया है। शिक्षा नीति 2020 के तहत् बुनियादी साक्षरता एवं संख्यात्मक साक्षरता के विकास को एक राष्ट्रीय मिशन के तौर पर लिया जाएगा। इस मिशन के अनुसार "एक बच्चे को आगे बढ़ना चाहिए और सीखने के लिए पढ़ना चाहिए।"

इसके लिए यह आवश्यक है कि वह शुरूआत में पढ़ना सीखें। पढ़ना सीखने से लेकर सीखने के लिए पढ़ने की यह विकास यात्रा बुनियादी साक्षरता एवं संख्यात्मक साक्षरता के माध्यम से पूरी होगी।

नई शिक्षा नीति 2020 में देश के बच्चों के धारा प्रवाह मौखिक पठन के लिए भी एक लक्ष्य निर्धारित किया गया है। जिसके अनुसार तीसरी कक्षा का बालक 1 मिनट में सहजता से 30–35 शब्द पढ़ सके। इससे उन्हें अन्य विषयों की सामग्री को भी आसानी से समझने में मदद मिलेगी। और यह तभी सम्भव होगा जब पढ़ाई को वास्तविक दुनिया से अपने जीवन एवं आसपास के वातावरण से जोड़ा जाए। जब शिक्षा आस–पास के वातावरण से जुड़ी होती है तो उसका प्रभाव छात्र के पूरे जीवन पर पड़ता है साथ ही विद्यार्थी अपने देश एवं संस्कृति के बारे में जानकर उससे भावनात्मक रूप से जुड़ता है।

नई शिक्षा नीति 2020 में ऐसे आसान एवं मौलिक तरीकों को बढ़ाने की जरूरत पर बल दिया गया है। क्योंकि इन प्रयोगों से छात्रों के अन्दर संलग्नता, अन्वेषण, अनुभव, अभिव्यक्ति तथा श्रेष्ठता में वृद्धि होती है।

यह हम सभी जानते हैं, कि छात्र अपनी रूचि के अनुसार सीखते हैं और विद्यालयी गतिविधियों कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं से जुड़ते हैं तभी बच्चे रचनात्मक तरीके से अभिव्यक्त करना सीखते हैं। और इसके लिए आवश्यक है बच्चों को स्टड़ी टूर पर, ऐतिहासिक स्थानों, रूचि वाले स्थानों, खेतों विभिन्न उद्योगों आदि में ले जाना चाहिए, क्योंकि यह उन्हें व्यावहारिक ज्ञान देगा। सभी विद्यालयों में ऐसा न होने के कारण छात्रों को पूर्ण रूप से व्यावहारिक ज्ञान नहीं मिल पा रहा है। व्यावहारिक ज्ञान से छात्रों का सामना कराने से उनकी जिज्ञासा बढ़ेगी और उनके ज्ञान में वृद्धि भी होगी। साथ ही जब वह कुशल कारीगरों को कार्य करते हुए देखेंगें तो वह उनसे भावनात्मक रूप से जुड़ेंगे भी और समझेंगे भी, और यदि छात्र भविष्य में उन पेशों से जुड़ते है तो नये–नये प्रयोगों के बारे में सोचेंगे भी और कुछ नया करने का प्रयास भी करेंगे।

प्रधानमंत्री ने उक्त संगोष्ठी में यह भी कहा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति इस तरह से तैयार की गई है कि उसमें पाठ्यक्रम को घटाया भी जा सकता है और बढ़ाया भी जा सकता है और बुनियादी चीजों पर ध्यान केन्द्रित भी किया जा सकता है। नई शिक्षा नीति 2020 में सीखने के लिए एकीकृत एवं अंत विषयी मजेदार और सम्पूर्ण अनुभव वाला पाठ्यक्रम बनाने के लिए एक नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क विकसित करने के लिए सुझाव आमंत्रित करने और भविष्य में उन सुझावों को अमल में लाने के लिए भी कहा गया है। क्योंकि नई शिक्षा नीति 2020 के माध्यम से भविष्य की दुनिया आज की दुनियाँ से काफी अलग होगी।

नई शिक्षा नीति 2020 के माध्यम से 21वीं सदी के कौशल के साथ हमारे छात्रों को आगे बढ़ने में मदद मिलेगी। तार्किक सोच, रचनात्मक, सहकार्यता, जिज्ञासा एवं संचार आदि कौशलों को 21वीं सदी में सूची बद्ध किया गया है। हमारी पहले वाली शिक्षा नीति प्रतिबंधात्मक थी लेकिन वास्तविक दुनियाँ में सभी विषय एक दूसरे से जुड़े है। परन्तु वर्तमान शिक्षा प्रणाली ने क्षेत्र बदलने एवं नई संभावनाओं से जुड़ने के अवसर प्रदान नहीं किए। यह भी कई बच्चों के स्कूल छोड़ने का एक प्रमुख कारण रहा है। इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में छात्रों को किसी भी विषय को चुनने की स्वतन्त्रता दी गई है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में एक अन्य बड़े मुद्दे को भी शामिल किया है हमारे देश में सीखने से संचालित शिक्षा के स्थान पर मार्कशीट संचालित शिक्षा का हावी होना। नई शिक्षा नीति के आने से मार्कशीट अब मानसिक दवाब का कारण नहीं बनेगी। क्योंकि नई शिक्षा नीति 2020 का मुख्य उद्देश्य इस मानसिक तनाव को दूर करना भी है। क्योंकि इस नीति

के अनुसार छात्रों का मूल्यांकन केवल एक परीक्षा से नहीं किया जा सकता। बल्कि उसे आत्म मूल्यांकन, सहकर्मी मूल्यांकन जैसे छात्रों के विकास के विभिन्न पहलुओं पर आधारित होना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में एक मार्कशीट के बजाय एक समग्र रिपोर्ट कार्ड का प्रस्ताव है जो छात्रों की अनूठी क्षमता, योग्यता, दृष्टिकोण, प्रतिभा, कौशल, दक्षता एवं संभावनाओं की एक विस्तृत सीट होगी। मूल्यांकन प्रणाली के समग्र सुधार के लिए एक नये राष्ट्रीय मूल्यांकन केन्द्र परख की भी स्थापना की गई है।

प्रधानमंत्री मोदी जी का मानना है कि भाषा शिक्षा का माध्यम है भाषा ही सम्पूर्ण शिक्षा नहीं है। कुछ लोग इस अंतर को भूल जाते है इसलिए जिस भाषा में बच्चा आसानी से सीखे, वही भाषा सीखने की भाषा होनी चाहिए। इसलिए नई शिक्षा नीति 2020 में भी प्रारम्भिक शिक्षा मातृभाषा में होनी चाहिए, इसकी सिफारिश की गई है। लेकिन अंग्रेजी भाषा के साथ–साथ शिक्षा का माध्यम स्थानीय भाषा, मातृभाषा रखने के लिए भी कहा गया है।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में मातृभाषा के अलावा अन्य भाषा सीखने और सिखाने पर प्रतिबन्ध है। लेकिन नई शिक्षा नीति 2020 में भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देने की बात कही है।

निष्कर्ष :

प्रधानमंत्री जी ने "मन की बात" कार्यक्रम में अपने एक उद्‌बोधन में गुणवत्ता के महत्व पर इन शब्दों में विशेष जोर दिया था। "अब तक सरकार का ध्यान देश भर में शिक्षा के प्रसार पर था", किन्तु अब वक्त आ गया है कि ध्यान शिक्षा की गुणवत्ता पर दिया जाए। विद्यालयों में शिक्षा की गुणवत्ता के स्तर को सुधारने के लिए केन्द्र एवं राज्य दोंनो सरकारें नवीन व्यापक दृष्टिकोणों एवं रणनीतियों को बना रहें है। कुछ विशेष कार्य क्षेत्रों की बात करें तो अध्यापकों, कक्षा–कक्ष में अपनाई जाने वाली कार्य विधियों, छात्रों में ज्ञान के मूल्यांकन एवं निर्धारण, विद्यालयी संरचना, विद्यालयी प्रभावशीलता एवं सामाजिक सहभागिता से सम्बन्धित मुद्‌दों पर कार्य किया जाना है। नई शिक्षा नीति 2020 के तहत् 21वीं सदी में स्कूलों को पूरी तरह परिवर्तित करने की सरकार की योजना अब धीरे–धीरे फाइलों में से निकल कर ठोस धरातलीय पटल पर नये अंदाज व नये आगाज के रूप में पंख फैला रही है। ऐसे में सरकार एवं प्रशासनिक अधिकारियों से यह अपेक्षा रखना जायज है कि वह निज स्वार्थ त्याग कर विद्यालयों के आन्तरिक व बाह्य दोनों स्वरूपों में सुधार हेतु प्रयास करें। और 21वीं सदी में स्कूलों के स्तर को ऊँचा उठाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करें।

सन्दर्भ :

1. Mandal, Dr. Keshab Chandra, "Education Policy 2020 : The Key to Development in India
2. Singh, Dr. Mamta & Dr. Chetana Pokhriyal "भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020"
3. Mahajan, Kalpana K., Saxena, Manoj, National Education Policy 2020
4. दैनिक जागरण, 30, 31 जुलाई 2020
5. अमर उजाला, 31 जुलाई 2020
6. हिन्दुस्तान, 31 जुलाई 2020

***

स्वास्थ्य जनजागरण अभियान में हिन्दी भाषा की भूमिका*

उदय प्रताप सिंह **

स्वास्थ्य संवर्धन के लिए मुख्यतः तीन बातें की जाती हैं। यथा– स्वास्थ्य उन्नयन कार्यक्रम, रोग निवारक मूलक तथ्य एवं निदान परक चिकित्सा। हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि हम बीमार ही न पड़ें, इसके लिए हमें अपने आहार विहार, दैनिक क्रिया–कलाप पर ध्यान रखना चाहिए है। यदि हम बीमार पड़ ही गए तो समय पर समुचित चिकित्सा करके संक्रमण इत्यादि से बचाव करने एवं तदनन्तर पोषक तत्वों से परिपूर्ण आहार ग्रहण करके स्वास्थ्य को पूर्व अवस्था में पहुंचाया जा सकता है। जब जानकारी हो जाये कि अमुक स्थान पर संक्रमण की सम्भावना है और जाना आवश्यक है तो समुचित उपाय करके संक्रमण से बचा जा सकता है।

इस प्रकार हम केवल 20 प्रतिशत रोगों के लिए ही समुचित चिकित्सा प्रणाली को अपनाने की जरूरत महसूस करेंगे। उदाहरण के तौर पर हम सर सुन्दरलाल चिकित्सालय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को लेते हैं जहां प्रदेश के पूर्वांचल भाग के जिलों के अतिरिक्त मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, बिहार, पं. बंगाल एवं नेपाल से रोगी निदान हेतु आते हैं, जिनकी संख्या लाखों में होती है और अधिकांश लोग ग्रामीण परिवेश से आते हैं।

चूंकि यहां आने वाले अधिकतर मरीज हिन्दी भाषी होते हैं अतः यह आवश्यक है कि उन्हें सूचना पट्ट, पथ–दिग्दर्शिका, पत्रक के अतिरिक्त वेबसाइट (Website) के माध्यम से सुविधाओं एवं तरीकों की जानकारी उपलब्ध करायी जाय ताकि वे जितने समय अस्पताल परिसर में रहे वे अपने को सुकुन में महसूस करें। त्वचा रोग, सांस की बीमारी, पेचिस, उल्टीदस्त, वातरोग, मधुमेह, सिरदर्द स्वच्छता, स्त्री रोग एवं बाल रोग पर आम बोलचाल की भाषा में साहित्य उपलब्ध कराकर जनसेवा का कार्य कर सकते हैं।

यदि मरीजों को रोग निवारक मूलक तथ्यों की जानकारी विभिन्न माध्यमों से दी जाय तो वे न सिर्फ अपने को स्वस्थ रख सकते हैं बल्कि अपने आस–पास के लोगों को भी जागरूक कर सकते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि पांच लोगों को शिक्षित किया जाय और क्रमशः ये अन्य पांच लोगों

---

* उक्त प्रपत्र डी.एम.आर.सी. जोधपुर द्वारा आयोजित राजभाषा वैज्ञानिक संगोष्ठी 20–21 अक्टूबर 2019 में प्रस्तुत किया गया।

** वरिष्ठ सहायक एवं सदस्य सचिव, राजभाषा प्रकोष्ठ, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

को जागरूक करते जायें तो मात्र एक हफ्ते के अन्दर हम स्वास्थ्य जनजागरण को आम बोलचाल की भाषा में कम से कम हजार लोगों को पहुंचा सकते हैं। इसके अतिरिक्त अस्पताल प्रशासन द्वारा समय–समय पर विद्वत्जन के द्वारा आम जनता को शिक्षित करके बिमारियों से बचने के लिए एक पूरी श्रृंखला तैयार कर सकते हैं जो समय के साथ बहुत बड़े जनसमूह को बचाव के माध्यम से बिमारियों से दूर रखने में मदद कर सकते हैं। आयुर्वेदिक औषधियों की उपलब्धता के लिए वैज्ञानिक विधि से कृषि कार्य करके स्थानीय स्तर पर न सिर्फ दवायें बनायी जा सकती हैं बल्कि इस पूरे कार्य में सम्मिलित होने वाले कार्मिकों एवं सहयोगीगण को आर्थिक मदद भी पहुंचाई जा सकती है।

हालांकि उक्त विषयों पर समय–समय पर कार्यक्रम भी आयोजित होते हैं और ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं किन्तु यदि हिन्दी भाषा में प्रचार सामग्री उपलब्ध करायी जाय तो जनमानस को बेहतर सुविधा प्राप्त हो सकेगी। इस माध्यम से हम हिन्दी को जनजागरण की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने में सफल हो सकेंगे और बिमारियों से उबर कर जनमानस अन्य कल्याणकारी कार्यक्रमों में अपनी बहुमूल्य सहभागिता दे सकेंगे।

काशी के चिकित्साशास्त्र का इतिहास 2500 वर्ष पुराना है। इसी धरा पर विश्वविख्यात शल्य चिकित्सक आचार्य सुश्रुत का जन्म 5वीं ईशा पूर्व हुआ और वे आजीवन अपनी चिकित्सा पद्धति से लोगों की सेवा करते रहे। उन्होंने अपने स्वअनुभव से चिकित्सा विज्ञान की विश्वविख्यात कालातीत पुस्तक सुश्रुत संहिता की रचना की। सुश्रुत को काशीराज दिवोदास धन्वन्तरी का शिष्य माना जाता है। वाराणसी में विभिन्न देशों–प्रदेशों से लोग चिकित्सा विद्या ग्रहण करने आते थे। मध्यकाल में मुस्लिम शासक अपने साथ अपनी चिकित्सा पद्धति 'यूनानी' लायें। 18वीं शताब्दी में ब्रिटिश अपने साथ अपनी पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति लायें। यहां की विद्या, संस्कृति, भाषा को बढ़ावा न देना उनकी रणनीति का हिस्सा था। फलतः इस दिशा में अपनी भाषा, अपनी चिकित्सा पद्धति को बहुत धक्का पहुंचा।

पूज्य महामना मालवीय जी मानते थे कि देश की अपनी चिकित्सा पद्धति, अपनी भाषा होनी ही चाहिये। मालवीय जी ने भारत सरकार को लिखा था कि भारतीय चिकित्सा पद्धति को राजभाषा में अद्यतन करना होगा, जो पूर्ण रूप से वैज्ञानिक हो और वह जिससे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में सामान्य चिकित्सा पद्धति के रूप में अपनायी जा सके। अगर हम अपना जीवन मरीजों के सेवार्थ, चिकित्सीय शिक्षा के प्रसार में तथा मूल अनुसंधान एवं शोध कार्यों के माध्यम से ज्ञान के विभिन्न आयामों को विस्तारित करने के प्रति समर्पित कर दें तो यही इन महान विभूतियों के प्रति श्रद्धांजलि होगी।

राजभाषा का पूर्ण रूप से क्रियान्वयन एवं मरीजों, शोध एवं चिकित्सा के प्रति पूर्ण समर्पण से ही मालवीय जी द्वारा स्थापित मूल्य से

ईमानदारी से रक्षा होगी। स्वास्थ्य जागरूकता कार्यक्रम में हिन्दी भाषा की बहुत बड़ी महत्ता है। अपने स्थापना काल से ही चिकित्सा विज्ञान संस्थान, वाराणसी एवं पूर्वांचल के अन्य जनपदों में स्वास्थ्य जनजागरूकता का कार्यक्रम चलाता आ रहा है।

जनजागरूकता अभियान में प्रिन्ट मीडिया का बहुत बड़ी भूमिका है। हम छोटी छोटी लघु पुस्तिकाओं, लिफलेट, पम्पलेट, पोस्टर, बैनर आदि के माध्यम से उनके रोगों के बारे में व उनके बचाव के लिए जन–सामान्य में जागरूकता पैदा कर सकते हैं, और करते भी हैं। चिकित्सा विज्ञान संस्थान का प्रत्येक विभाग ग्रामीण अंचलों में स्वास्थ्य जागरूकता शिविर लगाने, गोष्ठी व रैली के लिए आउटरीच प्रोग्राम के अन्तर्गत कार्यक्रम चलाता है जैसे– शिशुदर मृत्युदर को कम करना, उन्हें पूर्ण रूप से स्वस्थ रहने एवं टीकाकरण रोग से बचाव के लिए बहुत ही पुस्तिकायें बनायी गयी हैं, जो ग्रामीण लोगों के बीच वितरित की जाती हैं। गर्भवती महिलाओं की मृत्युदर कम करने के लिए, एनीमिया से बचाव के लिए उन्हें जागरूक करने के लिए भी हम स्वास्थ्य पुस्तिका का ही सहारा लेते हैं। 40 प्रतिशत पेट के रोगियों के बचाव के लिए पेयजल की उपलब्धता एवं शुद्धता के बारे में बताते हैं। चिकित्सा विज्ञान संस्थान के युवा एवं वरिष्ठ चिकित्सक द्वारा चिकित्सा के तीनों पहलुओं पर जागरूकता के लिए जागरूकता सामग्री तैयार किया गया है एवं आज भी तैयार करने में लगे हुए हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा अल्माआटा (रूस) बैठक में लिये गये निर्णय के अनुसार पूर्ण रूप से स्वास्थ्य मानकों में मानसिक एवं शारीरिक के साथ साथ आध्यात्मिक स्वास्थ्य को भी समाहित किया गया है। तद्नुसार स्वास्थ्य प्रशिक्षण सामग्री तैयार कर वितरित की जा रही है।

राजभाषा हिन्दी भाषा को पूर्णतया अंगीकार करना तत्कालीन प्रशासकों नीति नियामकों के लिए बड़ा ही चुनौती पूर्ण एवं दुरूह कार्य था। लेकिन उदारमना महामना मालवीय जी ने अपने दृढ़ निश्चय, लगन, निष्ठा एवं प्रतिबद्धता के साथ इसका सामना किया और राजभाषा हितों को बढ़ावा देने के लिए इन्होंने देश के कोने–कोने से विद्वानों को आमन्त्रित किया और विश्वविद्यालय में नियुक्त किया जिसमं प्रो. पी.जे. देशपाण्डे, प्रो. रटाटे, प्रो. रमानाथ द्विवेदी जो कि हिन्दी के महान विद्वान आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के छोटे भाई थे, हिन्दी सेवा को चोटी तक पहुंचाया। गुदा रोग पर प्रो. देशपाण्डे ने अपने लेखनी के द्वारा समाज के सामने एवं विदेशों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण उपलब्ध कराया। अन्यान्य विद्वानां ने अपने लेखनी के द्वारा राजभाषा को समृद्ध किया।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान संकाय के प्रो. एच.एस. शुक्ल, प्रो. मनोज पाण्डेय, प्रो. मल्लिका तिवारी, डॉ. तरूण कुमार, डॉ. नेविल आदि कैन्सर शल्य चिकित्सकों ने ग्रामीण अंचलों में जागरूकता के लिए विभिन्न प्रकार के कैन्सर रोग पर जागरूकता लिफलेट, पम्पलेट, पोस्टर तैयार किया

है और इसका प्रचार प्रसार कर उन्हें जागरूक कर रहे है। इन लोगों द्वारा तैयार की गयी हिन्दी शिक्षण सामग्री चित्रात्मक होने के कारण बोधगम्य है और आसानी से निरक्षर, कम पढ़े लिखे लोग भी समझ जाते हैं। यह बहुत बड़ी राष्ट्र सेवा है और कैन्सर निदान एवं उसके रोकथाम में बहुत कारगर है। राजभाषा हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए आधुनिक चिकित्सा संकाय के चिकित्सकों, कर्मचारियों एवं छात्रों का भी योगदान है।

महामना मालवीय जी व प्रो. के.एन. उडुपा ने अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया तथा चिकित्सा विज्ञान संस्थान में एक आनुषंगिक इकाई सी.ई. एम.एस. की स्थापना की, जिसके माध्यम से शोध निष्कर्षों को हिन्दी भाषा में प्रकाशित कर सुदुर ग्रामीण अंचलों तक पहुंचाया जा सके और यह क्रम आज भी जारी है। इस केन्द्र द्वारा कई जागरूकता शोध निष्कर्ष प्रकाशित हैं जिनमें आसानी से उपलब्ध औषधीय पेड़ पौधों के गुण तथा रोगों से बचाव के बारे में प्रशिक्षण सामग्री लोगों में वितरित की जाती है।

चिकित्सा विज्ञान संस्थान में बहुत चिकित्सक, शल्य चिकित्सक, चिकित्सा वैज्ञानिक उपलब्ध हैं जो अपने क्षेत्र के इतर अन्य क्षेत्रों में भी पैठ रखते हैं और हिन्दी में कहानी, उपन्यास आदि का लेखन कर रहे हैं, उनमें प्रो. मनोज पाण्डेय का नाम सर्वोपरि है। अभी हाल ही में उनके द्वारा लिखित पुस्तक 'अंगस्कन्ध' को पुरस्कृत करने के लिए राजभाषा आयोग को प्रेषित किया गया है जिसका परिणाम विचाराधीन है जो प्रशंसनीय है। संस्थान के विद्वानों में वरिष्ठ चिकित्सा वैज्ञानिक प्रो. गोपालनाथ जी का नाम सर्वोपरि है। वैसे तो आप राष्ट्रीय स्तर के वैज्ञानिक हैं और इनकी खोज से सारा राष्ट्र उपकृत है और गौरव का अनुभव करता है। आप राजभाषा के हिमायती हैं, और एक नियमित ग्रामीण पत्रिका 'मड़ई से खपरैल तक' जो कि राजभाषा में ही सम्पादित होती है, के मुख्य सम्पादक हैं। आपके व्याख्यानों में हिन्दी प्रेम झलकता रहता है।

स्वास्थ्य जागरूकता कार्यक्रम के अन्तर्गत चिकित्सा विज्ञान संस्थान अपने वार्षिक समारोह के अवसर पर दो दिवसीय स्वास्थ्य मेले का आयोजन करता है। इस अवसर पर प्रत्येक विभागों द्वारा, प्रत्येक इकाईयां व प्रत्येक केन्द्रों द्वारा अपने विषय से सम्बद्धित जागरूकता सामग्री एवं निदान उपकरणों के साथ स्टालों का प्रदर्शन करता है जिसमें काफी संख्या में पूर्वान्चल की जनता आती है। इनके द्वारा हम जनसमूह में गहन जागरूकता ला पाते हैं और बहुतायत जनसंख्या लाभान्वित होती है। उसमें प्रत्येक प्रतिभागियों को चिकित्सा प्रचार प्रसार सामग्री वितरित की जाती है जिससे रोगी एवं रोगी के परिजन लाभान्वित होते हैं। साथ ही रोगों से बचाव के सम्बन्ध में लघु नाटिका भी प्रस्तुत किये जाते हैं साथ ही व्याख्यान भी आयोजित होते हैं। उत्कृष्ट स्टालों को पुरस्कृत भी किया जाता है।

राजभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए जरूरत है इस तरह की वैज्ञानिक संगोष्ठियों का आयोजन देश के विभिन्न–विभिन्न स्थानों पर किया

जाय। अन्त में हम अपनी वाणी को राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर के निम्न पंक्तियों से विराम देते हैं–

अन्धकार है वहाँ, जहाँ आदित्य नहीं है।
मुर्दा है वह देश, जहाँ साहित्य नहीं है।

सन्दर्भ :

1. हिस्ट्री ऑफ इन्स्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइन्स, बी.एच.यू. प्रो. के.के. त्रिपाठी, बी.एच.यू. प्रेस, वाराणसी
2. संस्थान द्वारा प्रकाशित वार्षिक पत्रिका प्रतिवेदन
3. प्रगति पत्रिका में प्रकाशित आलेख 'चिकित्सा विज्ञान संस्थान के सतत् बढ़ते कदम', डॉ. रामजीत विश्वकर्मा
4. चिकित्सा विज्ञान संस्थान का पुस्तकालय
5. संस्थान के वरिष्ठ आचार्यों से साक्षात्कार
6. चिकित्सा विज्ञान संस्थान के राजभाषा प्रकोष्ठ में संग्रहित अन्यान्य स्रोत
7. विश्वविद्यालय द्वारा चिकित्सा विज्ञान संस्थान की राजभाषा पुरस्कार दिये जाने के अवसर पर विभिन्न कुलपतियों द्वारा दिये गये भाषण से साभार।

***

''बी. एड. स्तर के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के प्रशिक्षुओं की शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं स्मृति का अध्ययन''

*किरन सिंह**

सारांश– शिक्षण का कार्य बिना संप्रेषण कि नहीं हो सकता, प्रभावी शिक्षण के लिए आवश्यक है कि संप्रेषण कला की जानकारी अध्यापकों को कराई जाए जिसमें संप्रेषण के विभिन्न पदों, सोपानो, विशेषताओं एवं सीमाओं से अवगत हो सकें। संप्रेषण व्यवहार की कुशलता की जानकारी प्राप्त कर शिक्षक बालकों की आवश्यकताओं के अनुरूप संप्रेषण कौशलों का प्रयोग करने में सक्षम हो सकेगा। प्रभावी संप्रेषण के लिए वातावरण बनाना चाहिए।इस वातावरण का निर्माण भी शिक्षक तभी कर सकेगा जब उसे संप्रेषण कला के बारे में व्यवस्थित रूप से ज्ञान हो।इसके लिए उसमें अभिप्रेरणा, स्मृति एवं व्यक्तिगत मूल्यों का होना परम आवश्यक है,तभी शैक्षिक उपलब्धि भी उच्च स्तर की होगी। शिक्षक प्रशिक्षण की योजना कैसे बनाई जाए तथा शिक्षण व्यवस्था में संप्रेषण व्यवहार को किस तरीके से, किस रूप में प्रदर्शित किया जाए जिससे शिक्षार्थी अभिप्रेरित हो सकेऔर विषय में रुचि प्रदर्शित करें ।

शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम ऐसा हो जो जिज्ञासा या अभिप्रेरणा उत्पन्न करे, तथा वह अपनी मानसिक क्रिया द्वारा स्वयं समस्या का समाधान करने में समर्थ हो सके। प्रशिक्षुओं के लिए यह आवश्यक है कि संप्रेषण कौशल में दक्ष हो। भाषा की कुशलता छात्र शिक्षक अंतः क्रिया, व्यवहार एवं आधुनिक शैक्षिक उपकरणों का विधिवत ज्ञान भी आवश्यक है ।जिससे वह भविष्य में विद्यार्थियों के अनुसार विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार के उद्दीपन प्रदान कर सके। शिक्षण विधियों, युक्तियों प्रविधियों को शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं के अनुसार बदल सके। इसके लिए अभिप्रेरणा, स्मृति एवं व्यक्तिगत मूल्यों का सहसंबंध होना आवश्यक है,जिससे शैक्षिक उपलब्धि प्रभावित हो सके।''

Keyword : ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के छात्र अध्यापकों के शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं स्मृति का अध्ययन–

प्रस्तावना– कौटिल्य ने कहा था कि ''अध्यापक सामान्य व्यक्ति नहीं होता प्रलय और निर्माण उसकी गोद में पलते हैं।'' यही स्थान अध्यापक के महत्व और उत्तरदायित्व को तय कर देता है। इन परिस्थितियों में शिक्षकों को अपने उत्तरदायित्व के निर्वहन हेतु तैयार करने वाले शिक्षक प्रशिक्षक की भूमिका अति महत्वपूर्ण हो जाती है। इससे पहले यह जानना आवश्यक है कि अध्यापक प्रशिक्षण का अस्तित्व कहां से आया। वास्तव में यह अंग्रेजों

* शोधकर्त्री-, हंडिया पी.जी. कालेज हंडिया प्रयागराज

की देन है। प्राचीन काल में भारतीय शिक्षा परंपरा में शिक्षकों को शिक्षित करने जैसी कोई व्यवस्था नहीं थी। औद्योगीकरण एवं भूमंडलीकरण ने मानव जीवन को पूर्णतया प्रयोजन वादी बना दिया और अपने अस्तित्व को बनाए रखने तथा आपसी प्रतिस्पर्धा नें सामाजिक जीवन को क्लिष्ट कर दिया। अंग्रेजों ने अध्यापक शिक्षा पर जोर अपने स्वार्थ के कारण दिया। परंतु स्वतंत्र भारत में भी प्रशिक्षित अध्यापकों की अत्यधिक आवश्यकता महसूस की गई। क्योंकि लोकतांत्रिक देश कि अपनी समस्याएं एवं आवश्यकताएं होती हैं। इसके लिए प्रशिक्षुओं को अभिप्रेरित करने की आवश्यकता है। वैश्वीकरण नें संपूर्ण विश्व को एक समाज के रूप में समेट दिया। दुर्भाग्यवश भारत जैसे देश अपने शिक्षा व्यवस्था को इस योग्य नहीं बना पा रहे कि उस के बल पर वह भूमंडलीकरण की चुनौतियों को स्वीकार करते हुए अपने स्वयं के अस्तित्व को बचाए रख सकें। सरकार वैश्वीकरण की नीति को अपना रही है। जिससे हम आर्थिक एवं शैक्षिक स्तर पर अंतरराष्ट्रीय परस्तर पर पारस्परिक रूप से निर्भर हो पाएंगे। हमारे देश के समक्ष एक गंभीर संकट यह है कि सभ्य एवं विकसित समाज के रूप में अपनी संस्कृति को भरपूर संरक्षण देते हुए विकास कैसे हो? इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षक वर्ग अपनी मूल कार्य संस्कृति पर चलने एवं उसे विकसित करने का कार्य करें। इस प्रकार के शिक्षकों का निर्माण करने वाली प्रभावकारी शिक्षक प्रशिक्षण व्यवस्था की आवश्यकता है जो उनमें जिज्ञासा उत्पन्न कर उन्हें शिक्षण कार्य के प्रति अभिप्रेरित कर सके तथा उनके स्मृति स्तर को विकसित करते हुए उनके व्यक्तिगत मूल्यों का भी विकास करें। जिससे वे उच्च शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त कर समाज को एक नई दिशा प्रदान कर सकें।

किसी भी देश की शिक्षा क्यों ना हो उसका विकास शिक्षक की योग्यता पर आधारित होता है। जितना अधिक सक्षम और योग्य अध्यापक होगा उतना ही उत्तम शैक्षिक विकास संभव हो सकेगा। शिक्षा का उद्देश्य प्राचीन काल में भौतिक सुखों की उपलब्धि न थी, आधुनिक शिक्षा भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए अधिक प्रेरित करती है। परिणामतः समाज में अधिकाधिक सुख प्राप्ति एवं सुख संग्रह का संघर्ष खड़ा हो गया। आथिर्क शिक्षा में दीक्षित व्यक्ति निश्चित अवधि तक ही भोग न कर जीवन पर्यंत भोगी बना हुआ है। अर्थात शिक्षा शैक्षिक उद्देश्य के सामाजिक नियोजन से दूर हो गई है। आवश्यकता इस बात की है कि वर्तमान शिक्षा का पुनर्नियोजन हो तथा उसमें उच्च मूल्यों, आदर्शों तथा शैक्षिक उद्देश्यों का समायोजन हो ।

अध्यापक की शिक्षा के बारे में **पी0 गरे0** ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं– ''अध्यापक प्रशिक्षण का दायित्व केवल प्रशिक्षण महाविद्यालयों पर ही नहीं। जनता को इस ओर भी ध्यान देना चाहिए वास्तव में वे राष्ट्र की सेवा में अपना कर्तव्य पालन कर रहे हैं और राष्ट्र को अधिकार है कि

वह इस बात की जांच करे कि उसके अध्यापक भलीभांति शिक्षित हैं। शिक्षक जितने अच्छे होंगे उतना ही मूल्यवान कार्य होगा।''

अध्ययन का उद्देश्य–

1. आवासगत भेद के आधार पर प्रशिक्षुओं की शैक्षिक अभिप्रेरणा का अध्ययन करना।
2. आवासगत भेद के आधार पर प्रशिक्षुओं के स्मृति स्तर का अध्ययन करना।

परिकल्पना–

1. आवासगत भेद के आधार पर प्रशिक्षुओं की शैक्षिक अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. आवासगत भेद के आधार पर प्रशिक्षुओं के स्मृति स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन की विधि–

अध्ययन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि का चयन किया गया है। शिक्षक प्रशिक्षकों के शैक्षिक उपलब्धि के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए डॉ० टी० आर० शर्मा द्वारा निर्मित शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं डॉ० डी० आर० सिंह द्वारा निर्मित मापनी का प्रयोग किया गया है। कथनों के प्रति बी.एड. प्रशिक्षुओं के रुझान भार को ज्ञात करने के लिए शैक्षिक उपलब्धि का शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं स्मृति के साथ सहसंबंध ज्ञात किया गया।

प्रतिदर्श चयन–

शोधकर्त्री ने प्रतिदर्श के रूप में इलाहाबाद जनपद के 300 प्रशिक्षुओं में से 300 ग्रामीण तथा 300 शहरी क्षेत्र के छात्राध्यापकों का चयन यादृच्छिक विधि से किया है।

परिणाम तथा विवेचना–

परिकल्पना 1– आवासगत भेद के आधार पर प्रशिक्षुओं की शैक्षिक अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, का अध्ययन करना।

प्रस्तुत शोध के प्रथम परिकल्पना आवासगत भेद के आधार पर प्रशिक्षुओं की शैक्षिक अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, का अध्ययन करना। इस अध्ययन हेतु शोधकर्त्री ने ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के 300–300 प्रशिक्षुओं द्वारा दी गई प्रश्नावली के माध्यम से निम्नलिखित आंकड़े प्राप्त हुए।

सारणी 01

वर्ग	संख्या	Mediam	S. D. Value	C. R. Value	S. S. Value
ग्रामीण क्षेत्र	300	24.76	7.90	0.06	
शहरी क्षेत्र	300	24.71	8.02		

सारणी संख्या 01 से स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्र के प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा का मध्यमान 24.76 एवं मानक विचलन 7.90 तथा शहरी क्षेत्र के प्रशिक्षुओं की शैक्षिक अभिप्रेरणा का मध्यमान 24.71 एवं मानक विचलन 8.02 प्राप्त हुआ है। जिसके फलस्वरूप सी0 आर0 मान 0.06 जो कि 0.01 सार्थकता स्तर पर असार्थक है। मध्यमान का अन्तर यह स्पष्ट करता है कि क्षेत्र के आधार पर ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के प्रशिक्षुओं में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। अतः यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना 2– आवासगत भेद के आधार पर प्रशिक्षुओं के स्मृति स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, का अध्ययन करना।

प्रस्तुत शोध अध्ययन की परिकल्पना आवासगत भेद के आधार पर प्रशिक्षुओं के स्मृति स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, का अध्ययन करना है। इस अध्ययन हेतु शोधकर्त्री ने ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के 300–300 प्रशिक्षुओं द्वारा दी गई प्रश्नावली के माध्यम से निम्नलिखित आंकड़े प्राप्त किए।

सारणी 02

वर्ग	संख्या	Mediam	S. D. Value	C. R. Value	S. S. Value
ग्रामीण क्षेत्र	300	20.91	8.88	0.19	
शहरी क्षेत्र	300	21.05	8.78		

सारणी संख्या 02 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की स्मृति स्तर का मध्यमान 20.91 एवं मानक विचलन 8.88 तथा शहरी क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के स्मृति स्तर का मध्यमान 21.05 एवं मानक विचलन 8.78 प्राप्त हुआ है। जिसका सी0 आर0 मान 0.19 है, जो की सार्थकता स्तर 0.01 पर असार्थक है। मध्यमान का अन्तर यह स्पष्ट करता है कि आवासगत भेद के आधार पर शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के स्मृति स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। अतः यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

इस प्रकार उपरोक्त सारणी की गणना के आधार पर शोधकर्त्री ने पाया कि बी.एड. स्तर के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र की शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के समृति स्तर में कोई सार्थक अंतर है।

निष्कर्ष– आवासगत भेद के आधार पर प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा का अध्ययन में यह पाया कि जब शोधकर्त्री शैक्षिक अभिप्रेरणा के आवासगत भेद के आधार पर शिक्षक प्रशिक्षुओं पास पहुंची तो उसने परीक्षणोंपरांत पाया कि उनमें बी. एड. पाठ्यक्रम के प्रति बहुत अधिक रुचि नहीं है किंतु एक विकल्प के रूप में बी. एड. करके रोजगार हासिल करना चाहते हैं। शोधकत्री ने पाया कि दोनों क्षेत्रों की छात्राध्यापिकाओं में अपने परिवारिक

जिम्मेदारियों तथा सामाजिक दबाव एवं अपने उत्तरदायित्व के प्रति सजगता की भावना ने उन्हें बी. एड. पाठ्यक्रम की योग्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया। वर्तमान व्यावसायिक युग में महिला प्रशिक्षुओं में व्यावसायिक लालसा है, साथ ही उनमें रोजगार के प्रति जागरूकता भी परिलक्षित होती है, जो उन्हें बी. एड. पाठ्यक्रम को पूरा करने के लिए प्रेरित करती है।

आवासगत भेद के आधार पर प्रशिक्षुओं की स्मृति स्तर का अध्ययन किया। शोधकर्त्री स्मरण शक्ति जाँच के तत्पश्चात इस निष्कर्ष पर पहुंची कि दोनो क्षेत्रो के प्रशिक्षुओं पर आवासगत भेद के आधार पर उनके स्मृति स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

संदर्भ :

1. गुप्ता, एस.पी.– सांख्यिकीय विधियाँ''शारदा पुस्तक भवन 11,यूनिवर्सिटी रोड, प्रयागराज,(2003)
2. कपिल, एच.के.– अनुसंधान विधियाँ (व्यवहार परक विज्ञानों में) विनोद पुस्तक मंदिर आगरा (1999)
3. बुच, एम०बी० – सेकंड सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन''सोसाइटी फार एजुकेशनल रिसर्च एंड डेवलपमेंट, बरोदरा, (1978)
4. सिंह, रघुराजः– शिक्षक अभिव्यक्ति, शोध पत्रिका अंकः7, प्रकाशन शिक्षा संकाय, हंडिया पी०जी०कालेज हंडिया प्रयागराज,221503,(2008)
5. उपाध्याय, प्रतिभाः'– भारतीय शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियाँ,शारदा पुस्तक 11, यूनिवर्सिटी रोड, प्रयागराज
6. सिंह, मयाशंकरः– अरावली, पत्रिका(2009–10)

***

रामायण में राज्य एवं लोक-कल्याण

*राज कमल दीक्षित**

भारतीय संस्कृति में आदिकाल से पुरुषार्थ चतुष्ट्य, अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, की अवधारण विद्यमान रही है। धर्म,अर्थ एवं काम अर्थात त्रिवर्ग की साधना की प्राप्ति को सदैव से ही मानव जीवन का उद्देश्य माना जाता रहा है।[1] और इस उद्देश्य की प्राप्ति में राज्य अथवा राजा की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। यहाँ सदैव से ही राज्य के कल्याणकारी स्वरूप को स्वीकार किया गया है।[2] भारत में राज्य का स्वरूप कभी भी पुलिस राज्य नहीं रहा है।[3] भारतीय महर्षियों ने व्यक्ति और समाज दोनों के हित–साधन हेतु ऐसे समाज की रचना की थी जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपनी कल्याण सिद्धि के साथ–साथ दूसरों के लिए बाधक सिद्ध न हो अपितु औरों को भी अवसर ही प्रदान करता रहे।[4] यह द्रष्टव्य है कि भारतीय विचारधारा में कल्याण शब्द का प्रयोग भौतिक कल्याण के लिए ही नहीं किया जाता था।[5] इसमें भौतिक कल्याण तथा अत्यात्मिक कल्याण दोनों सम्मलित माने जाते थे। भारतीय समाजिक व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु राजा ही था,[6] तथा इसका कर्त्तव्य अपने राज्य में ऐसी व्यवस्था स्थापित करना था, जिसमें नागरिक अपना इहिलौकिक एवं पारलौकिक विकास कर सकें।[7]

राजपद की प्रतिष्ठा ऋग्वेदिक काल में ही स्थापित हो चुकी थी तथा वरूण और इन्द्र सम्राट के रूप में प्रतिष्ठित थे।[8] ऋग्वेदिक सभ्यता में राजकर्म की क्या रूपरेखा थी इसका वर्णन इन दोनों के चरित्र से प्राप्त होता है। शांतिकालीन राजकर्म का निर्धारण सम्राट वरूण के आदर्श पर किया जा सकता है।[9] ऋग्वेद में वरूण द्वारा किये जाने वाले कार्यों का विशद् विवेचन मिलता है। इसके अनुसार राजा का कार्य प्रजा के कल्याण के लिये प्रयत्न करना,[10] लोगों को विपत्तियों से बचाना, नेतृत्व करना तथा दूर–दृष्टि रखना,[11] शासन विधान की प्रतिष्ठा करना,[12] मानवों का अभ्युदय करना,[13] अपने शासन में सबको सौभाग्यशाली बनाना[14] प्रजा के शत्रुओं का दमन करना,[15] चोरों से प्रजा की रक्षा करना था।[16] उत्तर वैदिकाल में में राजकर्म की परिधि और भी व्यापक हो गई थी। राजा का यह कर्त्तव्य था कि प्रजा की सुख समृद्धि एवं सार्वजनिक कल्याण के लिये प्रयत्नशील रहे,[17]

---

* प्राचार्य, सेठ फूल चन्द बागला (पी.जी.) कालेज, हाथरस

तथा उसे धन एवं अन्न से परिपूर्ण रखे।[18] यजुर्वेद में कृषि को सिंचाई के लिये नहरों एवं कूपों की व्यवस्था का वर्णन भी मिलता है।[19] अज्ञान का नाश करके ज्ञान का प्रसार करना भी राजा का महत्वपूर्ण कर्त्तव्य समझा जाता था।[20] अतः यह स्पष्ट है कि वैदिक युग से ही प्रजा की भौतिक उन्नति एवं सुख के लिए आवश्यक प्रबन्ध करना राजा का कर्त्तव्य समझा जाता रहा है।[21]

इस भाँति यह कहा जा सकता है कि लोककल्याण की मूल प्रवृत्तियाँ भारतीय राज्य एवं समाज व्यवस्था में सदैव से ही विद्यमान रही हैं।[22] सामाजिक व्यवस्था का आधार वर्णाश्रमव्यवस्था थी। इसके मूल में भी लोक–कल्याणकारी प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं। वर्णाश्रम व्यवस्था में ब्रह्मचर्य आश्रम द्वारा व्यक्ति में तप,त्याग,परोपकार, सह–अस्तित्व एवं सेवाभाव की भावना का प्रादुर्भाव होता था। गृहस्थ आश्रम द्वारा व्यक्ति में पुरूषार्थ, परोपकार एवं लोक–कल्याण की भावना विकसित होती थी। इस भाँति वार्णाश्रम व्यवस्था भी व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ परस्पर मैत्री एवं सद्भावना के संचार का माध्यम थी।[23] अन्य धार्मिक एवं दार्शनिक प्रवृत्तियाँ भी मनुष्य में लोक–कल्याणकारी भावनाओं के विकास में सदैव से सहायक रही हैं। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में प्राप्त लोक–कल्याण की इन मूल प्रवृत्तियों का परिणाम यह हुआ कि भारतीय राज्य–व्यवस्था में भी लोक–कल्याण की भावना को आधार रूप में स्वीकार किया गया।[24] प्राचीन भारतीय राजदर्शन में यद्यपि राजा को बहुत उच्च स्थान प्रदान किया गया है किन्तु उसमें अपेक्षित नैतिक गुणों एवं उत्तरदायित्वों की ओर यदि दृष्टिपात किया जाये तो यह स्पष्ट है कि राजा को इतना महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करने का उद्देश्य ही यह था कि वह प्रजा का हित कर सकने में सफल हो। लोककल्याण के लिए प्रयत्न करना राजा का ही नहीं अपितु पुरोहित, मंत्री तथा अन्य राज्य कर्मचारियों का कर्त्तव्य था।

वैदिक युग से चली आ रही राजा एवं राज्य के कार्यक्षेत्र सम्बन्धी यह विचारधारा रामायण में और भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। रामायणकार ने राजा मन्त्रियों एवं अन्य राजकर्मचारियों के जो कर्त्तव्य बताये हैं उनसे यह स्पष्ट है कि रामायणकाल में भी यह स्वीकार किया जाता था कि राज्य की समस्त गतिविधियों का केन्द्र राजा था तथा उसका उद्देश्य व्यक्ति का कल्याण करना है।[25]

रामायण कालीन राजा के कर्त्तव्य सम्बन्धी उपलब्ध विवरण के अनुसार रामायणीय राजा के प्रमुख कर्त्तव्य प्रजा की रक्षा करना, उसका भरण– पोषण करना, आर्थिक गतिविधियों को सुचारू रूप से चलाते रहना, तथा अपराधियों को दण्ड देना था। इन कार्यों को सुविधा की दृष्टि से दो

भागों में बॉटा जा सकता है– शान्ति व्यवस्था सम्बन्धी तथा लोक–कल्याण सम्बन्धी।

रामायण में यद्यपि शन्ति–व्यवस्था की स्थापना पर अत्यधिक बल दिया गया है किन्तु उसका वास्तविक उद्देश्य भी राज्य में ऐसी परिस्थितियों को उत्पन्न करना था जिसमें जनता का कल्याण हो सके।[26] रामायण काल में दण्ड देने का उद्देश्य भी सुधारवादी एवं कल्याणकारी ही था। राम के द्वारा शम्बूक का वध,[27] सगर द्वारा अपने पुत्र असमंज का त्याग[28] तथा राम द्वारा सीता का त्याग[29] इस बात का ज्वलंत उदाहरण है कि राजा द्वारा किया जाने वाला प्रत्येक कार्य जनकल्याण की भागना से ही प्रेरित होता था।

रामायण युग में इस बात पर कोई मतभेद नहीं था कि प्रजा का कल्याण किस कार्य में है। धर्म द्वारा बताया गया मार्ग ही श्रेयस्कर माना जाता था, तथा कल्याण के अन्तर्गत भौतिक एवं आध्यात्मिक कल्याण दोनों को ही सम्मिलित माना जाता था[30]। रामायणकाल में राजा द्वारा जनहित के लिए क्या–क्या कार्य किये जाते थे इसका कोई स्पष्ट विवेचन नहीं मिलता है। किनतु अनेक स्थानों पर दिये गये विवरणों से स्पष्ट है कि जनकल्याण के लिएराज्य द्वारा अनेकों ऐसे कार्य किये जाते थे जिनको हम आज के परिपेक्ष में लोक कल्याणकारी कार्य कह सकते हैं।

रामायण में अच्छे राजाओं के शासनकाल का वर्णन करते समय विभिन्न स्थानों पर यह बाताया गया है कि उनके राज्य में सभी सुखी और सम्पन्न थे किसी को किसी प्रकार का कोई अभाव नहीं था तथा सभी लोग धन–धान्य से युक्त थे।[31] इस विवरण से यह स्पष्ट है कि रामायणकाल में प्रजा के कल्याण का विशेष ध्यान रखा जाता था। अच्छे शासन का लक्षण यही था कि वहाँ सभी मानव सुखी एवं सम्पन्न हों तथा उन्हें किसी वस्तु का अभाव न हो।

रामायण में प्राप्त वर्णन से पता चलता है कि सड़कों एवं राजमार्गों का निर्माण भी सम्भवतः राज्य द्वारा ही कराया जाता था।[32] व्यापार[33] के लिए दूर–दूर तक आने जाने के वर्णन से यह पता चलता है कि सड़कें काफी संख्या में मौजूद थीं।[34] सड़कों की नित्यप्रति सफाई की जाती थी।[35] सड़कों पर रोशनी के प्रबन्ध का वर्णन भी रामायण में मिलता है।[36] विशेष अवसरों पर उन्हें अगरू, चन्दन आदि से सुगन्धित किया जाता था।[37] सड़कों पर भीड़ को नियन्त्रित करने के लिए कर्मचारियों का वर्णन भी रामायण में प्राप्त होता है। व्यापार के विकास के ऊपर भी राज्य द्वारा पर्याप्त बल दिया

जाता था।[38] रामायण के अनुसार इस उद्देश्य से राजा लोग वैश्य वर्ण का विशेष ध्यान रखते थे तथा उन्हें आवश्यक सुविधायें भी प्रदान करते थे।[39]

नगरवासियों को पीने के लिए स्वच्छ जल की व्यवस्था तथा उसे सुरक्षित रखने का प्रबन्ध भी किया जाता था।[40] जलाशयों में पानी को गन्दा करना उतना ही बड़ा अपराध समझा जाता था जितना कि व्यक्ति को जहर देना।[41] इससे स्पष्ट है कि नगरों में जनता के लिए पीने के स्वच्छ जल की व्यवस्था भी सम्भवतः राज्य द्वारा कराई जाती थी।

रामायण में अनेक स्थानों पर यह वर्णन मिलता है कि महाराजा दशरथ के राज्य में सभी सुखी एवं सन्तुष्ट थे तथा कोई दुःखी न था।[42] इसी भाँति राम के राज्य में भी जनता को रोगों की आशंका नहीं थी तथा सभी लोग प्रसन्न रहते थे।[43] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि अच्छे राजा लोग जनता के स्वस्थ्य आदि की विशेष चिन्ता रखते थे। हो सकता है कि राज्य द्वारा चिकित्सा की भी व्यवस्था कराई जाती हो किन्तु इसका स्पष्ट वर्णन रामायण में नहीं मिलता है। रामायण में प्रयाणों एवं युद्धों के वर्णनों से स्पष्ट है कि सेना के साथ घायलों को सुश्रुषा के लिए चिकित्सक लोग भी रहा करते थे।[44] सम्भवतः शान्तिकाल में राज्य द्वारा उनकी सेवाओं का उपयोग नागरिकों के स्वस्थ्य की देखभाल के लिए किया जाता था।[45]

अयोध्याकाण्ड में राम ने भरत से जो प्रश्न पूँछे हैं उनसे स्पष्ट है कि रामायण काल में कृषि के विकास की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाता था, क्योंकि उसको देश के सुख एवं उन्नति का आधार समझा जाता था।[46] कृषि की उन्नति के लिए राज्य द्वारा सिंचाई की व्यवस्था भी की जाती थी।[47] लोगों को वर्षा के जल के ऊपर निर्भर नहीं रहना पड़ता था।[48] रामायणीय मान्यता थी कि अच्छे राजा के शासनकाल में मेघ भी प्रजा की इच्छा एवं आवश्यकतानुसार वर्षा करते थे, तथा वृक्ष सदा फूलों और फलों से लदे रहते थे।[49] इसके विपरीत बिना राजा के राज्य में मेघ भी पृथ्वी पर जल की वर्षा नहीं करते, तथा वहाँ खेतोंमें बीज भी नहीं विखेरा जाता।[50] इससे भी यह पता चलता है कि कृषि–व्यवस्था एवं विकास की ओर उस युग में राज्य द्वारा विशेष ध्यान दिया जाता था। राज्य द्वारा इस ओर भी ध्यान दिया जाता कि कृषि के योग्य समर्थ पशु पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों।[51] सम्भव है कि हाथियों की भाँति ही उनकी नस्ल सुधार की व्यवस्था भी राज्य द्वारा की जाती हो।[52]

शिक्षा व्यवस्था के सम्बन्ध में रामायण से ज्ञात होता है कि शिक्षा के लिए बालक को गुरू के आश्रम में जाकर रहना पड़ता था।[53] वन में पाये

जाने वाले अनेकों आश्रमों का वर्णन रामायण में मिलता है।[54] इन आश्रमों के संचालन के लिए आवश्यक धन आदि की व्यवस्था करना राज्य तथा नागरिकों का कर्त्तव्य था।[55] शिक्षा देने वाले ब्राह्मणों को सम्भवतः राजकीय कर से भी मुक्त रखा जाता था।[56] वनों में पाये जाने वाले आश्रमों के अतिरिक्त नगरों में शिक्षा की व्यवस्था का वर्णन भी मिलता है।[57] इससे स्पष्ट है कि उस युग में राज्य शिक्षा व्यवस्था के विषय में भी जागरूक था। इस बात का प्रयत्न किया जाता था कि मेधावी एवं योग्य द्विज वर्ण के बालकों को गुरू के आश्रम में रहकर निःशुल्क शिक्षा प्राप्त हो सके।[58] ब्रह्मचर्य आश्रम की आयु लगभग सोलह वर्ष मानी गई है।[59]

रामायण में इस बात पर भी बल दिया है कि सेवक को उचित समय पर समुचित वेतन दिया जाय।[60] इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि जो स्वामी अपने सेवक से काम कराकर उचित वेतन नहीं देता वह पाप कर भागी होता है।[61] इससे स्पष्ट है कि राज्य नौकरों अथवा श्रमिकों के हितों का भी ध्यान रखता था तथा कार्य के बदले उचित पारिश्रमिक देने पर बल देता था। ऐसा प्रतीत होता है कि रामायण युग में श्रमिकों के हितों की सुरक्षा के लिए कुछ निश्चित नियम थे तथा उन्हें भंग करने वालों को राज्य द्वारा दण्डित किया जाता था।

रामायणकाल में राज्य द्वारा नागरिकों के आमोद–प्रमोद की सुविधाओं का भी ध्यान रखा जाता था। संध्या के समय नागरिक उद्यानों में क्रीड़ा करने के लिए जात थे।[62] इन उद्यानों का निमार्ण भी राज्य द्वारा अथवा राजा के प्रोत्साहन पर कराया जाता था।[63] नागरिकों के मन वहलाव एवं विकास के लिए समय–समय पर उत्सव आदि कराना, कलाकारों एवं नट–नर्तकों को प्रोत्साहन देना भी राज्य का कार्य समझाा जाता था।[64] समय–समय पर पौराणिकों द्वारा कथाओं का आयोजन भी किया जाता था।[65] रामायणीय मान्यता के अनुसार राजविहीन राज्य में यह सभी गतिविधियॉ ठप हो जाया करती थीं।[66]

इस भाँति यह स्पष्ट है कि रामायण काल में राज्य का प्रमुख उद्देश्य अपने नागरिकों का कल्याण करना था। भले ही राज्य द्वारा किए जाने वाले इन लोककल्याणकारी कार्यो की कोई स्पष्ट सूची हमें प्राप्त नहीं होती किन्तु फिर भी उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि रामायणकालीन हिन्दू राज्य वास्तव में लोक– कल्याणकारी राज्य था।[67] रामायणीय राज्य के कार्य क्षेत्र की परिधि अत्यन्त व्यापक थी तथा उसका मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को वह सभी सुख–सुविधायें प्रदान करना था जो कि उसके भौतिक एवं आध्यात्मिक कल्याण के लिए आवश्यक समझी

जाती थी। रामायणोत्तर काल में इस दिशा की ओर भी विकास हुआ। महाभारतकाल में तो राज्य द्वारा लोक–कल्याण के लिए आयोजित अनेकों योजनओं का वर्णन भी मिलता है।[68]

यदि लोक–कल्याणकारी राज्य की आधुनिक प्रपृत्तियों की ओर दृष्टिपात किया जाय तो स्पष्ट है कि विचारक इस सम्बन्ध में एक मत नहीं है कि उसके कार्यक्षेत्र की क्या परिधि होनी चाहिए।[69] एक ओर यदि इसका उद्देश्य नागरिकों को न्यूनतम जीवन स्तर प्रदान करना माना गया है,[70] तो दूसरी ओर नागरिकों के लिए व्यापक समाज–सेवाओं की व्यवस्था करना इसका कार्य बताया गया है।[71] अभी से लोगों को इसके उद्देश्यों के प्रति सन्देह होने लगा है तथा विचारकों ने इससे होने वाली आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक हानियों पर विचार करना प्रारम्भ कर दिया है।[72] किन्तु जहॉ तक भारतवर्ष का प्रश्न है, यहाँ तो सदैव से ही राज्य के लोक–कल्याणकारी स्वरूप को स्वीकार किया गया है– वेद, उपनिषद्,रामायण, महाभारत आदि सभी में यह विचारधारा प्रवाहित होती दृष्टिगोचर होती है।[73]

इसी भॉति यह स्पष्ट है कि रामायण में भी वैदिक साहित्य की भाँति ही राज्य के कल्याणकारी स्वरूप को स्वीकार किया गया है। राज्य के समस्त पदाधिकारियों का यह कर्त्तव्य था कि वह लोक को सुखी बनाने का प्रयत्न करें। इन कार्यों के सम्पादन के लिए आवश्यक धनराशि भी सम्भवतः राज्य द्वारा ही प्रदान की जाती थी। इसके लिए यह सर्वमान्य सिद्धान्त था कि सभी प्रजाजन अपनी आय का छठा भाग राजकर के रूप में राजा को प्रदान करेंगे।

संदर्भ :

1. धर्मे चार्थे च कामे च लोकवृत्ति समाहिताः महाभारत, शांतिपर्व, 167,2 "We can saythat the notion of of Moksha is of a later origin than notion of Dharma or it is a later addition to Vedic Triad (Dharma] artha] Kama) - Benjamin Khan, op cit P.42
2. दृष्टव्य– राजा प्रजानां हृदयं गरीयो गतिः प्रतिष्ठा सुखमुत्तमं च।। महाभारतए शांति पर्वए 68, 59
3. See Ernest Barker, Political Thought in England 1818 to 1914. The Home University Libraryof modern knowledge - 104, Secone Edition, London: Oxford University Press,1951, p.98
4. कामेश्वर नाथ मिश्र, महाभारत में लोक–कल्याण की राजकीय योजनाएं, भारत मनीषा, 1972,पृ.24
5. वही, पृ.11
6. दृष्टव्य– यजुर्वेद, 20,1
7. श्यामलाल पाण्डेय, वेदकालीन राज व्यवस्था, पृ. 93

8. ऋग्वेद, 1,25, 19–20
9. A S altekar, State and Government in Ancient India, Motilal Banarsi Das, Delhi, 1962 p. 47-48
10. ऋग्वेद, 5, 85, 3
11. वही, 1, 25, 5
12. वही, 1, 25, 10
13. वही, 1, 25, 15
14. वही, 2, 28, 2
15. वही, 1, 28, 7
16. वही, 1, 28, 10
17. यजुर्वेद, 9, 22
18. यजुर्वेद, 1, 25, 15 ; वही, 1, 9, 8 ; वही, 1, 10, 6
19. यजुर्वेद, 6, 12 ; वही, 16, 38
20. यजुर्वेद, 10, 32 ; वही, 10, 7
21. अथर्ववेद, 19, 71, 1
22. कामेश्वरनाथ मिश्र, पूर्वोक्त, पृ. 18
23. कामेश्वरनाथ मिश्र, पूर्वोक्त, पृ. 34 व 39
24. राजा को प्रजानुरंजन एवं राष्ट्रवर्धन कहने का वास्तविक अभिप्राय इसी भावना को अीिव्यक्त करना है। दृष्टव्यः के.पी जायसवाल, हिन्दू पोलिटी, बंगलौर, 1964
25. दृष्टव्यः जनकल्याण हेतु राजा दशरथ की मृत्यु के उपरान्त मंत्रियों ने महर्षि वसिष्ठ से अनुरोध किया कि वह शीघ्र ही किसी इक्ष्वाकु वंश के राजकुमार को राजा बनावें। अयोध्याकाण्ड, 67, 8
26. उत्तरकाण्ड, 74, 33
27. वही सर्ग 76
28. अयोध्याकाण्ड, 36, 23
29. उत्तरकाण्ड, 45, 15–17
30. रामायण के अनुसार धर्म के पालन से अर्थ व काम की प्राप्तिसम्भव होती है। अरण्यकाण्ड, 9, 30; अयोध्याकाण्ड, 21, 57
31. बालकाण्ड, 6, 7 व 10–11
32. अयोध्याकाण्ड, 80, 5–6
33. वही, 67, 22
34. अयोध्याकाण्ड, 5, 18
35. सुन्दरकाण्ड, 3, 19, अयोध्याकाण्ड, 6, 18
36. बालकाण्ड, 11, 24, वही,5,8
37. युद्धकाण्ड, 127, 10
38. आयोध्याकाण्ड, 100, 47
39. तेषां गुप्तिपरीहारैः कच्चित् ते भरणं कृतम्।

रक्ष्या हि राज्ञा धर्मेण सर्वे विषयवासिनः।।– आयोध्याकाण्ड, 100, 48

40. बालकाण्ड, 5, 17
41. पानीयद्षके पाद्यं तथैव विषदायके।– आयोध्याकाण्ड, 75, 56
42. नरास्तुष्टाघनैः स्वैःस्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः।।
    तस्मिन् पुरवरे हृष्टा धर्मात्मानो बहुश्रुताः। – बालकाण्ड, 6,6,
    द्रष्टव्य– वही, 6, 15
43. युद्धकाण्ड, 128, 100
44. युद्धकाण्ड, 101, 44
45. अयोध्याकाण्ड, 86, 14
46. वही, 100, 47
47. वही, 100, 45
48. वही,
49. कामवर्षी च पर्जन्यः।– युद्धकाण्ड, 128, 103
50. अयोध्याकाण्ड, 67, 9,–10
51. वही, 100, 44
52. बालकाण्ड, 6,25
53. तुलनीय– मनु0 4, 19
54. अरण्यकाण्ड, 1, 1–2
55. अयोध्याकाण्ड, 32, 18, 21
56. द्रष्टव्य– बालकाण्ड, 7, 13
57. अयोध्याकाण्ड, 32,17–16
58. यह द्रष्टव्य है कि रामायण के अनुसार वेदाध्ययन का अधिकार केवल द्विज वर्ग को ही प्राप्त था।शिक्षा प्रदान करने के बदले में ब्राह्मणों को सम्भवतः राज्य द्वारा विभिन्न सुविधायें प्रदान की जाती थीं। विद्यार्थियों से किसी प्रकार के शुल्क लिये जाने का वर्णन रामायण में नहीं मिलता।
    – सुन्दरकाण्ड, 28, 5, बालकाण्ड, 7, 13
59. द्रष्टव्य– बालकाण्ड, 20, 2
60. अयोध्याकाण्ड, 100, 32
61. वही, 75, 23
62. वही, 67,17
63. वही, 67, 18
64. वही, 67,15
65. अयोध्याकाण्ड, 67, 16
66. वही, सर्ग 67
67. See Preface to Bharat Bhushan Gupta, Welfare State in India, Allahabad :Cenntral Book Depot, 1966, p. VII.
68. द्रष्टव्य– कामेश्वरनाथ मिश्र, पूर्वाक्त, अध्याय 5 से 10 तक

69. "But when it comes to the question how the common weal or general welfare is to be achieved, they have differed and do difler profoundly."- Roscoe Pound, quoted in William Ebenstein, Great Political Thinkers-Plato to the Present, Indian ed., Calcutta : Oxford &IBH Publishing Co., p. 831
70. "Welfare state is a form of government in which the state assumes responsibility for minimum standards of living for every person."Encyclopedia Amiericana, p. 606.
71. For detailed discussion see. Bharat Bhushan Gupta, op.cit. p. 16-17.
72. "The main attack against the welfare state has been the ground that such policies make the mass of the people too dependent on government, thus undermining the foundation of botheconomic individualism… free enterprise … and of political individualism-democratic self government. Since the welfare state in its more advanced form has been in operation for only a relatively short time, it cannot be stated as yet with any degree of certainty to what extent such fears are justified." -- Encyclopedia Americana, p. 606.
73. "All round welfare of the public was clearly regarded as the chief aim of the bstate during the Vedic and Upanishadi ages" i.e. down to 600 B.C." - A S Altekar, op.cit.p.48

***

जैन दर्शन एवं सहिष्णुता : एक विमर्श

*रेशमी कुमारी**

सहिष्णुता एक परम् उपयोगी मानव मूल्य है। इसी मूल्य को अभिव्यक्त करने के निमित्त ही धर्म एवं दर्शन का उपयोग व प्रयोग किया जाता है। पहले मूल्य के सम्बन्ध में हम विचार करने का प्रयास करेंगे। मानव चरित्र के निर्माण में सद्प्रवृत्तियों और आदतों के अभ्यास सहायता करते हैं। मानव जिन प्रवृत्तियों को धारण करता है, उन सभी का योग ही उसका चरित्र होता है। ऐसी प्रवृत्तियाँ स्वयंमेव अर्जित होती रहती है। प्रवृत्ति व्यक्ति के व्यवहार को अभिप्रेरित करने वाली आन्तरिक शक्ति है। इसके लगातार प्रयोग करने से यह उसका स्वभाव सा प्रतीत होने लगता है। सहिष्णुता भी इसी प्रकार से मानव का एक स्वभाव है जिसका निर्माण उसकी स्थिति, परिवेश, अवस्था आदि अनेक कारणों से प्रभावित होता है। भारतीय धर्मों में इस सहिष्णुता की व्याख्या सीधे स्पष्ट न कर अनेक कथा–कहानियों, धार्मिक व नैतिक अनुष्ठानों एवं महाजनों के उपदेश के द्वारा पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है। दर्शन शास्त्र में भी अनेक आध्यात्मिक मूल्य, नैतिक मूल्य तथा देश व काल अपेक्षित अनेक प्रकार के मूल्यों का विवरण यथा स्थल प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। सहिष्णुता मानव मन की शांत–अवस्था का द्योतक है। जगत् की व्यवस्था में विविधता व विभिन्नता पाया जाना एक स्वाभाविक घटना है। मानव जीवन में ऐसी घटनाओं का आभास सदैव देखने को मिलता है। इन स्थितियों में मानव अपनी सहनशीलता व धैर्य का परिचय अपने सहिष्णु स्वभाव से ही देता है। सहिष्णुता मानव जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यावहारिक तथा पारमार्थिक दोनों प्रकार का मूल्य है। मानव अपने चित्त स्तर के अनेक दुरूह व्यावहारिक प्रयासों से सहिष्णु बनने का प्रयास करता है तथा वह कुछ हद तक सफल भी होता हुआ दिखता है परन्तु जब तक वह आत्मिक स्तर पर यौगिक प्रयासों से सहिष्णुता मूल्य प्राप्त करने का प्रयास नहीं करता है तब तक वह पूर्ण रूप से स्वभावतन सहिष्णु नहीं बन पाता है। सहिष्णुता मानव मन की शांतावस्था का नाम है और यह स्थिति मोक्ष प्राप्ति के बाद की ही स्थिति मानी जाती है। सम–विषम, कटु–मधु आदि विपरीत परिस्थितियों में भी मन एक सा निश्चय रूप से अटल रहे यह तो आत्मा का स्वाभाविक रूप है जो शांतावस्था के रूप में अभिव्यक्ति होता है। जैन दर्शन में सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक् चारित्र के समन्वित रूप को मोक्ष के रूप में निरूपित किया गया है।[1] यह त्रिरत्न जैन दर्शन का मानव मन को जगत् से परमार्थ तक सहिष्णुतावादी प्रवृत्तियों का श्रोत रहा है।

---

* शोधार्थी, दर्शनशास्त्र विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

आत्मा तथा अनात्मा को जैन दर्शन में मुख्य तत्व के रूप में जीव तथा अजीव से नामित किया गया है। जीव शुद्ध चैतन्य सत्ता मात्र है। अजीव इससे सर्वथा भिन्न है। पुद्गल के अतिरिक्त अन्य अजीव द्रव्यों के रूप, रस, गंध, स्पर्श नहीं होता है। पुद्गल में ये चारों रहते हैं। धर्म, अधर्म और आकाश एक–एक है किन्तु पुद्गल अनेक हैं। इसमें प्रथम क्रमशः तीन क्रियाहीन हैं, किन्तु पुद्गल सक्रिय है। इन पौदगलिक कर्मो से जीव में द्रव्यार्थिक परिणमन होता है यानी द्रव्यार्थिक कर्मो की उदयावस्था में जीव का वैभाविक परिणमन होता है और वह बन्धन को प्राप्त होता है। इस बन्धावस्था में जीव अपने को अजीव की स्थिति का स्वभाव मान लेता है। इस स्थिति में मानव लोभ, मोह, क्रोध, मद आदि विषयभूत तृप्ति चाहता है। तृप्ति की पूर्णावस्था इन भौतिक चीजों से तो हो नहीं सकती है, तो वह असहिष्णु बन जाता है। जैन दर्शन में इस प्रकार के असहिष्णुता से मुक्त होने के लिए जीव के स्वभाविक परिणमन का विवेचन है। वस्तुतः यह परिणमन नहीं, वरन् जीव की स्वभाविक अवस्था ही है जिसमें सम्यक ज्ञान, दर्शन तथा चरित्र का समावेश होता है। यह स्थिति जीव की स्वभाविक या मोक्षावस्था की स्थिति है जहाँ पौद्गलिक परिणमन का कोई प्रश्न ही नहीं होता है। ऐसी स्थिति में असहिष्णुता जैसी कोई भावना की उत्पति नहीं होती।

इस आलेख में सहिष्णुता को विशुद्ध चैतन्य सत्ता जीव का पर्याय समझने का प्रयास किया गया है जिसके लिए एक साधना का समन्वित मार्ग निरूपित है जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र के नाम से विवेचित है।[2] प्राचीन परम्परा का अनुशरण करते हुए आचार्य शुभचन्द्र ने भी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र को मोक्ष मार्ग के रूप में निरूपित किया है।[3] जीव की स्वाभाविक अवस्था में सहिष्णुता ही होती है। सहिष्णुता परम् सान्त अवस्था है जहाँ चेतना शुद्धावस्था में होती है। असहिष्णुता भी जीव की स्वाभाविक नहीं वरन् परभाविक स्थिति का बोध–विकार है। उक्त रत्न त्रय का मुख्य रूप से मोक्ष के लिए ही विधानित है जिसे यहाँ सहिष्णुता के परिप्रेक्ष्य में विवेचित करने का प्रयास किया जा रहा है। इन तीनों रत्नों का मानव के स्वाभाविक चरित्र से सम्बन्ध है। इनका स्पष्ट विवेचन अपेक्षित है जो निम्न हैं:–

सम्यक दर्शन

जैन दर्शन में सम्यग्दर्शन पद पारिभाषित होकर एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त होता है। यहाँ जीव, अजीव आदि तत्वों पर श्रद्धा रखना सम्यग्यदर्शन है।[4] तीर्थंकरों द्वारा निर्देशित तथा उपदेशित शास्त्रीय सिद्धान्तों में तथा जीवाजीव तत्वों में श्रद्धा रखना सम्यक दर्शन है। जैन दर्शन सम्यक शब्द का अर्थ जीवाजीव के भेदों को समझने तथा उसमें से यथार्थ सत्ता में विश्वास करने के संदेश से सम्बन्धित है। यह विश्वासवृत्ति मानव हृदय को

निष्पक्षता तथा सहिष्णुता का आचारीय आवरण प्रदान करता है। जैन दर्शन ने मानव की मानसिक स्वतंत्रता के आधार पर यह कहते हुए उद्घोष किया है कि हमें न तो जिनों के प्रति पक्षपात है और न कपिल प्रभृति आचार्यों के प्रति द्वेष है। हमें तो जिसका कथन युक्तिसंगत होगा, वही मान्य है।[5] इससे सहिष्णुता बोध अपने परमोत्कर्ष पर प्रतिष्ठित होता है।

श्रद्धा एक प्रकार का मनोभाव है। यह दृष्टि में सन्निहित होता है। मनोभाव में स्वभाव का मौलिक महत्व है। द्रव्यार्थिक परिणमन के पश्चात् मनोभाव परभाव को स्वभाव के रूप में अपना लेता है। फलतः प्रेम, क्रोध, उत्साह, भय, विस्मय, घृणा (जुगुप्सा) आदि भावों के प्रति जीव श्रद्धावान हो जाता है। यह सम्यक दर्शन नहीं है। सम्यक दर्शन में मानव तत्वतः, आचारतः तथा स्वभावतः मात्र आत्मा या जीव का श्रद्धान करता है। जैन दर्शन में समयक दर्शन का प्रतिपक्षी विचार **मिथ्यात्व** है। मिथ्यात्व का अर्थ है अविद्या की स्थिति। स्थानांगसूत्र में अधर्म को धर्म, धर्म को अधर्म, अमार्ग को सन्मार्ग, मार्ग को अमार्ग, असाधु को साधु, साधु को असाधु, अजीव को जीव, और जीव को अजीव, अमुक्त को मुक्त तथा मुक्त को अमुक्त समझना मिथ्यात्व कहा गया है।[6] आचार्य हेमचन्द्र ने उक्त लक्षण को दृष्टि में रखते हुए अदेव में देवत्व बुद्धि, अगुरू में गुरूत्व बुद्धि और अधर्म में धर्मबुद्धि रखने को मिथ्यात्व कहा है।[7] जैन दर्शन में सामान्यतः पांच प्रकार के मिथ्यात्व कहे गये हैं जो निम्न हैं[8]–

1. आभिग्राहिक मिथ्यात्व–बिना बुद्धि व तर्क के सीधे परम्पराओं से प्राप्त मान्यताओं को अपना लेना।
2. अनाभिग्राहिक मिथ्यात्व–तत्वज्ञान के अभाव में गुरूओं, देवों व धर्मों को सीधे स्वीकार कर लेना।
3. आभिनिवेशिक मिथ्यात्व–मद्, अहंकार की रक्षा के लिए असत्य मान्यताओं को हठपूर्वक डटकर पकड़े रहना।
4. सांशयिक मिथ्यात्व–अपने अन्दर की संशयात्मक स्थिति के कारण सत्य का निर्णय में असफल रहना।
5. अनाभोगिक मिथ्यात्व–विवेक व ज्ञान की क्षमता न रखना।

इस प्रकार उक्त मिथ्यात्व सम्यक् दर्शन का विरोधी विचार या सिद्धान्त है। उक्त स्थितियाँ मानव को असहिष्णु ही बनाती है। यह बन्धन का कारण है।

सम्यक ज्ञान

सम्यग्ज्ञान का तात्पर्य जीव के स्वभाव तथा परभाव का स्पष्ट भेदयुक्त ज्ञान का ज्ञान। स्व का ज्ञान तथा मिथ्यादृष्टि का निवारण पार्थक्य का ज्ञान।[9] सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन के बाद की स्थिति है। यह यथार्थज्ञान का पर्याय है यानी सम्यक् दर्शन अर्थात् सम्यक् श्रद्धापूर्वक जीवाजीवादि नव तत्वविषयक यथार्थ ज्ञान ही सम्यक् ज्ञान है।[10] सांसारिक

वस्तुओं का सम्यक् दृष्टि रहित ज्ञान, मिथ्याज्ञान कहलाता है। जैन दर्शन में ज्ञान के स्वरूप, साधन तथा उसके विषय को लेकर जैन दर्शन में अनेक विचार उपलब्ध होते हैं। सामान्यतः जैन दर्शन में दो प्रकार के ज्ञान–प्रत्यक्षज्ञान तथा परोक्ष ज्ञान की मान्यता है।[11] भारतीय दर्शन में साधारण तथा इन्द्रियों द्वारा होने वाले ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा गया है। जैन दर्शन में इन्द्रियों एवं मन की सहायता की अपेक्षा के बिना साक्षात् आत्मा से ही जो ज्ञान होता है, वह प्रत्यक्ष कहलाता है।[12] इसके विपरीत परोक्ष ज्ञान वह ज्ञान है जो इन्द्रिय व मन आदि की सहायता से बाह्य एवं आभ्यन्तर विषयों का ज्ञान है।[13] जैन दर्शन में पांच प्रकार के ज्ञान की विवेचना है। वे हैं–मति, श्रुति, अवधि, मनः पर्याय तथा केवल ज्ञान।[14] मतिज्ञान तथा श्रुत ज्ञान परोक्ष ज्ञान[15] की कोटि में आता है एवं अवधिज्ञान, मनःपर्याय ज्ञान तथा केवलज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान की कोटि में माना गया है।[16] मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता, अभिनिबोध एक समान के पद एवं अर्थ के प्रतीक है।[17]

पांचों इन्द्रियों तथा मन से होने वाला ज्ञान मति ज्ञान कहलाता है।[18] तदनन्तर शास्त्रादि के आधार पर चिन्तन–मनन के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह श्रुत ज्ञान है। जिस ज्ञान से इन्द्रिय की सहायता के बिना ही एक निश्चित सीमा के भीतर अर्थात्, मर्यादापूर्वक रूपी पदार्थों को जाना जा सके, वह अवधिज्ञान कहलाता है।[19] मनः पर्यायज्ञान ज्ञान भावों की विशेष निर्मलता और तप के प्रभाव से उत्पन्न होता है। जिस ज्ञान से संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मनोगज भावों का जाना जा सके, वही मनः पर्यायज्ञान है।[20] इसके बाद केवल ज्ञान आता है। यह ज्ञान परिपूर्ण आत्मज्ञान, जीव का स्वभावगत ज्ञान एवं केवल ज्ञान के रूप में पराकाष्ठागत ज्ञान के रूप में अधिष्ठित होता है। ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मों के पूर्णतः नष्ट होने पर जो एक निर्मल, परिपूर्ण एवं असाधारण ज्ञान उत्पन्न होता है, वह केवलज्ञान कहलाता है।[21] केवलज्ञान से त्रिकालवर्ती सभी द्रव्यों और उनकी पर्यायों को एक साथ जाना जा सकता है।[22] यह ज्ञान की सर्वोच्च अवस्था है। इसके प्राप्त होने पर आत्मा सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और परम् चिन्मय बन जाता है। यह मानव की साधना का अन्तिम फल है, जिसके प्राप्त होने पर आत्मा जीवन्मुक्त तथा अन्त में सिद्ध अवस्था को प्राप्त होता है।[23] इस प्रकार सम्यक् ज्ञान में आरम्भ से अन्त तक यानी जीव के परभाव परिणमन की आरम्भावस्था से मुक्तावस्था तक का ज्ञान आता है। केवल ज्ञान जीव के स्वभाव रूप का प्रतीत है। जीव स्वभावतः विशुद्ध चैतन्य मात्र मूल सत्ता है। सहिष्णुता के भी विविध चरण होते हैं। मानव ज्ञान के वर्गीकृत अवस्था के तदनुकुल सहिष्णुता की मात्रा दृश्य होती है। इसके पश्चात् तृतीय रत्नत्रय सम्यक् चारित्र आता है।

सम्यक् चारित्र

सम्यक् चारित्र का भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहिष्णुता नैतिक गुण से जोड़ा जा सकता है। सहिष्णुता एक श्रेष्ठ आचार है जिसे सम्यक् आचार के रूप में माना जा सकता है। जैन परम्परा में सम्यक् आचार सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और उसे केन्द्र में रखकर ही मानव धर्म व अन्य श्रेष्ठ विषयक चिन्तन का विकास कर पाता है। कोई व्यक्ति जो जैनागमों का ज्ञाता श्रेष्ठ या श्रेष्ठतर क्यों न हो, परन्तु तदनुरूप आचरण नहीं करता है, तो उसका वह सम्पूर्ण ज्ञान निरर्थक तथा विस्मरणशील है। केवल शास्त्रों के ज्ञाता को म्लेच्छ या शब्द दैत्य कहा जाता है। जो मानव मात्र ज्ञानी है, उसका न कोई महत्व है और न सार्थकता। ज्ञान का महत्व उसके अनुरूप आचरण में है।[24]

सम्यक्चारित्र का अर्थ ही है–चित्तगत मलिनताओं को नष्ट करना। मलिनता का यहाँ अर्थ है–राग द्वेषादि कर्ममल। उनको दूर करने के अनन्तर ही आत्मा में पूर्ण निर्मलता का समावेश होता है। इसके लिए सम्यक्चारित्र का विधान किया गया है।[25] सहिष्णुता भी चित्त की मलिनता को दूर किए बिना सम्भव नहीं है। सहिष्णुता की क्रिया में मानव के आचार–विचार का महत्व अधिकाधिक है। सम्यक्चारित्र में भी आचार–विचार का ही विशेष महत्व है। जैन परम्परा में यह स्वीकार किया गया है कि आचार–विचार के सम्यक् पालन से ही चारित्र का उत्कर्ष हो सकता है।[26] इस प्रकार संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि चारित्र में श्रद्धा ही सम्यक्चारित्र है। यह मान्य पांडित्यविचार व ज्ञान के अनुसार आचार में परिलक्षित होना ही श्रद्धा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन दर्शन का आत्म पूर्णता का विचार सहिष्णुता के विचार का ही पोषक है। सहिष्णुता का उत्कर्ष भी यदि जैन दर्शन मान्य मोक्ष पद के लिए उपदेशित सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र को लिया जाय तो अन्ततः जीव की वही स्थिति बनती है जो सहिष्णु चित्त् के लिए होता है। सहिष्णुता में सम्यक् दृष्टि, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र का पूर्णतः समावेश दिखता है। सहिष्णुता के अनेक सोपान हो सकते हैं। पूर्ण सहिष्णु की स्थिति जैन दर्शन मान्य परमश्रेयस की ही स्थिति है। सहिष्णुता का सीधा सम्बन्ध दृष्टि एवं ज्ञान के अतिरिक्त आचार से ही है। सहिष्णुता मानव का सर्वश्रेष्ठ सदाचार है।

सदाचार के महत्व को विष्णुपुराण में निम्न प्रकार से व्यक्त किया गया है–

सदाचारवता पुंसा जितौलोकावुभावपि।।
साधवः क्षीणदोषास्तु सच्छब्दः साधुवाचकः।
तेषामाचरणं यत्तु सदाचारस्स उच्यते।।[27]

यानी सदाचारी मनुष्य इहलोक और परलोक दोनों को ही जीत लेता है। 'सत्' शब्द का अर्थ साधु है और साधु वही है, जो दोषरहित हो।

उस साधु पुरुष का जो आचरण होता है, उसी को सदाचार कहते हैं। इस सदाचार को सहिष्णुता आचार के बराबर अर्थ में यदि प्रयुक्त किया जाय तो निश्चय ही पूरा भारतीय दर्शन सहिष्णुता का सीख देता हुआ दिखाई पड़ेगा। सहिष्णुता का अर्थ समग्र ज्ञान व दृष्टि जिससे विचार निर्मित होता है, का आचार या व्यवहार में उतरना ही तो है। यह चित्त की स्थिरता का भी प्रतीक है। सहिष्णुता पुरुषार्थ प्राप्त करने का एक अद्भुत साधन है या सफल पुरुषार्थ से ही सहिष्णुता अस्तित्त्व में आता है।

संदर्भ :

1. सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः। तत्वार्थसूत्र 1/1, आचार्य, उमास्वाति सं.–पं. सुखलालं, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान वाराणसी, 1976
2. चतुर्वर्गेऽग्रणीर्मोक्षे योगस्त च कारणम।
   ज्ञान–श्रद्धान–चारित्र रूपं रत्नत्रयं च सः।।
   योग शास्त्र 1/15 हेमचन्द्र, सं.–ऋषभचन्द जोहरी, किशनलाल जैन दिल्ली–1963
3. आ. शुभचन्द्र, ज्ञानार्णव, अध्याय 6 से 169, सं.–बालचन्द शास्त्री, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर, 1977
4. उत्तराध्ययनसूत्र 28/10, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय–22, अमृतचन्द परमश्रुत प्रभावक मंडल अंजस 1977
5. षड्दर्शन समुच्चय की टीका– न में जिने पक्षपातः न द्वेषः कपिलादिषु।
   युक्तिमद्वचनं यस्य तदग्राह्य वचनं मम।।, हरिभद्र, महेन्द्र कुमार जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, 1970
6. स्थानांगसूत्र 10/7/34, आगम प्रकाशन समिति, व्यावर 1981
7. योगशास्त्र 2/3
8. धर्मसंग्रह, अधिकार–1 पृ.–39, योगशास्त्र, स्वोपज्ञवृत्ति 2/3 पृ.–166
9. स्वपरान्तरं जानाति यः स जानाति, इष्टोपदेश 33, देवनन्दि (अपरनाम पूज्यपाद) परमश्रुत प्रभावक मंडल बम्बई 1954
10. नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य रूददहे। उत्तराध्ययन, 28/35
    पज्जवाण य सव्वेसिं, नाणं नाणीहि देसियं।। वही 28/5
11. तत्त्वार्थाधिगमभाष्य 1/12, उमास्वाति, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता 1905
12. अतिन्द्रियत्वात्, वही
13. निमित्तापेक्षत्वात, वही
14. तत्वार्थसूत्र, 1/9
15. वही, 1/11
16. वही, 1/12
17. मतिः, स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्, वही, 1/13

18. विशेषावश्यक भाष्य, 100, 121, सं. पं. दलसुख मालवाणिया, भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर अहमदाबाद
19. रूपीष्ववधेः। तत्त्वार्थसूत्र 1/28
20. विशुद्धिक्षेत्रस्वामि विषयेभ्योऽवधिमलः पर्याययोः, वही 1/26
21. मोक्षक्षयाज्जज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम, वही 10/1
22. सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य। तत्वार्थमूत्र 1/30
23. उत्तराध्ययन सूत्र 29/71, 72, सं.–राजेन्द्रमुनिशास्त्री, आगम प्रकाशन समिति, व्यावर, 1981
24. क्रियाविरहितं हन्त ज्ञानमात्रमनर्थकम्। गतिं बिना पशज्ञोऽपि नाप्नोति पुरमीप्सितम्। स्वानुकूलां क्रियांकाले ज्ञानपूर्वोऽप्य पेक्षते। प्रदीपः स्वप्रकाशोपिऽपि तैलं पूर्त्यादिंक यथा।।– ज्ञानसागर 9/2, 3, अध्यात्मोपनिषद् 3/13, 14 यशोविजयकेशर–बाई ज्ञानभंडार, जाम नगर वि.सं. 1964
25. रत्नकरण्श्रावकाचार 3/1/47, स्वामी समन्तभद्र, श्री मुनिसंघ स्वागत समिति, सागर 1986
26. जैन आचार : साधना और सिद्धान्त, प्रस्तावना, पृ.–19 (अरूण आनन्द, पातंजल योग एवं जैन योग का तुलनात्मक अध्ययन, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, 2002 के पृ.–147 से लिया गया है।
27. विष्णुपुराण 3/11/2–3

***

लोकतंत्रीय समाज के विद्यालयो में शिक्षक का स्थान व उसकी शिक्षण दक्षता

*डॉ. कमला सिंह यादव**

लोकतंत्रीय समाज के विद्यालयो में शिक्षक का स्थान एक मित्र, पथ–प्रदर्शक, समाज–सुधारक तथा नेता के रूप में होता है, जिससे वह अपने छात्रों तथा समाज का समुचित रूप से पथ–प्रदर्शन कर सके। शिक्षक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह समाज में उचित परिवर्तन लाकर उसे प्रगति की ओर अग्रसर करें। इसके लिए उसमें जिन गुणों की अपेक्षा की जाती है, वे हैं पहला, वह एक योग्य नागरिक हो तथा लोकतंत्रीय आदर्शों, मूल्यों एवं सिद्धांतों में पूर्ण निष्ठा रखता हो। दूसरा इसमें अपने छात्रों को समझने तथा उनको पथ–प्रदर्शन करने की क्षमता हो, जिससे वह उनको एक योग्य नागरिक बनाने में सफल हो सकेगा। तीसरा, वह लोकतंत्रीय आदर्शों के अनुसार प्रशिक्षित किया गया हो व शिक्षण दक्षता रखता हो। शिक्षण दक्षता के कारक हैं – पूर्व नियोजित शैक्षिक लक्ष्य, शैक्षिक कुशलता, शैक्षिक प्रदर्शन, छात्र अधिगम अनुभव, छात्र अधिगम परिणाम, शिक्षक प्रशिक्षक, बाह्य सन्दर्भ, आन्तरिक सन्दर्भ एवं व्यक्तिगत छात्र लक्षण। इसमें विविध तत्त्व सम्मिलित हैं। शिक्षक को अनुमोदित पाठ्यक्रम और विषयवस्तु के क्षेत्र से ज्ञान का प्रदर्शन करना। विषयवस्तु के प्रत्येक क्षेत्र के अनुसार शिक्षण की विभिन्न विधियों का उपयुक्त अनुप्रयोग करना। शिक्षक का छात्रों से इस प्रकार सम्प्रेषण और प्रतिपुष्टि प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए कि विद्यार्थियों की अधिगम और अवबोध का संवर्धन कर सके। शिक्षक को विद्यार्थियों की वृद्धि, विकास और अधिगम के सिद्धांतों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए और उसका पूर्ण अनुप्रयोग करने का भी ज्ञान होना चाहिए। शोधपत्र की प्रकृति मात्रात्मक एवं विश्लेषणात्मक है।

कुंजी : शिक्षक, लोकतंत्रीय समाज, नैतिक मूल्य, शिक्षण दक्षता।

भूमिका

समाज के निर्माण में शिक्षक की अतुल्य भूमिका है, क्योंकि शिक्षा मनुष्य जीवन के ज्ञान की परिधि को विस्तृत करने की प्रणाली है, शिक्षा ही मनुष्य का बाहरी व आंतरिक विकास करती हैं। शिक्षा व्यक्ति में सद् अभिवृत्तियों, मूल्यों, क्षमताओं का विकास करती है, जिसके द्वारा वह अपने, वातावरण पर नियंत्रण रख सकता है और अपनी संभावनाओं को पूरा कर सकता है। शिक्षा विकास की संवाहक है। शिक्षा समाज व विकास के संबंध की अभिव्यक्ति एवं प्रगति की अधिष्ठात्री है। भारतीय समाज में प्राचीनकाल से ही शिक्षा का स्वरूप अत्यन्त ज्ञानपरक, सुव्यवस्थित और सुनियोजित था।

* प्राचार्य, शिवम् कालेज ऑफ हायर स्टडीज, फुलवरिया, बैकठपुर, पटना (बिहार)

शिक्षा के द्वारा मनुष्य का जीवन विशुद्ध, प्रज्ञा सम्पन्न, परिष्कृत और समुन्नत ही नहीं होता, अपितु सात्विक और नैतिक निर्देशों का पालन करता हुआ सन्मार्ग पर चलकर विकसित होता है। मनुष्य का जीवन शिक्षा और ज्ञान से ही धर्म प्राण, नैतिक मूल्यों से युक्त, उच्चादर्शो से सम्बन्धित और चहुमुखी व्यक्तित्व से युक्त होता है।[1]

लोकतंत्रीय समाज के विद्यालयो में शिक्षक का स्थान एक मित्र, पथ–प्रदर्शक, समाज–सुधारक तथा नेता के रूप में होता है, जिससे वह अपने छात्रों तथा समाज का समुचित रू॰ से पथ–प्रदर्शन कर सके। शिक्षक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह समाज में उचित परिवर्तन लाकर उसे प्रगति की ओर अग्रसर करें। इसके लिए उसमें जिन गुणों की अपेक्षा की जाती है, वे हैं पहला, वह एक योग्य नागरिक हो तथा लोकतंत्रीय आदर्शों, मूल्यों एवं सिद्धांतों में पूर्ण निष्ठा रखता हो। दूसरा इसमें अपने छात्रों को समझने तथा उनको पथ–प्रदर्शन करने की क्षमता हो, जिससे वह उनको एक योग्य नागरिक बनाने में सफल हो सकेगा। तीसरा, वह लोकतंत्रीय आदर्शों के अनुसार प्रशिक्षित किया गया हो व शिक्षण दक्षता रखता हो। वह ऐसे उच्चचरित्र का व्यक्ति होना चाहिए, जिससे वह समाज तथा छात्रों का सम्मान प्राप्त कर सके और अपने उदाहरणों एवं सिद्धांतों द्वारा उनका नेतृत्व करने में सफल हो सके।[2]

शिक्षण दक्षता के अभाव में निष्प्राण और निर्जीव ही सिद्ध होते हैं। अध्यापक का स्थान सभी प्रकार की शिक्षण सामग्री और साधनों में सबसे ऊपर है। विद्यार्थियों के लिए अध्यापक ही प्रेरणा और ज्ञान का ऐसा स्रोत है जो उनके ज्ञान रूपी अंधकार को दूर करता है। साथ ही उन्हें समाज को अच्छी तरह समझकर उसके भली भांति व्यवस्थित होने एवं समाज की प्रगति में अमूल्य योगदान देने में सक्षम बनाता है।[3]

शिक्षण दक्षता

शिक्षण दक्षता से तात्पर्य शिक्षकों में सन्निहित अध्यापन करने की विशेष योग्यता एवं कुशलता से है।

शिक्षण दक्षता के कारक हैं – पूर्व नियोजित शैक्षिक लक्ष्य, शैक्षिक कुशलता, शैक्षिक प्रदर्शन, छात्र अधिगम अनुभव, छात्र अधिगम परिणाम, शिक्षक प्रशिक्षक, बाह्य सन्दर्भ, आन्तरिक सन्दर्भ एवं व्यक्तिगत छात्र लक्षण। इसमें विविध तत्त्व सम्मिलित हैं। शिक्षक को अनुमोदित पाठ्यक्रम और विषयवस्तु के क्षेत्र से ज्ञान का प्रदर्शन करना। विषयवस्तु के प्रत्येक क्षेत्र के अनुसार शिक्षण की विभिन्न विधियों का उपयुक्त अनुप्रयोग करना। शिक्षक का छात्रों से इस प्रकार सम्प्रेषण और प्रतिपुष्टि प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए कि विद्यार्थियों की अधिगम और अवबोध का संवर्धन कर सके। शिक्षक को विद्यार्थियों की वृद्धि, विकास और अधिगम के सिद्धांतों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए और उसका पूर्ण अनुप्रयोग करने का भी ज्ञान होना चाहिए। शिक्षक को विद्यार्थियों के मूल्यांकन, तकनीक और प्रक्रिया का

प्रभावी अनुप्रयोग करना। शिक्षक को शैक्षिक दशाओं का इस प्रकार व्यवस्थापन करना कि विद्यार्थियों के विधेयात्मक व्यवहार का सुरक्षित और स्वस्थ वातावरण तैयार करना। शिक्षक को विद्यार्थियों की अनेकता की पहचान करना और एक ऐसा स्वस्थ वातावरण तैयार करना जिससे छात्रों के विधेयात्मक व्यवहार और स्वप्रत्यय का विकास हो सके। शिक्षक में परिवर्तन के परीक्षण और अनुप्रयोग का संकल्प होना। शिक्षक का सहकर्मियों, अभिभावाकों और समुदाय के सदस्यों के साथ उत्पादात्मक कार्य करना।

शिक्षकों की शिक्षण दक्षता या प्रभावशीलता के अध्ययन मिलते है उनमें **एन0 एल0 गेज** (1968)[4] ने शिक्षण के क्षेत्र में सबसे अधिक कार्य किया है, जिनके अनुसार शिक्षण प्रक्रिया शिक्षण कौशलों की वह अनुदेशन प्रक्रिया है जिसे शिक्षक अपनी कक्षा–शिक्षण में प्रयोग करता है। यह शिक्षण क्रम की विभिन्न क्रियाओं से सम्बन्धित होता है जिन्हें शिक्षक अपने कक्षा अन्तःक्रिया में लगातार उपयोग करता है। **हस्क्यू** (1956) व **विल्सन** (1973)[5] के अनुसार शिक्षण दक्षता में ज्ञान, अभिवृत्ति, कौशल एवं अन्य अध्यापकीय गुण सम्मिलित हैं। इसी प्रकार **मिडले** (1963) **एवं गिटजेल** (1963)[6] ने शिक्षण दक्षता को शिक्षक व्यवहारों के रूप में मानते हैं जो प्रभाव उत्पन्न करते हैं। वहीं पर **जोशी** (2008)[7] का मानना है कि योग्यता व गुणवत्ता के साथ कार्य करना ही दक्षता है।

शिक्षक की शिक्षण दक्षता उसके शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावी बनाने में अहम भूमिका अदा करती है। दक्ष शिक्षक देश के नागरिकों की गुणवत्ता में सुधार के लिए उत्तरदायी होते हैं क्योंकि एक देश की गुणवत्ता का मूल्यांकन उस देश के नागरिकों की गुणवत्ता से किया जाता है। भविष्य मुख्यतः राष्ट्र की शिक्षा प्रणाली द्वारा निर्धारित होता है। यह इस बात से तय होगा कि देश के पास किस प्रकार के अध्यापक हैं। इसीलिए **राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद ने** 1998 में 'गुणात्मक विद्यालयी शिक्षा हेतु दक्षता आधारित व प्रतिबद्धता उन्मुख अध्यापक शिक्षा' दस्तावेज जारी किया जो शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों को दक्ष शिक्षक प्रशिक्षित करने के लिए निर्देशित करता है। दक्ष शिक्षकों के इस महत्वपूर्ण भूमिका के कारण प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता द्वारा शिक्षण दक्षता के व्यापक क्षेत्र को विभिन्न आयामों के अन्तर्गत सम्मिलित किया है। इन आयामों का विवरण निम्नलिखित है–

संज्ञानात्मक दक्षता – शिक्षण एक जटिल एवं कठिन कार्य है। इस कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए शिक्षक का संज्ञानात्मक ज्ञान व दक्षता अति महत्वपूर्ण हैं क्योंकि शिक्षण पूर्व उसे विषय वस्तुगत ज्ञान व उसका विभिन्न सामाजिक, आर्थिक परिप्रेक्ष्य में उचित व अनुचित ठहराने की योग्यता तथा अध्यापन व अधिगम की संकल्पनाओं की जानकारी अति आवश्यक है। संज्ञानात्मक दक्षता के अन्तर्गत सन्दर्भगत, संकल्पनात्मक व विषय वस्तुगत दक्षता शामिल हैं।

शिक्षण अधिगम सामग्री निर्माण दक्षता – प्रभावकारी शिक्षण के लिए अनेकानेक शिक्षण अधिगम सामग्रियों की आवश्यकता होती है। उन सामग्रियों को स्वयं तैयार करने की कला में शिक्षक को दक्ष होना चाहिए ताकि उनकी अनुपल्बधता की भी स्थिति में भी शिक्षण को प्रभावकारी रुप देना सम्भव हो सके। स्वध्याय समग्री की आवश्यकता कक्षा कक्ष अन्तक्रिया को बढ़ाने के लिए होती है।

शिक्षण कौशल दक्षता – शिक्षण कौशल दक्षता के अन्तर्गत कौशल प्रबन्धन, कक्षा प्रबन्धन, शिक्षण अधिगम सामग्री तथा अनुषांगिक शैक्षिक क्रियाकलाप सम्बन्धी दक्षता शामिल हैं जिसके अन्तर्गत पाठ को प्रभावशाली ढंग से प्रारम्भ करना, विद्यार्थियों को विषयवस्तु सीखने के लिए भावात्मक रूप से तैयार करना, प्रारम्भिक प्रश्न व कथन पूर्वज्ञान से सम्बन्धित होना, शिक्षण करते समय शिक्षक अपने शरीर संचालन, हाव–भाव, स्वर में उतार–चढ़ाव, मौन, विराम एवं भाव केन्द्रीकरण का उचित रीति से प्रयोग करना, विषयवस्तु के अनुसार उचित शिक्षण विधि का प्रयोग कर विद्यार्थियों की शिक्षण में सक्रिय भागीदारी एवं प्रश्नोत्तर को प्रोत्साहित करना, शिक्षण के दौरान शिक्षक द्वारा उचित शाब्दिक–अशाब्दिक पुनर्बलन कौशल का प्रयोग करना, नियमों एवं संकल्पनाओं को सिखाने के लिये सुसंगत एवं मूर्त उदाहरणों का प्रयोग करना, श्यामपट्ट लेखन स्पष्ट, स्वच्छ एवं उचित रीति से प्रयोग करने के साथ ही साथ मॉडल, चित्र इत्यादि श्रव्य–दृश्य शिक्षण सामग्री के उचित प्रस्तुतीकरण द्वारा शिक्षण को रोचक एवं प्रभावी बनाना, शिक्षक द्वारा कक्षा में प्रवेश के तुरन्त बाद सम्पूर्ण कक्ष पर एक दृष्टि डालना, विद्यार्थियों की उपस्थिति–अनुपस्थिति का ज्ञान, उनके मनोभावों व संकेतों को समझने का प्रयास करना तथा कक्षा अनुशासन बनाने के लिए उचित प्रयास तथा निर्देश देना, शिक्षक द्वारा अपने शिक्षण विधि में कुछ नवीनता लाने का प्रयास करना इत्यादि शामिल हैं।

सन्दर्भगत दक्षता– आधुनिक अध्यापक हेतु सन्दर्भगत दक्षता को प्राथमिक स्थान प्रदान किया गया है। सन्दर्भगत दक्षता में इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता है कि जब तक हम पाठ्य वस्तु के सन्दर्भ विन्दुओं के बारे में भली–भांति परिचित नही हो पाते हैं उसे ठीक से समझ नही सकते हैं। जैसे विभिन्न सामाजिक, आर्थिक परिस्थियों के सन्दर्भ में ही किसी घटना या व्यवहार को उचित या अनुचित ठहराया जा सकता है।

सम्प्रेषण दक्षता – सम्प्रेषण प्रक्रिया में गहन ज्ञान के अभाव में, शिक्षण अवधि में सम्पेशण अन्तराल का अधिक होना स्वाभाविक ही है जो शिक्षण का स्मृति स्तर से आगे चिन्तन और व्यवहारिक स्तर तक ले जाने में बाधक सिद्ध होती है। सम्प्रेषण दक्षता में अभाव के कारण के रुप में शिक्षण अभ्यासात्मक पक्ष की निरन्तर उपेक्षा को ही मूलतः उत्तरदायी माना गया है। सम्प्रेषण दक्षता के अन्तर्गत शिक्षक का सम्प्रेषण भाषा सरल, सुबोध, स्पष्ट, रुचिकर एवं प्रभावशाली होना, शिक्षक को विद्यार्थियों की बातों, विचारों व

प्रस्तावों को अच्छी प्रकार से सुनना तथा उचित समर्थन करना, शिक्षण–कक्ष का माहौल लोकतांत्रिक बनाना, विद्यार्थी को अपने संदेह दूर करने के लिए प्रासंगिक प्रश्न पूछने की स्वतंत्रता इत्यादि शामिल हैं।

विषय वस्तुगत दक्षता – शिक्षकों कक्षा शिक्षण के दौरान पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त सन्दर्भगत पुस्तकों एवं उच्चस्तरीय ज्ञान से युक्त पुस्तकों के अध्ययन की आवश्यकता होती है। जिससे वे शिक्षण विषय के समस्त अवयवी तत्वों एवं आधुनिक परिवर्तन, परिवर्द्धन आदि से भली–भांति परिचत हो सके।

मूल्यांकन दक्षता – मूल्यांकन को शिक्षण का एक अविभाज्य अंग माना जाता है। अतः मूल्यांकनगत दक्षता के अभाव में कोई भी अध्यापक व अध्यापिका दक्षता के स्तर को प्राप्त नही कर सकता है। सुधार सम्बन्धित मूल्यांकन उपागम को वर्तमान मापन केन्द्रित उपागम के स्थान पर प्रयोग किये जाने की आवश्यकता है। मूल्यांकन का उद्देश्य अधिगम दक्षता की सीमा को स्पष्ट करना और दक्षता या अधिकारिक अधिगम को प्रोत्साहित करना होता है। मूल्यांकन दक्षता के अन्तर्गत बोध प्रश्नों के माध्यम से शिक्षण बिन्दुओं का स्पष्टीकरण शिक्षण प्रक्रिया के दौरान करना, पुनरावृत्ति प्रश्नों के माध्यम से संम्पूर्ण पाठ का मूल्यांकन शिक्षण के अंत में करना, पाठ का समापन सारपूर्ण व सूत्रवत् करना इत्यादि शामिल हैं। एक शिक्षक के लिए आधुनिक मापन व मूल्यांकन के विभिन्न पद्धति एवं तकनीको से विशेष परिचय को होना आवश्यक है ताकि आवश्यकता के अनुसार उपयोगी उपागम को व्यवस्थित करने की क्षमता उनमे अवश्य हो।

प्रबन्धन सम्बन्धी दक्षता – आधुनिक युग में जब अध्यापन के साथ ही दायित्व और कार्य क्षेत्र सीमा में निरन्तर वृद्धि का सामना करने के लिए एक शिक्षक को सदैव तैयार रहने की बात की जा रही है और दक्षता और प्रतिबद्धता को महत्वपूर्ण स्थान दिया जा रहा है तो ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम के माध्यम से शिक्षकों के प्रबन्धन कौशल के बारे में शिक्षण प्रशिक्षण कौशलो के साथ ही अवश्य प्रदान किये जाय।

संकल्पनात्क दक्षता – अध्यापक के लिए शिक्षा अध्ययन तथा अधिगम की संकल्पनाओं से परिचित होना एक ओर जहां आवश्यक है वहीं दूसरी ओर उन पर पड़ने वाले विविध सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक कारको के प्रभाव के बारे में जानकारी रखना अपेक्षित माना जाता है। संकल्पनात्मक दक्षता ही वह आधार है जिस पर अधिगम को स्थापित कर या विकसित करने के लिए सार्थक प्रयास कर पाना सम्भव हो पाता है। जैसे यदि किसी छात्र को गणितिक संक्रियाओं को करने में सक्षम नही हो सकता।

अभिभावक एवं समुदाय एव संगठन सहकार्य दक्षता & वर्तमान शिक्षा सामाजिक आवश्यकता और आकांक्षाओ की पूर्ति का एक माध्यम है

अतः शिक्षक यदि समाज और शिक्षा तथा विद्यालयों के मध्य निकट सम्पर्क स्थापना में कुशल न हो, सामुदायिक संसाधनों का उपयोग विद्यालय के लिए करने में सक्षम न हो तथा सामुदायिक परिच्छेदिका निर्माण को महत्व न देने वाला हो तो अवश्य ही इस दूरी को कम कर पाना सम्भव नही हो सकता है और उन्हे सामाजिक प्रतिष्ठा की प्राप्ति भी कठिन साबित हो सकती है। जाति उपजातिगत संस्कृति, आकांक्षाए, साक्षरता एवं जागरुकता स्तर, सामुदायिक संरचना, महत्वपूर्ण सामाजिक प्रतिष्ठा वाले व्यक्तित्व, संसाधनोंपलब्धि आदि समस्त सूचनायें ही सामाजिक परिच्छेदिका के अवयवी तत्व होते हैं। दक्ष शिक्षक ही इसे प्रस्तुत करने में सक्षम हो सकता है।

क्रियागत दक्षता – शैक्षिक कार्य के अतिरिक्त विभिन्न राष्ट्रीय तथा सामाजिक पर्व एवं घटनाओं से सम्बन्धित तिथियों के अनुपालन से सामुदायिक जीवन सह कार्य जैसे–ग्राम सफाई, श्रमदान, भ्रमण, समाज सेवा, सृजनशील व्यक्तिओं व्यक्तिओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क आदि, के अनुप्रयोग द्वारा तथा दैनिक प्रार्थना, सभा, विचार, चिंतन आदि के आयोजन से अधिकामकर्ता अनेक भावात्मक परीक्षण स्वयं ही प्राप्त कर सकते हैं। इन कार्यक्रमों के लिए योजना निर्माण और अनेक आयोजन सम्बन्धी कौशल आदि में शिक्षको को दक्ष होने की आवश्यकता अवश्य ही है।

प्रतिबद्धता – सामाजिक सन्निबद्धता के लिए इन प्रतिबद्धताओं का समाज के शिक्षकों में होना अति आवश्यक है ताकि तनाव, समस्या, विषमता आदि से समाज को मुक्त कर पाना सम्भव हो सके। यह भावात्मक पक्ष से सम्बन्धित क्षेत्र है यदि अधिगम कर्ताओं को सहनशीलता, धैर्य, विचारशीलता, आस्था, सदाचारण आदि के बारे शिक्षा देनी हो तो इन प्रतिबद्धताओं का अनुपालन आवश्यक ही नही अपरिहार्य हो जाता है। इस श्रेणी में पांच प्रमुख प्रतिबद्धता के क्षेत्रों के बारे में जानकारी दी गयी है। जो अग्रांकित है जैसे अधिगमकर्ता के प्रति प्रतिबद्धता, समाज के प्रति प्रतिबद्धता, आजीविका के प्रति प्रतिबद्धता, उत्कृष्टता तथा मूल भूत मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता।

उपसंहार

दक्षता निश्चित समय में किये गये कार्य की मात्रा को दर्शाती है। योग्यता व गुणवत्ता के साथ कार्य करना दक्षता को दर्शाता है। मनुष्य को समाज में रहने के लिए जीवन यापन करने के लिए व स्वयं का विकास करने के लिए विषेश दक्षताओं की आवश्यकता होती है। समाज व व्यक्ति शिक्षा से कुछ अपेक्षा रखता है जिससे समाज व व्यक्ति की अवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है। यहीं से दक्षता आधारित शिक्षण की आवश्यकता महसूस होने लगी। दक्षता आधारित शिक्षण कार्य पर बल देता है दक्षता आधारित शिक्षण की विशेषताएँ हैं– ज्ञान की उपलब्धि, अनुप्रयोग की योग्यता, अनुप्रयोग हेतु वांछित कौशल का विकास।

सन्दर्भः

1 यादव, अनुपमा (2005). शिक्षा और समाज. नई दिल्ली : अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, पृ. 511.

2 गोपाल प्रसाद नायक (2006): लोकतंत्र एवं शिक्षा, भारतीय आधुनिक शिक्षा, वर्ष 25, संयुक्तांक 1–2, जुलाई–अक्टूबर, पृ. 23.

3 सिद्दीकी, आफताब जाकिरा (2011) : प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन, परिप्रेक्ष्य, वर्ष 18, अंक 2, अगस्त, पृ. 91.

4 एन. एल. गेज (1968). एड. प्रसाद, आर. (2012). विशिष्ट शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के आत्म–प्रत्यय, आत्म–विश्वास, शिक्षण दक्षता एवं भूमिका प्रतिबद्धता पर शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के प्रभाव का अध्ययन. शोधगंगा, 10603/17740, पृ. 24.

5 विल्सन, पी.टी. (1973). आइडेंटिफिकेशन ऑफ टीचर कम्पीटेन्सीज सेंट्रल टू वर्किंग इन एन इंटीग्रेटेड एप्रोच. डिजर्टेशन एब्स्ट्रेक्ट इंटरनेशनल (33), 5059.

6 मिडले (1963) एवं गिटजेल (1963). एड. प्रसाद, आर. (2012). विशिष्ट शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के आत्म–प्रत्यय, आत्म–विश्वास, शिक्षण दक्षता एवं भूमिका प्रतिबद्धता पर शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के प्रभाव का अध्ययन. शोधगंगा, 10603/17740, पृ. 25–26.

7 जोशी (2008). एड. प्रसाद, आर. (2012). विशिष्ट शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के आत्म–प्रत्यय, आत्म–विश्वास, शिक्षण दक्षता एवं भूमिका प्रतिबद्धता पर शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के प्रभाव का अध्ययन. शोधगंगा10603/17740, , पृ. 26.

***